वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दि० जैन आर्ष मार्ग का पोषण करने वाले
हिन्दी, संस्कृत, कन्नड, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के
न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल, खगोल, व्याकरण,
इतिहास आदि विषयों पर लघु तथा बृहद्
ग्रन्थों का मूल एवं अनुवाद सहित
प्रकाशन होगा!

समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी
लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित
होती रहेंगी।

ग्रन्थमाला—संपादक

मोतीचंद जैन सर्राफ
शास्त्री, न्यायतीर्थ

रवीन्द्रकुमार जैन
शास्त्री, बी० ए०
टिकैतनगर

प्राप्ति-स्थान
दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान,
हस्तिनापुर (मेरठ उ० प्र०)

मुद्रक:
एस० नारायण एण्ड सन्स
(प्रिंटिंग प्रेस)
पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६

विषय दर्पण

विषय पृष्ठांक



त्रिलोक भास्कर एक अध्ययन :

पाश्चात्य दार्शनिक अरस्तू का कथन है कि दर्शन का प्रारभ आश्चर्य से होता है। वस्तुत इस चित्र विचित्र विश्व और विश्व के क्रिया कलापो को देखकर मानव मस्तिष्क चकित रह जाता है। इसलिए नाना प्रकार की कल्पनाए करता है। कोई इस जगत् को ब्रह्ममय और कोई ईश्वर के द्वारा बनाया हुआ स्वीकार करता है, तो कोई अनादि निधन कोई मायामय मानता है तो कोई क्षणिक और अव्याकृत मानकर ही सतुष्ट हो जाता है।

जैन दर्शन मे अहिंसा अनेकान्त कर्म सिद्धान्त अपरिग्रह स्याद्वाद जैसे लोकोपकारी सिद्धान्तो का निरूपण किया है उसी प्रकार लोक और उसकी रचना के सम्बन्ध मे विशाल वाड्मय का निर्माण हुआ है। भ० महावीर स्वामी ने अपनी दिव्य ध्वनि मे जिन विषयो का प्रतिपादन किया है। उनमे दृष्टिवाद नाम का एक अग है उसके पाच भेद है—

परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत, और चूलिका इनमे से परिकर्म मे गणित के करण सूत्रो का वर्णन है। इसके पाँच भेद हैं

चन्द्र प्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, द्वीप सागर प्रज्ञप्ति और व्याख्या प्रज्ञप्ति।

चन्द्र प्रज्ञप्ति मे चन्द्रमा सम्बन्धी विमान आयु परिवार ऋद्धि गमन हानि वृद्धि ग्रहण, अर्धग्रहण, चतुर्थांश ग्रहण आदि का वर्णन है। इसी प्रकार सूर्य प्रज्ञप्ति मे सूर्य सम्बन्धी आयु परिवार गमन आदि का वर्णन है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति मे जम्बूद्वीप सम्बन्धी मेरु कुलाचल महाह्रद (तालाव क्षेत्र कुडवन व्यतरो के आवास महानदी आदि का वर्णन है।

द्वीप सागर प्रज्ञप्ति मे असख्यात द्वीप समुद्रो का स्वरूप वहा पर होने वाले अकृत्रिम चैत्यालयो का वर्णन है। व्याख्या प्रज्ञप्ति मे भव्य अभव्य

भेद प्रमाण लक्षण रूपी अरूपी जीव अजीव द्रव्यों का और अनन्तानन्त सिद्धों का तथा दूसरी वस्तुओं का वर्णन है।

इन्ही के आधार पर आचार्य यतिवृषभ ने तिलोयपण्णत्ति नामक प्राकृत भाषा में अनुपम ग्रंथ की रचना की। सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचंद्र आचार्य ने जहा धवल आदि ग्रन्थों का अध्ययन करके गोम्मटसार जीवकांड कर्मकांड लब्धिसार क्षपणासार आदि अद्वितीय जिनवाणी का सार भूत अमृतमयी वाङ्मय प्रस्तुत किया उसी प्रकार लोक रचना के सम्बन्ध मे त्रिलोकसार नामक विलक्षण असाधारण ग्रंथ की रचना की जिसमे तीनों लोकों का बहुत रोचक हृदयग्राही वर्णन सम्मिलित किया। इसी प्रकार सर्वार्थ सिद्धि, राजवार्तिक और श्लोक वार्तिक के तीसरे और चौथे अध्याय मे इस विषय का सुन्दर ढंग से प्रतिपादन किया है।

यद्यपि यह विषय ऐसा है जिसमें तर्क नही की जा सकती। युक्ति और अनुभव भी कुछ काम नही देता। हजारों वर्षों से इस विषय में अनेक प्रकार से ऊहापोह हुआ परन्तु समस्या ज्यों की त्यों रही।

भिन्न-भिन्न दार्शनिक और सिद्धान्तवादी इस सम्बन्ध मे अपनी स्वतन्त्र राय रखते है। परस्पर तुलनात्मक ढंग से विचार करें तो एक विस्तृत दृष्टिकोण हमारे सम्मुख प्रस्तुत होता है। और हमारा मस्तिस्क विशाल विश्व की अद्भुत रचना को जानकर अपने कल्याण का मार्ग हम सब निश्चित कर सकते है।

भ० महावीर स्वामी के २५०० वे महोत्सव के पुनीत अवसर पर देश के विभिन्न भागो मे अनेक प्रकार की योजनाएं चालू हुई है। इन्ही योजनाओ मे एक विस्मयावह योजना है जिसका सूत्रपात विदुषीरत्न श्री १०५ आर्यिका ज्ञानमती जी ने किया है।

जो परम तपस्वी श्री १०८ आचार्य धर्म सागर जी महाराज के सघ की प्रमुख कर्मठ आर्यिका है, जो अपना निर्णय कर लेती है उसे पूरा करके ही छोडती है।

वे कर्मशीला दृढ विचारवान् कुशल वक्ता आभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग दृढ श्रद्धालु और तेजस्वी नारीरत्न है जिन पर समाज को गर्व है।

माताजी सुयोग्य कवियित्री हैं जिन्होने प्रसाद ओज माधुर्य गुण

सपन्न काव्य की रचना की है। जिनमे बाहुबलि चरित्र अनुपम है। फुटकर रचनाए भी उनकी प्रशस्त और कठाग्र करने योग्य है।

आपने न्याय शास्त्र के सस्कृत भाषा के प्रौढ़ ग्रन्थ अष्ट सहस्री का हिन्दी अनुवाद करके एक असाधारण प्रतिभा सपन्न विषय का अधिकारी विद्वान की तरह प्रशसनाय कार्य किया है। इसी प्रकार तीनो लोको की रचना सम्बन्धी विषय को लेकर 'ज्योतिर्लोक' नामक पुस्तक लिखी है जो आप का मनभाया विषय है।

आपने दि० जैन त्रिलोक शोध सस्थान नामक एक संस्था की स्थापना की है जिसके अन्तर्गत जम्बूद्वीप की स्थापना और शोध सस्थान।

जम्बूद्वीप की रचना के सम्बन्ध मे हमे यही कहना है कि अभी तक दीवालो और मानचित्रो पर ही जम्बूद्वीप आदि के चित्र जनता के सामने आए है। परन्तु विस्तार रूप देकर इस प्रकार का आयोजन जिसमे विस्तृत भूमि लेकर रचना के अनुसार उनका यथोचित रूप दर्शाया जावे नही देखा गया।

जैन भूगोल और वर्तमान भूगोल दोनो में बडा अन्तर है। जैन भूगोल सम्बन्धी कोई भी मान्यता आज के भूगोल के साथ कतई मेल नही खाती।

जर्मनी विद्वान् प्रो० लोथर बैन्डल जैन धर्म के अध्ययन के लिए दिल्ली पधारे और मोक्ष शास्त्र का तीसरा चौथा अध्याय पढने लगे तो उन्होंने कहा मैं तो नही पढता। हमारे देश मे भौगोलिक रिसर्च सोसायटी है। जिनके माध्यम से भूगोल सम्बन्धी शिक्षा दी जाती है। क्या जैन भूगोल के सम्बन्ध मे कोई इस प्रकार रिसर्च हुई है तो उसके सम्बन्ध मे जानकारी दीजिए।

तब उन्हे बताया गया कि जैन भूगोल के सम्बन्ध में कोई खोज नही हुई है। दो हजार वर्ष पूर्व एक तालिका थी उसे ही देश की भाषा मे सस्कृत प्राकृत अपभ्रश तथा हिन्दी मे दोहराते रहे।

आवश्यकता है जैन भूगोल सम्बन्धी जो मान्यताएं है उनके ग्रन्थ विदेशो की भौगोलिक सोसायटियो को भेजे जाय और उनका ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाय। अभी जर्मन स्कालर Dr. Khol ने एक भूगोल

सम्बन्धी पुस्तक लिखी है जिसमें जैन भूगोल का भी कुछ परिचय दिया है। पर मालूम हुआ वह पूर्ण जानकारी नही है। इसी जैन धर्म प्रेमी जर्मनी विद्वान Dr Helmuth डा० हेल्मुथ जब दिल्ली आए तब उन्होने कहा जर्मनी मे जो वैज्ञानिक विषयो मे उन्नती उन्नति हुई है इसका मूलकारण भारतीय साहित्य है। जिनके सम्बन्ध मे जर्मनी विद्वानों ने अध्ययन करके वैज्ञानिक विषयो की खोज की। उन बातो का साराश यह है कि हमारा शोध सस्थान केवल जगह घेर कर मानचित्र बना कर ही सन्तोष न ले ले। इतने से कोई स्थाई लाभ नही केवल मनोरजन का साधन बनेगा।

हमे उसे सर्वागीण विचार धारा क अनुरूप बनाना होगा तभी स्थाई लाभ होगा। सर्वागीण विचार धारा से हमारा अभिप्राय यह है कि जैन विद्या के प्रचार का केन्द्र बने। उपलब्ध जैन भूगोल, वर्तमान भूगोल, एक सुन्दर म्युजियम के साथ-साथ इस प्रकार के सेवा भावी विद्वानों को तैयार करना जो राम-कृष्ण मिशन की तरह आम जनता मे कार्य कर सके।

आवश्यकता है इस सम्बन्ध मे रुचि रखने वाले महानुभाव विद्वान, श्रीमन्त, वैज्ञानिक रिसर्च स्कालर, सुयोग्य कार्यकर्ता की जो इस कार्य मे सच्चा जिज्ञासा रखें। पूरा पूरा सहयोग दे।

आधुनिक आवश्यकताओ के अनुकूल यह भी शोध सस्थान एक आदर्श सस्था बन जावे तभी इसका स्थाई लाभ होगा।

शोध सस्थान के अन्तर्गत कई विषय है उसमे एक विषय साहित्य निर्माण है।

आपने इस सम्बन्ध मे एक सुन्दर रोचक आकर्षक पुस्तक लिखी है जिसका नाम है, त्रिलोक भास्कर, इतने कठिन विषय को इतना सरल और सुबोधगम्य भाषा मे लिखना आप की कुशल लेखनी का ही चमत्कार है।

त्रिलोक भास्कर मे तीनो लोको का वर्णन है। यह वर्णन सचित्र विषय के साथ मानचित्रो चार्टों और रेखाकित भावो के द्वारा विषय को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इन्ही विषयो को विस्तार से समझाया गया है ताकि प्रत्येक जिज्ञासु भली प्रकार विषय को हृदयङगम कर

सके। आपका यह प्रयास अनुकरणीय है।

यद्यपि इस विचारणीय विषय के सम्बन्ध में इस दुनिया मे सैकड़ों प्रकार के मत चले आ रहे है तो भी वे सब मोटे रूप मे तीन भागो में विभाजित हो जाते है।

प्रथम मत वाले तो एक परमेश्वर या ब्रह्म को ही अनादि अनन्त मानते है। इसमे से कोई तो यह कहते है कि उस ईश्वर में ब्रह्म के सिवाय अन्य कुछ है ही नही, यह जो कुछ भी सृष्टि दिखाई दे रही है वह स्वप्न के समान एक प्रकार का भ्रम मात्र है। कुछ यह कहते है कि भ्रम मात्र तो नही है। दुनिया के सब पदार्थ सत् रूप से विद्यमान तो है। परन्तु इन सभी अचेतन पदार्थो को उस परमेश्वर ने ही नास्ति से अस्ति रूप कर दिया है। पहले तो एक परमेश्वर के सिवाय अन्य कुछ भी नही था फिर उसने किसी समय अवस्तु से ही सब वस्तुए बना दी है। जब वह चाहेगा तब इन पदार्थो को नास्ति रूप कर देगा और तब सिवाय उस ईश्वर के अन्य कुछ भी न रह जाएगा।

दूसरी मान्यता वाले यह कहते है कि अवस्तु से कोई वस्तु नही बन सकती। वस्तु से ही वस्तु बना करती है इस कारण जीव अजीव ये दोनो प्रकार की वस्तुए जो ससार में दिखाई देती है न तो किसी के द्वारा बनाई गई है और न बनाई जा सकती हैं। जिस प्रकार परमेश्वर सदा से है और सदा तक बना रहेगा उसी प्रकार जीव अजीव रूप वस्तुयें भी सदा से है और सदा रहेंगी। परन्तु इन जीव अजीव रूप वस्तुओ का अनेक अवस्थाओ अनेक रूपो का बनाना बिगाड़ना उस परमेश्वर के ही हाथ मे है।

तीसरे प्रकार के लोगो का यह कहना है कि जीव और अजीव दोनों प्रकार को वस्तुए अनादि से है। और अनन्त तक रहेंगी। इनकी अवस्था और रूप के बदलने वाला ससार चक्र को चलाने वाला कोई तीसरी वस्तु नही है। बल्कि इन्ही वस्तुओ के आपस मे टक्कर खाने से इन्ही के गुण और स्वभाव के द्वारा ससार का वह सब परिवर्तन होता रहता है। रग बिरंगे रूप बनते बिगडते रहते है। भिन्न-भिन्न दार्शनिको के इस सम्बन्ध मे जो विचार है उनका दिग्दर्शन करते है।

चेतन और अचेतन की उत्पत्ति के विषय मे अनेक दार्शनिक अभिमत

है उपनिषद् के ऋषि कहते है पहले असत् था। असत् से सत् उत्पन्न हुआ असतः सद् जायते। कुछ ऋषि कहते है असत् से सत् की उत्पत्ति नही हो सकती सबसे पहले सत् ही था सत्वेव सज्जायेतेति सत्वेव सोम्भेदमग्रमासीत्

सबसे पहले सत् ही था उसने सोचा मै अनेक होऊँ इस सकल्प से सृष्टि उत्पन्न हुई। जो है यह सब आत्मा ही है। जो कुछ हुआ है वह आत्मा से ही हुआ है। आत्मा ब्रह्म ही है। यह आत्मा द्वैतवाद है इसके अनुसार अचेतन चेतन से उत्पन्न होता है चेतन और अचेतन सर्वथा भिन्न नही है।

उपनिषद् का ब्रह्म न सत् है न असत् किन्तु अवक्तव्य है। उसका स्वरूप बोधक वाक्य है। नेति-नेति यह वाणी के व्यवहार से परे है। उपनिषदो मे सकम्प निष्कम्पक्षर, अक्षर, सत् असत्, अणु महान आदि अनेक विरोधी युगल ब्रह्म मे स्वीकृत है। इसलिए यह अवक्तव्य बन गया। वेदान्त का वाक्य है नाम रूपात्मक जगत्।

बौद्ध दर्शन लोक शाश्वत है। लोक अशाश्वत है। लोक शान्त है। लोक अनन्त है। जीव और शरीर एक है। जीव और शरीर भिन्न है।

इन प्रश्नों को म० बुद्ध ने अव्याकृत कहा है।

अनात्मवाद के अनुसार पहले अचेतन ही था। पृथ्वी, जल, अग्नि, और वायु ये चार भूत थे। इनसे चेतन उत्पन्न हुआ। प्रकृति की इस समझ को भौतिक वाद कहते है। इसके अनुसार अचेतन और चेतन सर्वथा भिन्न नही है।

मार्क्सवाद का ऐसा सिद्धान्त है।

आधुनिक वैज्ञानिक समुद्र के पानी के खारीपने को देखकर और पर्वतो की चट्टानो को देखकर पृथ्वी के निर्माण के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट करते है।

अनेकात दृष्टि के अनुसार चेतन अचेतन और अचेतन चेतन से उत्पन्न नही है। दोनों अनादि है। दोनो स्वतन्त्र और सापेक्ष है। चेतन का एक प्रविभाग भी मिश्रित नही है। वह शुद्ध द्रव्य है। उसका प्रत्येक परमाणु अन्त तक चेतन ही रहा है। अचेतन का प्रत्येक परमाणु अन्त तक अचेतन ही रहता है। चेतन को अचेतन रूप में परिणत नही किया जा सकता।

भ० महावीर ने विरोधी धर्मों की अवहेलना नही की उनकी सद्स्थिति से विचलित भी नही हुए। उनकी नय दृष्टि के अनुसार विश्व का कोई भी द्रव्य सर्वथा वाच्य नही है। और कोई द्रव्य सर्वथा अवाच्य नही है। प्रत्येक द्रव्य अनन्त विरोधी युगलो का पिण्ड है। उसके सब धर्मों को कभी नही कहा जा सकता।

सहिता ब्राह्मण आरण्यक तथा उपनिपद् मे उपलब्ध होने वाली भौगोलिक सामग्री का उपयोग करने से वैदिक युग की भौगोलिक स्थिति के विषय मे हम बहुत कुछ जान सकते है। इस जगत् का वर्णन वेद मे प्रथमत तीनो लोको मे किया गया गया है।

पृथ्वी अन्तरिक्ष वायुलोक द्युलोक अथवा स्वर्ग। अग्नि वृक्षआदि की स्थिति पृथ्वी पर मेघ विद्युत तथा वायु की अन्तरिक्ष मे और सूर्य की स्वर्ग लोक मे। वेद मे एक ही स्व. शब्द सूर्य तथा स्वर्ग दोनो के लिए प्रयुक्त किया गया है। ब्राह्मणो मे इन्ही के वास्ते भू भुव. तथा स्वः तीन नाम भी आए हैं।

निघन्टु मे इसी कल्पना के अनुसार कुछ देवता पृथ्वी मे रहने वाले कतिपय अन्तरिक्ष मे रहने वाले और कुछ द्युस्थान मे रहने वाले बतलाये गये है। तात्पर्य यह है कि सर्वत्र वेद मे लोकत्रय की यही कल्पना पृथ्वी अन्तरिक्ष तथा स्वर्ग की मानी गई है। लोकत्रय के भीतर पृथ्वी आकाश तथा पाताल की कल्पना पौराणिक है और वह वेद मे स्वीकृत नही की गई है।

वैदिक साहित्य मे कहा गया है।

कतरा पूर्वा कतरा अपरा। कोकवयः विवेद—अहनिचक्रवद

यह बात स्वीकार की है आकाश और पृथ्वी मे पहले कौन था। कौन कवि या मनीपी इसको मानता है। यह जगत् तो कुँभार आक के समान परिवर्तन शील है।

जैन दर्शन का सिद्धान्त है।

लोगों अकिट्टिम्मो खलु, अणाइणिट्णो सहावणिव्वत्तो।
जीवा जीवेंहि फुढो, सव्वागासा वयवो णिच्चो।।

लोक अकृत्रिम है। किसी के द्वारा बनाया हुआ नही है। अनादि-निधन है आदि अन्त कर रहित है इस विशेषण के द्वारा जो सृष्टि सहार

मानते हैं उनका निषेध है। स्वभाव निर्वृत्त हैं सहज स्वभाव से निष्पन्न है। परमाणुओ द्वारा लोक का आरम्भ होता है ऐसी मान्यता वालों का निराकण किया। षट् लोक जीव अजीव द्रव्यो कर भरा है इस विशेषण से जो ससार को मायामय मानते है उनका खडन किया।

सर्व आकाश का अग है। नित्य है शाश्वत है। इस विशेषण द्वारा जो ससार को क्षणिक मानते है उनका निराकरण किया।

ससार परिवर्तन शील है और वह दो प्रकार का है भाव ससार और

कामादिप्रभवचित्रः कर्मबन्धानुरूपत ।
तच्च कर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्धच शुद्धितः ॥

राग द्वेषादि के कारण विषयो मे प्रवृत्त होते हैं और नवीन सन्तति को जन्म देते हैं यही भाव ससार है।

कम्मकयमोहवढ्डिय ससारम्हि य अणादि जत्तम्हि ।
जीवस्स अवट्ठाणं करेदि आऊ हलिव्व णरं ॥

कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ मोह अर्थात् अज्ञान असयम तथा मिथ्यात्व से वृद्धि को प्राप्त हुआ ससार अनादि है। उसमे जीव का अवस्थान रखने वाला आयु कर्म है। वह उदय रूप होकर मनुष्यादि चार गतियो मे जीव की स्थिति करता है। यही भाव संसार है।

नदी नाले पर्वत भूमि आदि द्रव्य ससार है। जो परिवर्तन शील है। जहा आज हिमालय है उसकी चोटी पर वे चीजे प्राप्त हुई जो समुद्र की तलहटी मे पायी पाई जाती है। वैज्ञानिको का अनुमान है कि लाखो वर्षो मे समुद्र सूखकर पर्वत के रूप मे परिणत हो गया यही जैन धर्म का सिद्धान्त है कि द्रव्य की अपेक्षा सभी वस्तुए शाश्वत है। परन्तु पर्याय की अपेक्षा परिवर्तन शील हैं।

न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति, न च क्रिया कारकमत्र युक्तम् ।
नैवाऽसतो जन्म सतो न नाशो, दीपस्तमः पुद्गलभावतोऽस्ति ।

आचार्य समन्तभद्राचाय

यदि वस्तु सर्वथा द्रव्य और पर्याय दोनो रूप से नित्य हो तो वह उदय अस्त को प्राप्त नही हो सकती। और यदि सर्वथा असत् है उसका कभी जन्म नही होता। और जो सत् है उसका कभी नाश नही होता।

दीपक भी बुझ जाने पर सवथा नाश को प्राप्त नही होता किन्तु उस समय अन्धकार रूप पुद्ल पर्याय को धारण किए हुए अपना अस्तिव रखता है।

सृष्टि रचना के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार के सिद्धान्त है उनमें धरती आकाश का अन्तर है। परन्तु दो बातो मैं सभी मत वाले सहमत है। कि ससार मे कोई वस्तु विना बनाए अनादि भी हुआ करती है। और उनके गुण और स्वभाव विना बनाए अनादि होते है। अब केवल इतनी बात और निर्णय करना है कि कौनसो वस्तु बनी हुई अनादि है और कौन वस्तु सादि है।

जिन वस्तुओ से यह दुनिया बनी हुई है वे सभी जीव अजीव तथा उनके गुण और स्वभाव अनादि अन्त है। उनके इन अनादि स्वभावो के द्वारा ही जगत् का यह कार्य व्यवहार चालू है। वस्तु स्वभाव ही इसमे मुख्य कारण है!

किनहू न करे न धरे को, षट् द्रव्य मयी न हरे को
सो लोक माहि विन समता, दुख, सहै जीव नित भ्रमता।

यह ससार तो ससरण शील है चौदह राजू ऊंचा और पुरुष के आकार के समान लोक का आकार है जिसमे विना सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के कष्ट उठाता है।

चौदह राजु उत्तु ग नभ लोक पुरुष सठान।
तामे जीव अनादि तें, भरमत हैं विन ज्ञान।

पृथ्वी पर राजाओ को मनुष्यो के बीच प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य करता हुआ देखकर सारे ससार के प्रबन्धकर्ता को भी वैसा ही समझ लिया है।

जिस प्रकार राजा लोग खुशामद तथा स्तुति से प्रसन्न होकर खुशामद करने वाले के वश मे आ जाते है और उनकी इच्छा के अनुसार उलटे सीधे कार्य करने लग जाते है उसी प्रकार दुनिया के लोगों ने ससार के प्रबन्धकर्ता को भी खुशामद तथा स्तुति से वश मे आजाने वाला मानकर उसकी ही खुशामद करनी शुरू कर दी है और वे अपने आचरण को सुधारना छोड बैठे है।

वास्तव मे यह जीव अपने अच्छे बुरे कर्मो का फल स्वय भोगता है जैसा कि आचार्य अमृतचन्द्र ने कहा है।

स्वय कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्
परेण दत्त यदि लभ्यते स्फुट, स्वय कृत कर्म निरर्थकं तदा
निजार्जित कर्म विहाय देहिनो न कोऽपि कस्यापि ददाति किंचन ।।
विचारयन्नेव मनन्य मासस॰, परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम्

पहले इस प्राणी ने जो कर्म किए है उन्ही का अच्छा बुरा फल यह प्राणी भोगता है। यदि ऐसा माना जाय कि वह दूसरो के द्वारा प्रदत्त फल को भोगता है तो स्वत किए हुए कर्म निरर्थक हो जावेंगे।

स्वतः किए हुए कर्म को छोडकर दूसरा कोई भी इस प्राणी को कुछ भी नही देता। ऐसा समझ कर और अनन्य मन होकर दूसरा देता है इस विचार को छोड दो।

भैय्या भगवतीदास जी ने कहा है

को काको सुख देत है, को काको दु॰ख देत।
उलझत सुलझत आप ही, ध्वजा पवन के हेत।

प्राचीन भारत मे इस विश्व को कैसा जाना माना है। यह विपय बड़ा रोचक एव अध्यापन की एक स्वतन्त्र शाखा ही है। इस विपय पर बहुत कम ध्यान गया है पद्मविभूषण डा० डी० एस कोठारी चेयरमैन शिक्षाअनुदान आयोग ने अपने एक भाषण मे कहा था कि ससार के सभी देशो के विद्वानो ने भूगोल सम्बन्धी मान्यतायें स्वीकार की हैं आज उनका लिफाफा बदल गया है अन्दर का विपय प्राय एकसा ही है।

यूरोप के देशो ने भी इस सम्वन्ध मे अपनी रुचि दिखाई है। प्रारम्भ मे विद्वानो द्वारा इस विषय को जो अनुसधान किया गया है। उदाहरणार्थ

डब्ल्यू फिरफेल कृत जर्मन भाषा का ग्रथ उर्दू कास्मो ग्राफीडेर इडेर लीपजिग १९२० पृष्ठ २०८ ३४०' उससे स्पष्ट है कि भारतीय लोक विज्ञान मे जैन आचार्यो द्वारा किया गया चिन्तन भी अपना महत्त्व पूर्ण स्थान रखता है। इस विपय की जैन रचनाए अनेक दृष्टियो से रुचिकर पाई जाती है। उनमे लोक का आकर प्रकार सम्बन्धी विवरण बडे विस्तार

मे इसी सम्बन्ध मे [illegible] किया गया है। इस विषय का जैन [illegible] सम्बन्धी विवरणों [illegible] है। [illegible] उपलब्ध [illegible] ज्ञान सम्बन्धी [illegible] विभिन्न [illegible] । उनकी यह महत्वपूर्ण विशेषता है कि उनमें [illegible] ज्ञान भी [illegible] है। इस समय की [illegible] का प्राप्त उपलब्धियों का सुन्दर ढंग से प्रतिपादन किया है। [illegible] और क्षयोपशम की [illegible] इस प्रकार नाना देशों और युगों में मानवीय ज्ञान के विकास का इतिहास समझने के लिए ये [illegible] विषयक जैन ग्रंथ [illegible] है।

अर्धमागधी भाषा के अंतर्गत कुछ ऐसी रचनाएं हैं जिनमें इस विषय का वर्णन किया गया है वे इस प्रकार हैं :—

सूरपण्णत्ति (सूर्यप्रज्ञप्ति) मलयगिरि की टीका सहित आगमोदय समिति सूरत १९१९)

जम्बु दीवपण्णत्ति (जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति शान्तिचन्द्र की टीका सहित प्रकाशित देवचन्द लाल भाई जैन पुस्तकोद्धार ५२ और ५४ सूरत १९२०

चंदपण्णत्ति (चन्द्र प्रज्ञप्ति) अंगों के उत्तर कालीन अन्य जैन ग्रन्थों मे भी इस विषय का बहुत विवरण मिलता है।

इस विषय के अन्य ग्रंथ है उमास्वातिकृत जम्बूद्वीप समास विजय सिंह कृत जिनभद्र कृत संघायणी (मलयगिरिकृत टीका सहित) वृहत्क्षेत्रसमास (मलय गिरि टीका सहित भावनगर) हरिभद्र कृत जम्बूद्वीप सघायणा (भावनगर)

इन ग्रन्थों का उल्लेख डब्ल्यू शुब्रिग कृत 'डइ लेहरे डेर जैना लीपजिग १९३५ पृष्ठ २१६ मे पाया जाता है।

श्रुतांग संकलन मे पूर्वकालीन जैन ग्रन्थों की एक अन्य परम्परा है। इस परम्परा का ग्रन्थ तिलोयपण्णत्ति है जो दो भागो मे प्रकाशित हो

चुका है।

दूसरा ग्रथ लोयविभाग है इसी प्राचीन परम्परा का था किन्तु अब केवल उसका सस्कृत सक्षिप्त रूपान्तर लोक विभाग ही उपलब्ध है। नेमिचद्र आचार्य का तिलोकसार और उसकी माधवचन्द्र कृत टीका एक महत्वपूर्ण रचना है। जम्बूदीव पण्णत्ति सग्रह भी इसी शाखा का प्रामाणिक अद्वितीय ग्रथ है।

आशा है इस महत्वपूर्ण और उपेक्षणीय विषय की ओर भी जनता का ध्यान आर्कपित होगा तव आप जान सकेंगे किस प्रकार हमारे आचार्यों ने विविध विषयो पर अपनी अनुपम रचनाए की है।

विदुषीरत्न श्री १०५ आर्यिका ज्ञानवती जी ने इस उत्तम पुस्तक में अत्यत रोचक और आकर्षक ढग से तीनो लोको का वर्णन किया है।

इस पुस्तक मे पाठको के लिए ज्ञान वर्धन की पर्याप्त सामग्री दी हुई है। जिसमे सभी जिज्ञासु भली प्रकार लाभ उठा सकेंगे।

छपाई कागज गेटअप आदि सभी सुन्दर और मनोहर है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि इस प्रकार के साहित्य को प्रकाशित करनें से प्राचीन साहित्य की ओर ध्यान आर्कषित होगा। माताजी का यह कार्य प्रशंसनीय और अनुकरणीय है।

पर्यूषण
२५०० वीर सम्वत्
दिल्ली

सुमेर चन्द जैन
एम० ए० (हिन्दी, सस्कृत)
सहित्यरत्न, न्यायतीर्थ, शास्त्री

प्राक्कथन

एक महायोजन मे २००० कोश होते है। एक कोश मे २ मील मानने से १ महायोजन मे ४००० मील हो जाते है। ४००० मील के हाथ बनाने के लिये १ मील सबधी ४००० हाथ से गुणा करने पर ४०००×४००० =१६०००००० अर्थात् एक महायोजन मे १ करोड ६० हाथ हुये।

वर्तमान मे रैखिक माप मे १७६० गज का १ मील मानते है। यदि १ गज में २ हाथ माने तो १७६०×२=३५२० हाथ का एक मील हुआ। पुन. उपर्युक्त एक महायोजन के हाथ १६०००००० मे ३५२० हाथ का भाग देने से १६००००००—३५२०=४५४५ ५/८८ मील हुये।

इस ग्रन्थ मे स्थूल रूप से व्यवहार मे १ कोश मे दो मील की प्रसिद्धि के अनुसार मुविधा के लिये सर्वत्र महायोजन के २००० कोश को २ मील से गुणा कर एक महायोजन मे ४००० मील मानकर उसी से गुणा करना चाहिए। कही-कही नक्शो मे योजन को ४००० मील से गुणा करके मीलो का प्रमाण दिखाया भी गया है।

इस 'त्रिलोक भास्कर' ग्रन्थ मे पेज ८ पर कोश और योजन बनाने की प्रक्रिया बतलाई गई है। उसका अच्छी तरह से मनन करके इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करना चाहिये।

आज कल कुछ लोग ऐसा कह दिया करते हैं कि पता नही आचार्यो के समय कोश का प्रमाण क्या था ? और योजन का प्रमाण भी क्या था ?

किंतु जब परमाणु से लेकर अवसन्नासन्न आदि परिभाषाओ से आगे बढते हुये जघन्य भोग भूमि के बालके ८ अग्रभागो का कर्म भूमि का १ बालाग्र होता है। तब तो इस व्यवस्था से यह बिल्कुल स्पप्ट हो जाता है कि भोग भूमियों के बाल की अपेक्षा कर्मभूमि के प्रारभ मे चतुर्थ काल के मनुष्यो का बाल भी मोटा था, पुन आज पचम काल के मनुष्यो का बाल तो उससे भी मोटा ही होगा।

आजके अनुसधान प्रिय विद्वानो को आजके बाल की मोटाई के हिसाब

से ही एक बार अंगुल, पाद, हाथ, कोश आदि बनाकर योजन के हिसाब का अनुमान लगाना चाहिये।[1]

श्री लक्ष्मी चंद्र एम्. एस् सी लिखते हैं कि।—

"इस योजन की दूरी आजकल के रैखिक माप मे क्या होगी ?

यदि हम २ हाथ=१ गज मानते है तो स्थलरूप से १ योजन ८००००००गज के बराबर अथवा ४५४५.४५ मील के बराबर प्राप्त होता है।

यदि हम एक कोश को आजकल के मील के समान मान लें, तो १ योजन ४००० मील के बराबर प्राप्त होता है।

कर्मभूमि के बालाग्र का विस्तार आजकल के सूक्ष्म यन्त्रो द्वारा किये गये मापो के अनुसार $\frac{१}{५००}$ इंच से लेकर $\frac{१}{३००}$ इंच तक होता है। यदि हम इस प्रमाण के अनुसार योजन का माप निकालें तो उपर्युक्त प्राप्त प्रमाणो से अत्यधिक भिन्नता प्राप्त होती है। बालाग्र का प्रमाण $\frac{१}{५००}$ इंच मानने पर १ योजन ४९·४८ ४८ मील प्रमाण आता है। कर्म भूमि का बालाग्र $\frac{१}{३००}$ इंच मानने से योजन ७४४७२.७२ मील के बराबर पाया जाता है। बालाग्र को $\frac{१}{२००}$ इंच प्रमाण मानने से योजन का प्रमाण और भी बढ़ जाता है"

इन लक्ष्मी चंद्र प्रोफेसर के समान अन्य विद्वानो को भी इस विषय मे समझने का प्रयत्न करना चाहिये। आगम कथित इन योजन आदि के प्रमाणो को कल्पना मात्र कल्पित कर लेना उचित नही है।

अत: एक महायोजन मे स्थूल रूप से ४००० मील समझना चाहिये, किंतु यह लगभग प्रमाण ही है। वास्तव मे एक महायोजन में इससे अधिक ही मील होंगे ऐसा हमारा अनुमान है। इस प्रकार तिलोयपण्णत्ति त्रिलोकसार, श्लोकवार्तिक आदि ग्रन्थो पर दृढ श्रद्धा रखते हुये अपने सम्यक्त्व को सुरक्षित रखना चाहिये। जब तक केवली, श्रुत केवली, के चरणो का सान्निध्य प्राप्त न हो तब तक अपने मन को चलायमान नही करना चाहिये। इस ग्रन्थ मे संक्षेप से तीन लोक का वर्णन किया गया है जो कि बहुत ही सरल भाषा मे है। उसे पढकर तीन लोक मे सर्वत्र घूमने से डरकर लोक के अग्रभाग मे स्थिर होने का प्रयत्न करना चाहिये।

मोतीचंद जैन सर्राफ
शास्त्री, न्यायतीर्थ

१२ अक्टूबर १९७४

१. जंबूद्वीप पण्णत्ति प्रस्तावना पेज २०

ग्रन्थमाला-परिचय

भगवान् महावीर स्वामी के परिनिर्वाणोत्सव के पुनीत अवसर पर स्थापित "दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध सस्थान' के अन्तर्गत ग्रन्थ प्रकाशन हेतु "वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला' की स्थापना वीर नि० स० २४९८ मे हुई है। ग्रन्थमाला का "प्रथमपुष्प' अष्टसहस्री प्रथमभाग (भाषानुवादसहित) श्रीमान् सेठ हीरालाल जी रानी वालो के द्रव्य से प्रकाशित हुआ है।-

अन्य ग्रन्थो के प्रकाशन की सुविधा के लिए १००१) एक हजार एक रुपये प्रदान करने वाले इस ग्रन्थमाला के सदस्य मनोनीत किये जाते है! कई ग्रन्थो का प्रकाशन कार्य चल रहा है ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित प्रत्येक ग्रन्थ की एक-एक प्रति ग्रन्थमाला के सदस्यो को भेट स्वरूप प्राप्त होती रहेगी। इस पुनीत कार्य हेतु निम्नलिखित धर्मानुरागी बन्धुओ ने १००१) की स्वीकृति प्रदान करके ग्रन्थ प्रकाशन मे सहयोग प्रदान किया है।

१—डा श्री कैलाशचद जी जैन [राजा टॉइज] दिल्ली
२—श्री नेमीचद जी जैन, रोहतक रोड, दिल्ली
३—श्री जवाहर लाल जी जैन, रोहतक रोड, दिल्ली
४—श्री छोटेलाल कैलाशचद जैन, टिकैतनगर, [बाराबकी, उ प्र]
५—श्री फूसूशाह प्रद्युम्नकुमार जैन, टिकैतनगर [बाराबकी, उ प्र.]
६—श्री मती शान्ती बाई जी जैन, कश्मीरी गेट, दिल्ली
७—श्री मती इलाइचा बाई जी जैन कश्मीरी गेट, दिल्ली
८—श्री अमोलकचद जी फूलचद सा जी जैन, सर्राफ सनावद [म. प्र.]
९—श्री मती केतकी देवी धर्मपत्नी सेठ श्रीपत जी जैन
(भा. व. महासभा के मत्री) अजमेर (राज.)
१०—श्री उमेशचद जी जैन नजफगढ, नई दिल्ली
११—श्री मागी लाल जी पहाडिया, हैदराबाद (आ. प्र)]
१२—श्री गिन्नी लाल जी, कलकत्ता—१२

१३—श्रीमती सौ. जीऊबाईजी हैदराबाद (आ. प्र.)
१४—श्री बालचन्द चन्द्रकुमार सन्तकुमार जैन, टिकैतनगर
१५—श्री रामचन्द्र जी ठेकेदार, जयपुर (राज.)
१६—श्री मूलचन्दजी राधे लालजी जैन बाण वाले, जयपुर (राज.)
१७—श्री श्याम लाल जी ठेकेदार, दिल्ली
१८—श्री बहादुर सिंह जी जौहरी, दरीबाकला, दिल्ली-६
१९—श्री भूपाल भीमगोंडा पाटील, बम्बई
२०—सुन्दर लाल जी जैन (सरधनपुर वाले) गांधीनगर, दिल्ली-३१।
२१—श्री मती मगनमाला देवी ध. प. डा. नरेन्द्र प्रसाद जी जैन, दरियागंज, दिल्ली
२२—श्री हीरालाल जी कमल चंदजी [हाथरस वाले] गांधी नगर, दिल्ली
२३—श्री अजित प्रसाद जी जैन [हाथरस वाले] गांधीनगर, दिल्ली
२४—श्रीमती मायावती धर्मपत्नी रघुनाथप्रसाद जी जैन गांधीनगर दिल्ली
२५—श्रीमती सुमित्रा देवी एवं महेन्द्रा देवी जैन, रूपनगर, दिल्ली।
२६—श्री विजयकुमार जी वैद्य, गांधीनगर, दिल्ली।
२७—श्री सुखानंद जी प्रेमचन्द जी जैन, परवरपुर (बहराईच, उ. प्र.)
२८—श्री महेशचंद जी जैन, रामनगर, लोनी रोड, शाहदरा, दिल्ली।
२९—श्री बीजालाल जी रतनलाल. जी जैन, मदनगंज (किशनगढ) (राज.)
३०—श्री लल्लूमल जी शीतल प्रसाद जी जैन सर्राफ, मेरठ (उ.प्र)
३१—श्री जोधामल जी कैलाशचंद जी जैन सर्राफ, मेरठ (उ प्र)
३२—श्री रघुनन्दन प्रसाद जी राजकुमार जी, जैन मेरठ (उ. प्र)
३३—सौ कुसुमलता देवी ध प. महेशचंद जी जैन हस्तिनापुर, (मेरठ, उ. प्र)
३४—श्री रोशन लाल जी जयपाल जी जैन, बिनौली (मेरठ उ. प्र)
३५—श्रीमती कुसुमलता देवी जैन ध. प. स्व लाला श्री कल्याणसिंह जी जैन शाहदरा-दिल्ली।
३६—श्री जय कुमार जी मूलचंद जी जैन सर्राफ, मेरठ, (उ. प्र)
३७—श्री जय चंद रायजी जैन, ५ वीरनगर जैन कालोनी, दिल्ली—७

विदुषीरत्न पू० आर्यिका श्री १०५ ज्ञानमती माताजी



जन्म	क्षुल्लिका दीक्षा—	आर्यिका दीक्षा—
टिकैतनगर (लखनऊ, उ प्र.)	आ० श्री देशभूषणजी से	आ. श्री वीरसागरजी से
सन् १९३४ वि. स. १९९१	श्री महावीर जी मे	माधोराजपुरा (राज०) मे
आसोज शु. १५ (शरद पू०)	वि. स २००९ चैत्र कृ. १	स. २०१३ वैशाख कृ २

पूज्य आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी

अनत तीर्थंकरो की जन्मभूमि अयोध्या के समीप बाराबकी जिले के छोटे से ग्राम टिकैतनगर मे सन् १९३४ वि स १९९१ मे आसोज शुक्ला पूर्णिमा (शरद पूनम) की धवलिम रात्रि मे अग्रवाल जातिय श्रेष्ठी श्री छोटेलाल जी के गृह मे माता मोहनी देवी ने प्रथम सतान के रूप कन्या रत्न को जन्म दिया।

जिनमदिर की छत्रछाया मे निवास स्थान होने से दैनिक जीवन चर्या मे कुछ विशेषता रही। जैन पाठशाला के प्रारभिक शिक्षण ने भी जीवन की सच्चाईयो का वोध प्राप्त करने मे सहयोग दिया। वाल्यावस्था मे ही पूर्वभव के सस्कारो का प्रभाव काम करने लगा।

प्रारंभ से ही आप ने आत्मवल को प्रधानता दी। मोक्षमार्ग की खोज मे निकलने की उत्कठा ने शरीर वल कमजोर होते हुए भी कदमो को दृढता प्रदान की।

आचार्यरत्न श्री देश भूषण जी महाराज का हस्तालवम्बन पाकर कृत कृत्य हो गई। यह घटना थी वि. स २००९ की। सर्व कुटुम्व परिवार का मोहत्याग कर विशिष्ट पुरुषार्थ करके श्री महावीर जो मे वि. स २००९ चैत्र कृ १ को आचार्य श्री से क्षुल्लिका दीक्षा धारण करली। अब यहाँ से ज्ञान एव वैराग्य मे प्रकर्षता प्रारम्भ हो गई। आचार्य श्री ने दृढ सकल्पी जानकर "वीरमती" नाम रखा।

तीन वर्ष से उपरात आचार्य प्रवर श्री वीरसागर जी महाराज से माधोराजपुरा (राज) मे स्त्रियोत्कृष्ट आर्यिका दीक्षा बैसाख कृष्णा २ सं. २०१३ को धारण कर ली। ज्ञानकी विशिष्ट उपलब्धि को देख कर आचार्य महोदय ने वीरमती से ज्ञानमता नाम रख दिया।

अब तो ज्ञानार्जन ही मुख्य लक्ष्य बन गया था जैसा आपका ज्ञान प्रखर है वैसा आपका वक्तृत्व भी ओजपूर्ण है। आपकी वाणी के ही पुनीत प्रभाव से अनेको भव्य प्राणी मोक्ष मार्ग मे लगे।

जिन्हे आपने त्यागी बनाया ज्ञानी बनें। आपके जीवन का वहु भाग इसी पुरुषार्थ में व्यतीत हुआ है। इसी प्रकार से साहित्य की सेवा में भी आप अग्रसर रही। आपकी हिन्दी संस्कृत की सारी रचनाए भाव पूर्ण एव हृदयग्राही है। उनमे-बाहुवली चरित्र व उषा वन्दना तीर्थंकरो एव आचार्यो की स्तुतिया विशेष है।

आपके दीक्षित जीवन का बहुभाग साथ मे रहने वाले छात्र छात्राओ के जीवन निर्माण मे व्यतीत हुआ जिसमे आपको बडे-बडे सघर्ष लेना पडे। जैसे स्वर्ण पाषाण को शुद्ध स्वर्ण बनाने मे अथक परिश्रम करना पडता है उसी प्रकार आपने अपनी सर्व शक्ति लगाकर भी सामान्य व्यक्तियो को महान् एव आदर्श बना दिया

गत दो तीन वर्षो से शारीरिक शक्ति अधिक क्षीण हो जाने के कारण आपने अपने कार्य क्षेत्र को मोडकर जिनवाणी माता की सेवा में लगा दिया। उसी के फल स्वरूप न्याय के महा ग्रन्थ अष्ट सहस्री का हिन्दी अनुवाद कर आपने एक गुरुतम कार्य को सम्पन्न किया है।

भगवान् महावीर की इस पच्चीसवी निर्वाण रजतशती के पावन अवसर पर आपके द्वारा विभिन्न लोकोपयोगी साहित्यिक एव रचनात्मक उपलब्धि हो रही है।

आपको त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति आदि भौगोलिक ग्रन्थो का प्रेम अधिक रहा है। आज इन ग्रन्थो का स्वाध्याय प्राय: कम हो गया। इसी-लिये आपने इन क्लिष्ट ग्रन्थों के सार को आबाल गोपाल को समझने की सुविधा के लिये त्रिलोकसार, तिलोयपण्णित्ति, जबूद्वीपपण्णत्ति, तत्त्वार्थ राज वार्तिक आदि ग्रन्थो का मथन करके उसके सार स्वरूप यह 'त्रिलोक भास्कर' ग्रन्थ तैयार किया है। यह ग्रन्थ यद्यपि सार मे से भी साररूप निकाला गया है फिर भी तीन लोक का ज्ञान कराने के लिये सूर्य के समान है। जैसे अग्नि का एक स्फुलिगा अग्नि का ही काम करता है वैसे ही यह ग्रन्थ भी आचार्यों की वाणी का अश रूप होकर भी तीनलोक की बहुत सी बातो को स्पष्ट करनें वाला है। ऐसे ही आपने 'जबूद्वीप' भगवान् महावीर कैसे बने ? यदि कई लघु पुस्तकें तैयार की है।

आपके द्वारा चिरकाल तक इस धरातल पर धर्म की महान् प्रभावना होती रहे यही मगल कामना है।

मोतीचंद जैन सर्राफ

त्रैलोक्य चैत्य वंदना

रचयित्री-परम विदुषीरत्न पूज्य आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी

महावीर प्रभुको वदन कर, त्रिभुवन के जिन भवनो की ।
करूँ वदना भक्ति भा वसे, राजित सव प्रतिमाश्रो की ॥१॥
भवनवासि देवो मे जिनगृह, सप्तकरोड़ वहत्तर लाख ।
भवविजयी की प्रतिमा उनमें, नमन करूँ हो दु.ख विनाश ॥२॥
पचमेरू के अस्सी जिनगृह, व र्म विजयि प्रतिमा तिनमे ।
पचम गति के प्राप्त करन को, भाव भक्ति से वदूँ मैं ॥३॥
कुलपर्वतके तीस जिनालय, रत्नमयी प्रतिमा भवहर ।
भवभय दु खहरन से हेतु करूँ वदना मन वच कर ॥४॥
रजताचल के इकसौ सत्तर, मदनविजयि जिनराजसदन ।
तिनमे प्रतिमा नमन करूँ मैं, शतेन्द्र नितप्रति करें गमन ॥५॥
वक्षारगिरी पर अस्सी जिन, भवनो मे प्रतिमा राज रही ।
करूँ वदना भक्तिभाव से, सुरनर मुनिगण पूज्य कही ॥६॥
गजदतगिरि के वीस भवन मे, रत्नमयी है सिहासन ।
उनपर मारदति मदहर्ता, जिनविवो को करूँ नमन ॥७॥
जबू शाल्मलि दश वृक्षो की, शाखाश्रो पर दश मदिर ।
कतुविजयि जिनकी प्रतिमाको, वदूँ सदा भाव शुचि कर ॥८॥
इष्वाकार चार पर्वत पर, चार जिनालय मे प्रतिमा ।
हाथ जोडकर नमू सदा मैं , जिनकी अतुल अकथ महिमा ॥९॥
मनुजोत्तर नगपर चउदिश मे, चार जिनसदन शोभ रहे ।
उनपर दतिवैरिविष्टरपर, राजित कृति हम नमन करे ॥१०॥

नदीश्वर वर द्वीप आठवाँ, बावन श्री जिनभवन वहा।
मणिमय कनक रजनमय, मनहर प्रतिमा वदूँ शीश नमा ॥११॥
वही चतुर्दिक अजनगिरि मे, कर्माजनच्युत श्री जिनगेह।
तिनमे नित्य निरजन प्रतिमा, वदूँ दुरिताजन हर हेत ॥१२॥
दधिमुख पर्वत सोलह तिनपर, सुरनुत चैत्यालय शोभें।
मोहविजयि की वहाँ मूर्तिया, वदूँ मैं सुरगण पूजे ॥१३॥
रतिकराद्रि वत्तीस जहा पर, जिन भवनो मे जिनप्रतिमा।
मोहतिमिर हर भास्कर जिनकी, वदन करूँ महा महिमा ॥१४॥
कुडलगिरि के चतुर्दिशा मे, चउ जिनगृह शोभा पाते।
काल विजयिके जिनबिबो को, वदन कर भव दुख जाते ॥१५॥
रूचकगिरी के चतुर्दिक चतु-अनंगजयि जिनमदिर है।
विघुतकर्म श्री जिनबिंबो को, वदन भावभक्ति कर है ॥१६॥
मध्यलोक के चार शतक, अठ्टावन अकृत्रिम मदिर।
स्मरविजयि जिनकी आकृतिया, वदूँ मैं मस्तक नत कर ॥१७॥
व्यंतरवासी देवो मे व्यतीत, सख्या जिनराज भवन।
मीनपताका विजयी जिनकी, प्रतिमा अनुपम करूँ नमन ॥१८॥
ज्योतिष सुर के अगणित जिनगृह मे चैत्यालय भास रहे।
रवि शशि दीप्ति विजित तेजोमय, जिन प्रतिमा की स्तुति कहें ॥१९॥
ऊर्ध्वलोक के प्रथम स्वर्ग मे, बत्तिस लक्ष भवन मनहर।
जितकषाय रिपु जिनवर प्रतिमा, वदूँ मैं भव पातक हर ॥२१॥
ईशान स्वर्ग में अठ्ठाइस, लक्ष प्रमित जिन सदनों में।
त्रिभुवन पूजित जिन प्रतिमा के, शत शत वंदन चरणों में ॥२२॥
सानत्कुमार दिव मे जिनगृह, बारह लक्ष प्रमाण कहे।
यम के अंतक जिनबिम्बो को, वदूँ मैं भवपाप वहे ॥२३॥
माहेन्द्र स्वर्ग मे आठ लक्ष, जिनभवनो मे जिन प्रतिमायें।
भक्तिभाव से नमस्कार कर, हम भी शाश्वत सुख पायें ॥२४॥
ब्रह्मयुगल स्वर्गो मे जिनगृह, चतुर्लक्ष महिमा अनुपम।
परमब्रह्म जिन प्रतिमा तिनमे, ब्रह्मसौख्य के लिये नमन ॥२५॥

लातव युगलमे सहस पचास, जिनालयो मे शोभ रही।
काल विजयि जिनवर की प्रतिमा, वदूँ सुर मन मोह रही ।।२६।।
शुक्र युगल स्वर्गो मे चालिस हजार जिनगृह शोभ रहे।
उनमे कतुविजयि जिनबिबो को वदत शिवसौख्य लहे ।।२७।।
शतार युग स्वर्गो मे श्री जिन, भवन छह सहस तिनमे है।
दिनकर किरण प्रभाधिक सुन्दर, जिनबिबो को वदूँ मैं ।।२८।।
आनत प्राणत आरण अच्युत, वहा सातशत भवन कहे।
तिनमें त्रिभुवन नुत तीर्थंकर की प्रतिकृति हम नमन करे ।।२९।।
तीन अधोग्रैवेयक मे इक-सौ ग्यारह जिन भवन नमूँ।
तहाँ मदन मदमर्दन जिन प्रतिमा को वदूँ पाप वमूँ ।।३०।।
मध्यम ग्रैवेयक तीनो मे, इकसो सात जिनालय है।
उनमे तीर्थंकरों की प्रतिमा, भवभय हरिये वदूँ मैं ।।३१।।
ऊर्ध्व ग्रैवेयक त्रय मे जिन, मदिर इक्यानवे प्रमाण।
चतुर्गति दुःख नाश हेतु मै, जिनबिबो को करूँ प्रणाम ।।३२।।
नवअनुदिश में नव मदिर घन, घाति अघाति विघातक के।
त्रिभुवन जन हृदयाम्बुज भास्कर, प्रतिमा वदूँ रूचि धरके ।।३३।।
पच अनुचर में पचालय, पचकल्याणक पति जिनके।
पचपरावर्तन से छूटूँ, मैं पचाग नमन करके ।।३५।।
आठ कोटि छप्पन सुलक्ष, सत्तावने हजार चार शतक।
इक्यासी जिनगृह अकृत्रिम, मनवचतन से नमू सतत ।।३६।।
अभिषेक प्रेक्षागृह क्रीडन, सगीत नाटक लोकगृह।
रत्नखचित वेदी मंडपमणि, मगलघट और धूप सुघट ।।३७।।
मणिमाला ध्वज तोरण शोभित, घटा किकणि ध्वनी सहित।
शालत्रय मानस्तभ-स्तूपादि उपवनो से वेष्टित ।।३८।।
इत्यादि विविध अनुपम वैभव-युत चैत्यालय शोभा पाते।
भव्य जनो का पाप दूर कर विचित्र महिमा बतलाते ।।
क्रोश चारसौ लबे दो सौ चौडे, ऊचे तीन शतक।
जिनगृह इनके अर्ध-मध्य का, जघन्य मिति के भेद विविध ।।४०।।

प्रति जिनगृह मे इकसौ आठ प्रम, हस्तदोसहस ऊचाई।
मध्यम लघु जिनगृह मे प्रतिमा, यथायोग्य परिमाण कही ॥४१॥
गर्भालय मे जिनवर सन्निधि, यक्ष मूर्तिया चामरयुत।
श्रीदेवी श्रुतदेवी सानत्कुमार, अरू सर्वाण्ह यक्ष ॥४२॥
अष्टमगल अठ प्रातिहार्ययुत, गधकुटी मे शोभत है।
कर्मजयी जिन प्रतिमा वदूँ, सुरनर मुनिगण वदित है ॥४३॥
नवसौ पचीस कोटि त्रेपन, लाख सताइस सहस प्रमाण।
नवसौ अडतालिस जिन प्रतिमा, शिवसुख हेतु करूँ प्रणम ॥४४॥
अकृत्रिम जिन प्रतिमा इतनी, ही सख्या मे आती है।
ज्योतिर्व्यंतर भवनो मे वे सख्यातीत कहाती हैं ॥४५॥
मानस्तभो मे तथा चैत्य, सिद्धार्थ वृक्ष काचन गिरिपर।
और जहाँ भी बिब राजते, नमू सदा मै अजलि कर ॥४६॥
गंगा प्रपात कुन्ड मे गगादेवी, के गृहकी छत पर।
जटाजूट के मुकुट सहित जिन, प्रतिमा वदूँ पातक हर ॥
हिमगिरसे पडता गगा बहा करती हुई अभिषेक महा।
इसीलिए लौकिक जन ने उस, गगा को भी पूज्य कहा ॥४७॥
जिनवर समवसरण मे मानस्तभ चैत्य सिद्धार्थ तरू।
इनमे प्रतिमा नमूँ गधकुटि मे, साक्षात् प्रभु दर्श करूँ ॥४८॥
जम्बूधातकि पुष्करार्घ ढाई, द्वीपो मे जिनमदिर।
मनुजचक्रवर्त्यादिक निर्मापित कृत्रिम वदू अघहर ॥४९॥
दश भरतैरावत विदेह मे, इकसौ साठ नगरियो के।
इकसौ सत्तर धर्मतीर्थंकर वदूँ त्रिकरण शुचि करके ॥५०॥
भूतभविष्यत् वर्तमान त्रैकालिक, त्रिभुवन तिलक महान्।
चौबीसी तीसो वदूँ मे पाप कर्म की होवे हान ॥५१॥
सीमधर आदिक तीर्थंकर, विहरमान बीसो सतत।
भव्यकमल बोधन दिनकर को, वदूँ मे क्षय हो पातक ॥५२॥
अनुपम गर्भावतरण, जन्मोत्सव सुरर्षिनुत निष्क्रमण।
कैवल्यज्ञान निर्वाण पचकल्याणक का नित करूँ नमन ॥५३॥

कैलाशगिरि, चपा पावापुरि, ऊर्जयत सम्मेदाचल ।
सिद्धक्षेत्र वदनसे होऊ, कर्मनाश कर पूर्ण विमल ।।५४।।
गणधर मुनिगण अमित जहाँ पर, मुक्ति धाम को प्राप्त हुये ।
नमूँ सभी निर्वाण भूमियाँ नितप्रति मन शुद्धि के लिये ।।५५।।
पचकल्याणक से पवित्र सब, क्षेत्र वदना करूँ सदा ।
पचमगति को शीघ्र प्राप्ति हो, भव दुःख फिर नहिं पाऊँ कदा ।।५६।।
अतिशय क्षेत्र सभी मे वदूँ अतिशय गुणसे जो है सिद्ध ।
सातिशय पुण्य हेतु भविजन को मुनिगण को हो ध्यान सुसिद्ध ।।५७।।
गोम्मटदेव सदा वदूँ जिनके दर्शन से भक्ति जगी ।
अकृत्रिम जिन बिंब दर्श की तथा तीव्र रुचि स्तवन की ।।५८।।
त्रिलोक मस्तक पर पैंतालिस, लक्ष सुयोजन सिद्ध शिला ।
भूतभवद्भावी अनत सब, सिद्ध नमूँ मन कमल खिला ।।५९।।
मृत्युजयि की प्रतिमा कृत्रिम तथा अकृत्रिम अप्रतिम है ।
भुवनत्रय मे जितनी भी उनको मम शिरसा वदन है ।।६०।।
अर्हत्सिद्ध आचार्य उपाध्याय और अखिल साधु वदूँ ।
उनके प्रतिबिम्बो को भी मैं, नमूँ कर्मपर्वत खडूँ ।।६१।।
कलिप्रभाव दलनपटु श्री चारित्र चक्रवर्ती ऋषिवर ।
शातिसिंधु, उन पट्ट शिष्य श्री-वीरसिंधु आचार्य प्रवर ।।
परपरागत शिवसिंधु आदि, सूरमुनिगणको नमूँ त्रिवार ।
सम्यग्ज्ञानवती भक्ति से पाऊ शाश्वतसौख्य अपार ।।६२।।
यह त्रिलोक जिन चैत्यवदना रुचि से जो नित पढते हैं ।
सो "सज्ज्ञानवती" भक्ति से त्रिभुवन पति सुख पाते हैं ।।६३।।



त्रैलोक्य जिन चैत्यालय एक दृष्टि में

अधोलोक संबंधी—

भवनवासी देवों के दश भेदों के पृथक्-पृथक्—

असुरकुमार के ६४०००००+नागकुमार के ८४०००००+सुपर्ण कुमार के ७२०००००+द्वीपकुमार के ७६०००००+उदधिकुमार के ७६०००००+स्तनितकुमार के ७६०००००+विद्युत्कुमार के ७६०००००+दिक्कुमार के ७६०००००+अग्निकुमार के ७६०००००+वायुकुमार के ९६०००००=७७२००००० जिनभवन हैं।

मध्यलोक संबंधी

जंबूद्वीप में—सुमेरु पर्वत के १६+गजदंत के ४+कुलाचल के ६+वक्षारपर्वत के १६+विदेहस्थ विजयार्ध के ३२+भरत-ऐरावत विजयार्ध के २+जंबू-शाल्मलि वृक्ष के २=७८ चैत्यालय हैं।

इस प्रकार जंबूद्वीप के ७८+धातकी खंड द्वीप के १५६+पुष्करार्ध के १५६+इष्वाकार के ४+मानुषोत्तर पर्वत के ४+नन्दीश्वर द्वीप के ५२+कुंडल पर्वत के ४+रूचकपर्वत के ४=४५८ चैत्यालय हैं।

ऊर्ध्वलोक संबंधी—

सौधर्म स्वर्ग के ३२०००००+ईशान स्वर्ग के २८०००००+सानत्कुमार के १२०००००+माहेन्द्र के ८०००००+ब्रह्मयुगल के ४०००००+लांतव युगल के ५००००+ शुक्र-महाशुक्र के ४००००+शतारसहस्रार के ६०००+आनत-प्राणत-आरण-अच्युत के ७००+तीन अधो ग्रैवेयक के १११+तीन मध्य ग्रैवेयक के १०७+तीन उर्ध्व ग्रैवेयक के ९१+नव अनुदिश के ९+पंच अनुत्तर के ५=८४९७०२३ चैत्यालय हैं।

तीनलोक के मिलकर ७७२०००००+४५८+८४९७०२३=८,५६,९७,४८१ होते हैं।

व्यंतरवासी और ज्योतिर्वासी देवों के असंख्यातो विमान होने से तत्संबंधी चैत्यालय भी असंख्यात हैं।

इन तीन लोक संबंधी जिन चैत्यालयों को मेरा मन, वचन, काय-पूर्वक बारबार नमस्कार होवे।

यावंति जिनचैत्यानि विद्यंते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या त्रिःपरीत्य नमाम्यहं॥

भगवान् महावीर स्वामी



सिद्धिप्रद महावीरं ससारार्णवपारगं ।
सन्मति शिरसा वंदे, नित्यं सन्मतिसिद्धये ।।

ॐ

त्रिलोक भास्कर

मंगलाचरण

सिद्धिप्रदानि चैत्यानि, यावंति भुवनत्रये ।
तावंति शिरसा वंदे, नित्य सर्वार्थसिद्धये ।।

सामान्य लोक का वर्णन

सर्वज्ञ भगवान से अवलोकित अनतानंत अलोकाकाश के बहुमध्य भाग में ३४३ राजू प्रमाण पुरुषाकार लोकाकाश है। यह लोकाकाश जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल इन पाचो द्रव्यो से व्याप्त है। आदि और अन्त से रहित-अनादि अनत है, स्वभाव से ही उत्पन्न हुआ है। छह द्रव्यो से सहित यह लोकाकाश स्थान निश्चय ही स्वय प्रधान है। इसकी सब दिशाओ मे नियम से अलोकाकाश स्थित है।

इस लोक के ३ भेद है—अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक।

अधोलोक का आधार स्वभाव से वेत्रासन के सदृश, मध्यलोक का आकार खडे किये हुए मृदग के ऊपरी भाग के समान एव ऊर्ध्वलोक का आकार खडे किये हुए मृदग के सदृश है।

सम्पूर्ण लोक की ऊचाई १४ राजू प्रमाण है एव मोटाई, सर्वत्र ७ राज है।

तीन लोक के जड़ भाग से लोक की ऊंचाई का प्रमाण

अधोलोक की ऊँचाई ७ राजू, मध्यलोक की ऊचाई १ लाख ४० योजन एवं ऊर्ध्वं लोक की ऊँचाई ७ राजू प्रमाण है। असख्याती योजनो का १ राजू होता है। १४ राजू ऊँचे लोक में, ७ राजू में नरक एव ७ राजू में स्वर्ग है, इन दोनो के मध्य में १ लाख ४० योजन ऊँचा सुमेरू पर्वत है, बस इसी सुमेरू प्रमाण ऊँचाई वाला मध्य लोक है जो कि ऊर्ध्व-लोक का कुछ भाग है और वह राजू मे ना कुछ के समान है। अतएव ऊँचाई के वर्णन मे ७ राजू मे अधोलोक एव सात राजू मे ऊर्ध्वलोक कहा गया है।

लोक की चौड़ाई का प्रमाण

नरक के तलभाग मे चौड़ाई ७ राजू है। घटते-घटते यह चौडाई मध्यलोक मे १ राजू रह गई है। पुनः मध्यलोक से ऊपर वढते-वढते ब्रह्म लोक – पाचवे स्वर्ग तक चौडाई ५ राजू हो गई है। पाचवे ब्रह्म स्वर्ग से आगे घटते-घटते सिद्ध शिला तक चौड़ाई पुन· १ राजू रह गई है।

त्रस नाली का प्रमाण

तीनो लोको के वीचो-वीच मे १ राजू चौडी एव १ राजू मोटी तथा कुछ कम १३ राजू ऊँची त्रसनाली है। इस त्रसनाली मे ही त्रस जीव पाये जाते है।

अधोलोक के राजू का वर्णन

मृदगाकार अधोलोक मे रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पक-प्रभा, धूमप्रभा, तम.प्रभा, और महातम प्रभा ये सात पृथिवियाँ है, जोकि कुछ कम एक-एक राजू के अन्तराल से है अर्थात् इन पृथिवियो की मोटाई क्रम से १ लाख ८० हजार योजन, वत्तीस हजार योजन, अट्ठाईस हजार योजन आदि है, जिसका वर्णन आगे आयेगा। मध्य लोक के अधोभाग से

लेकर पहला राजू शर्करा पृथिवी के अधोभाग मे पूर्ण होता है। अर्थात् १ राजू मे रत्नप्रभा और शर्करा प्रभा ये दोनो ही पृथिवी है। इसके आगे दूसरा राजू प्रारम्भ होकर बालुकाप्रभा के अधोभाग में पूर्ण होता है। तीसरा राजू पकप्रभा पृथ्वी के अधोभाग मे समाप्त होता है। इसके अनन्तर चौथा राजू धूमप्रभा के अधोभागमे, पाचवा राजू तम प्रभा के अधोभाग मे, छठा राजू महातम प्रभा के अन्त मे एव सातवा राजू अधोलोक के तल भाग मे समाप्त होता है। मतलब यह है कि १ राजू मे २ नरक, ५ राजू मे पाँच नरक, ऐसे ६ राजू मे ७ नरक एव १ राजू मे निगोद भाग स्थित है—ऐसा समझना चाहिये।

१ राजू में—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा
१ राजू मे—बालुकाप्रभा
१ राजू मे—पँक प्रभा
१ राजू मे—धूमप्रभा
१ राजू मे—तम प्रभा
१ राजू मे—महातम प्रभा
१ राजू में—नित्य निगोद, ऐसे सात राजू हुए।

अधोलोक से मध्यलोक तक की चौड़ाई घटने का क्रम

अधोलोक के तल भाग मे—७ राजू
सातवी पृथिवी के निकट—६ १/७ राजू
छठी पृथिवी के निकट—५ २/७ राजू
पाचवी ,, ,, ,,—४ ३/७ राजू
चौथी ,, ,, ,,—३ ४/७ राजू
तीसरी ,, ,, ,,—२ ५/७ राजू
दूसरी ,, ,, ,,—१ ६/७ राजू
प्रथम ,, ,, ,,—१ राजू मात्र
सपूर्ण मध्यलोक की चौडाई १ राजू मात्र ही है।

ऊर्ध्व लोक में राजू के प्रमाण का वर्णन

मध्यलोक के ऊपरी भाग से सौधर्म विमान के ध्वजदण्ड तक १ लाख ४० योजन कम १$\frac{१}{२}$ राजू प्रमाण ऊँचाई है। इसके आगे माहेन्द्र और सानत्कुमार के ऊपरी भाग तक १$\frac{१}{२}$ राजू पूर्ण होता है। अनन्तर ब्रह्मोत्तर के ऊपरी भाग मे $\frac{१}{२}$ राजू, कापिष्ठ के ऊपरी भाग में $\frac{१}{२}$ राजू, महाशुक्र के ऊपरी भाग में $\frac{१}{२}$ राजू, एवं सहस्रार के ऊपरी भाग मे $\frac{१}{२}$ राजू, आनत के ऊपरीभाग में $\frac{१}{२}$ राजू, आरण के ऊपरी भाग मे $\frac{१}{२}$ राजू समाप्त होता है। पुन. १ राजू की ऊँचाई मे ९ ग्रैवेयक, ९ अनुदिश, ५ अनुत्तर एव सिद्ध शिला है। अर्थात्—

कुछ कम १$\frac{१}{२}$ राजू मे—सौधर्म, ईशान स्वर्ग

१$\frac{१}{२}$ राजू मे—सानत्कुमार, माहेन्द्र स्वर्ग

$\frac{१}{२}$ राजू मे—ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्ग

$\frac{१}{२}$ राजू मे—लातव, कापिष्ठ „

$\frac{१}{२}$ राजू मे—शुक्र, महाशुक्र „

$\frac{१}{२}$ राजू मे—सतार, सहस्रार „

$\frac{१}{२}$ राजू में—आनत, प्राणत „

$\frac{१}{२}$ राजू मे—आरण, अच्युत „

१ राजू में—९ ग्रैवेयक, ९ अनुदिश, ५ अनुत्तर और सिद्ध शिला पृथिवी है।

१$\frac{१}{२}$+१$\frac{१}{२}$+$\frac{१}{२}$+$\frac{१}{२}$+$\frac{१}{२}$+$\frac{१}{२}$+$\frac{१}{२}$+$\frac{१}{२}$+१=७ राजू

प्रथम स्वर्ग से सिद्धशिला तक लोक की चौड़ाई बढ़ने घटने का क्रम

मध्यलोक में— १ राजू

सौधर्म, ईशान स्वर्ग के अन्त मे चौडाई—२$\frac{५}{७}$ राजू

सानत्कुमार, माहेन्द्र „ „ „ —४$\frac{३}{७}$ राजू

ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर „ „ —५ राज

लातव, कापिष्ठ स्वर्ग के अन्त में चौडाई		—४$\frac{३}{७}$ राजू
शुक्र, महाशुक्र	,,	,,—३$\frac{६}{७}$ राजू
सतार, सहस्रार	,,	,,—३$\frac{२}{७}$ राजू
आनत, प्राणत	,,	,,—२$\frac{५}{७}$ राजू
आरण, अच्युत	,,	,,—२$\frac{१}{७}$ राजू
९ ग्रैवेयक, ९ अनुदिश ५ अनुत्तर एव सिद्ध शिलातक चौडाई	}—	१ राजू

अपने-अपने अन्तिम इन्द्रक विमान सम्बन्धी ध्वज दन्ड के अग्रभाग तक उन-उन स्वर्गो का अन्त समझना चाहिए और लोक का जो अन्त है वही कल्पातीत भूमि का भी अन्त है।

जैन सिद्धान्त में ८ पृथिवी मानी गई है। ७ नरक की ७ पृथिवी एव १ मोक्ष-पृथिवी—ऐसे पृथिवी के ८ भेद है।

वातवलयों का वर्णन

इस लोकाकाश को चारो तरफ से वेष्टित करके तीन वातवलय है। ये वायुकायिक जीवो के शरीर स्वरूप है। यद्यपि वायु अस्थिर स्वभाव वाली है फिर भी ये तीनो वातवलय स्थिर स्वभाव वाले वायुमण्डल है। इनके (१) घनोदधिवातवलय (२) घनवातवलय एव (३) तनुवातवलय ये तीन भेद है।

घनोदधिवात गोमूत्र वर्ण वाला है, घनवात मूग के समान वर्णवाला एव तनुवात अनेक वर्ण वाला है। चारो तरफ से लोक को वेष्टित करके सर्व प्रथम घनोदधिवातवलय स्थित है। इस घनोदधि को वेष्टित करके घनवात एव घनवात को वेष्टित करके तनुवातवलय स्थित है। तनुवातवलय के चारो तरफ अनन्त अलोकाकाश है।

आठ पृथिवियो के नीचे तलभाग मे १ राजू की ऊँचाई तक इन तीनो वायुमण्डलो मे से प्रत्येक की मोटाई बीस हजार योजन प्रमाण है।

सातवे नरक मे पृथिवी के पार्श्व भाग में क्रम से इन तीनो वातवलयो की मोटाई सात, पाच और चार योजन है। इसके ऊपर मध्यलोक के पार्श्व भाग में पाच, चार और तीन योजन प्रमाण है।

इसके आगे तीनो वायु की मोटाई ब्रह्मस्वर्ग के पार्श्व भाग मे क्रम से ७, ५ और ४ योजन है तथा ऊर्ध्व लोक के अन्त मे—पार्श्व भाग मे ५, ४ व ३ योजन प्रमाण है। लोक शिखर के ऊपर तीनो वातवलयो की मोटाई क्रमश २ कोस, १ कोस और कुछ कम १ कोस प्रमाण है। अर्थात्— लोक के तल भाग से १ राजू तक—तीनों वातवलय बीस-बीस हजार योजन २००००+२००००+२००००=६०००० योजन

सातवे नरक के पास- ७+५+४=१६ योजन

मध्य लोक के पार्श्व भाग मे—५+४+३=१२ योजन

ब्रह्म स्वर्ग के पार्श्व भाग में—७+५+४=१६ योजन

लोक के पार्श्व भाग मे—५+४+३=१२ योजन

लोक के शिखर पर—२ कोस, १ कोस, ४२५ धनुष कम १ कोस (१५७५ धनुष)

लोक का घनफल

यह लोक तल मे ७ राजू, मध्य में १, पाचवे स्वर्ग मे ५, और अन्त मे १ राजू है इन चारो स्थानो की चौडाई को जोड देने से ७+१+५+१ =१४ राजू हुये। इस १४ मे ४ का भाग देने से १४—४=३½ राजू हुए। इसमे लोक के दक्षिण-उत्तर की मोटाई का गुणा कर देने से ३½×७= २४½ हुए। फिर इस चौडाई और मोटाई के गुणनफल मे १४ राजू का गुणा कर देने से २४½×१४=३४३ राजू हुये। इस लोकाकाश का घनफल ३४३ राजु प्रमाण है।

अधोलोक का घनफल

लोक के नीचे पूर्व-पश्चिम चौडाई ७ राजू और मध्य लोक में १ राजू इन दोनों को मिलाने से ७+१=८ राजू हुए। पुन इसे आधा करने से

८÷२=४, इसमे दक्षिण-उत्तर की मोटाई ७ राजू का गुणा करने से ४×७=२८ राजू हुये। इसमे अधोलोक की ऊँचाई ७ राजू से गुणा करने से २८×७=१९६ राजू हुए। यह अधोलोक का घनफल है।

ऊर्ध्व लोक का घनफल

मध्य लोक मे पूर्व-पश्चिम दिशा की चौड़ाई १ राजू, आगे ब्रह्म स्वर्ग के पास ५ राजू, दोनो को मिलाने से १+५=६ राजू हुऐ। इसे आधा करके ६÷२=३, दक्षिण उत्तर की मोटाई ७ राजू से गुणा करके ३×७=२१ हुए, इसमे ब्रह्मस्वर्ग तक की ऊँचाई ३$\frac{१}{२}$ राजू का गुणा करके २१×३$\frac{१}{२}$=७३$\frac{१}{२}$ राजू हुए। यह मध्य लोक से ब्रह्म स्वर्ग तक का घनफल है और इतना ही ब्रह्मस्वर्ग से आगे लोक के अन्त का घनफल है अत ७३$\frac{१}{२}$+७३$\frac{१}{२}$=१४७ राजू प्रमाण सपूर्ण ऊर्ध्व लोक का घनफल हुआ है।

अधोलोक का घनफल १९६ और ऊर्ध्व लोक का १४७ राजू है दोनो-को मिला देने से १९६+१४७=३४३ राजू प्रमाण सारे लोक का घनफल होता है।

इस प्रकार लोकाकाश का घनफल ३४३ राजू प्रमाण है।

त्रस नाली का वर्णन

लोक के वहुमध्य भाग मे एक राजू चौड़ी एक राजू मोटी और कुछ कम १३ राजू ऊची त्रसनाली है, जो कि त्रस जीवो का निवास क्षेत्र है अर्थात् इस त्रसनाली के भीतर ही त्रस जीव पाये जाते है वाहर नही। तेरह राजू मे कुछ कम जो कहा है उस कमी का प्रमाण—

३२१६२२४१$\frac{२}{३}$ धनुप कम १३ राजू।

इस त्रसनाली के वाहर भी उपपाद, मारणातिकसमुद्घात और केवलीसमुद्घात इन तीन अपेक्षाओ से त्रस जीवो का अस्तित्व पाया जाता है।

उपपाद :—किसी भी विवक्षित भव के प्रथम समय की पर्याय को उपपाद कहते है। लोक के अन्तिम वातवलय में स्थित कोई जीव मरण करके विग्रहगति द्वारा त्रसनाली में त्रस पर्याय से उत्पन्न होने वाला है, वह जीव जिस समय मरण करके प्रथम मोड़ा लेता है उस समय त्रस नाम कर्म का उदय आ जाने से त्रस पर्याय को धारण करने पर भी त्रसनाली के वाहर है। इसलिये उपपाद की अपेक्षा त्रस जीव त्रसनाली के वाहर रहता है।

मारणांतिक समुद्घात :—त्रसनाली में स्थित किसी जीव के अन्तर्मुहूर्त पहले मारणांतिक समुद्घत के द्वारा त्रसनाली के वाहर के प्रदेशो का स्पर्श किया क्योंकि उसको मरण करके वही स्थावर मे उत्पन्न होना है तो उस समय मे भी त्रस जीव का अस्तित्व त्रस नाली के वाहर पाया जाता है।

केवली समुद्घात :—जव आयु कर्म की स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र ही वाकी हो परन्तु नाम, गोत्र और वेदनीय कर्म की स्थिति अधिक हो तव सयोग केवली भगवान् के दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात होता है और ऐसा होने से तीनो कर्मो की स्थिति भी आयु कर्म के वरावर हो जाती है। इन तीनो अवस्थाओ मे त्रस जीव त्रसनाली के वाहर भी पाये जाते है।

कोस एवं योजन बनाने की विधि

पुगद्ल के सवसे छोटे अणु को परमाणु कहते है।

ऐसे अनतानन्त परमाणुओ का	१ अवसन्नासन्न
८ अवसन्नासन्नका	१ सन्नासन्न।
८ सन्नासन्न का	१ त्रुटिरेणु।
८ त्रुटिरेणु का	१ त्रसरेणु।
८ त्रसरेणु का	१ रथरेणु।

८ रथरेणु का—उत्तम भोग भूमिज के बाल का १ अग्रभाग।

उत्तमभोगभूमि के बाल के— ८ अग्रभागों का	मध्यम भोग भूमिज के बाल का १ अग्रभाग ।
मध्यम भोग भूमिज के बाल के— ८ अग्रभागों का	जघन्य भोग भूमिज के बालका १ अग्रभाग
जघन्य भोग भूमिज के बाल के ८ अग्रभागों का	— कर्म भूमिज के बाल का १ अग्रभाग
कर्म भूमिज के बाल के ८ अग्रभागों का	१ लिक्षा
८ लिक्षा का	१ जू
८ जू का	१ जौ
८ जौ का	१ अंगुल

इसे ही उत्सेधांगुल कहते हैं इससे ५०० गुणा प्रमाणांगुल होता है ।

६ उत्सेधांगुल का	१ पाद
२ पाद का	१ बालिश्त
२ बालिश्त का	१ हाथ
२ हाथ का	१ निष्कू
२ निष्कू का	१ धनुष
२००० धनुष का	१ कोस
४ कोस का	१ लघुयोजन
५०० योजन का	१ महायोजन

एक महायोजन में २००० कोस होते हैं ।

असंख्यात योजनों का एक राजू होता है ।

अंगुल के तीन भेद हैं—उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और आत्मांगुल ।

बालाग्र, लिक्षा, जू और जौ से निर्मित जो अंगुल होता है वह उत्सेधांगुल है ।

पाचसौ उत्सेधांगुल प्रमाण एक प्रमाणांगुल होता है ।

अवसर्पिणी काल के प्रथम भरत चक्रवर्ती का एक अंगुल प्रमाणांगुल के प्रमाण वाला है ।

जिस जिस काल मे भरत और ऐरावत क्षेत्र में जो मनुष्य हुआ करते है उस उस काल में उन्ही उन्ही मनुष्यों के अगुल का नाम आत्मागुल है।

इस उत्सेधांगुल से ही उत्सेधकोस एव चार उत्सेध से एक योजन बनता है यह लघुयोजन कहलाता है।

इस उत्सेध योजन से पाच सौ गुणा प्रमाण महा योजन होता है।

उत्सेधांगुल से किनका प्रमाण है ?

देव, मनुष्य, तिर्यच एव नारकियों के शरीर की ऊचाई का प्रमाण और चारो प्रकार के देवो के निवास स्थान व नगर आदि का प्रमाण उत्सेध अगुल, उत्सेध कोस, से होता है।

प्रमाणांगुल से किन-किन का माप होता है ?

द्वीप, समुद्र, कुलाचल, वेदी, नदी, कुण्ड, सरोवर, जगती और भरत आदि क्षेत्र इन सवका प्रमाण प्रमाणागुल से जाना जाता है।

आत्मांगुल से किन-किन का प्रमाण होता है ?

झारी, कलश, दर्पण, वेणु, भेरी, युग, शय्या, शकट, हल, मूसल, शक्ति, तोमर, वाण, नालि, अक्ष, चामर, दुदुभि, पीठ, छत्र, मनुष्यो के निवास स्थान, नगर और उद्यान आदि का प्रमाण आत्मांगुल से समझना चाहिए।

पल्य बनाने की प्रक्रिया

चार कोस का एक योजन होता है। एक योजन प्रमाण विस्तार वाले गोल गड्ढे का घनफल $\frac{१९}{६}$ योजन प्रमाण है। इस १ योजन प्रमाण वाले गड्ढे मे मेढो के रोम के इतने छोटे टुकडे करके (जिसके पुन: दो टुकडे न हो सकें) खचाखच भर दे। उसमे जितने रोम है उनका प्रमाण—४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२००००००००००-०००००००० । इस गड्ढे के इतने रोमो मे से सौ-सौ वर्ष मे एक-एक रोम खण्ड के निकालने पर जितने समय मे वह गड्ढा खाली हो जाये उतने काल को 'व्यवहार पल्य' कहते है।

इस व्यवहार पल्य की रोम राशि को, असख्यात करोड वर्षों के जितने समय है उतने खण्ड करके, उनसे दूसरे पल्य को भरकर पुन. एक-एक समय मे एक-एक रोम खण्ड को निकालो इस प्रकार जितने समय मे वह दूसरा पल्य खाली हो जाय उतने काल को उद्धार पल्य कहते है।

इस उद्धार पल्य से द्वीप और समुद्रो का प्रमाण जाना जाता है। इस उद्धार पल्य की रोम राशि मे से प्रत्येक रोम खण्ड के असख्यात वर्षों के समय प्रमाण खड करके तीसरे गड्ढे के भरने पर और पहले के समान एक एक समय मे एक-एक रोम खण्ड को निकालने पर जितने समय मे वह गड्ढा रिक्त हो जाय उतने काल को 'अद्धापल्य' कहते है।

इस अद्धापल्य मे नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देवो की आयु तथा कर्मों की स्थिति का प्रमाण जाना जाता है।

सागर का प्रमाण

इन दश कोडाकोडी पल्यो का जो प्रमाण हो उतना पृथक्-पृथक् सागरोपम का प्रमाण होता है। अर्थात् दश कोडाकोडी व्यवहार पल्यो का एक व्यवहार सागर, दस कोडाकोडी उद्धार पल्यो का एक उद्धारसागर, एव दश कोडाकोडी अद्धापल्यो का एक 'अद्धासागर' होता है।

इस ग्रन्थ मे आगे सर्वत्र यह ध्यान रखना चाहिए कि उत्सेधागुल से देव, मनुष्य, तिर्यंच, नारकियो के शरीर की ऊचाई चारो प्रकार के देवो के निवासस्थान, नगर आदि का प्रमाण होता है।

द्वीप, समुद्र, कुलपर्वत, वेदी, जगती, नदी, सरोवर, कुण्ड, भरत आदि क्षेत्रों का प्रमाण महायोजन से होता है।

अधोलोक का वर्णन

अधोलोक मे सबसे पहली मध्यलोक से लगती हुई रत्नप्रभा पृथ्वी है। इससे कुछ कम एक राजू नीचे शर्करा प्रभा है। इसी प्रकार से एक-एक राजू नीचे वालुकाप्रभा आदि पृथ्विया है।

इन पृथिवियों के अन्य नाम

घर्मा, वशा, मेघा, अजना, अरिष्टा, मघवी और माघवी ये नाम भी इन सातो ही पृथ्वियो के अनादि निधन हैं।

रत्नप्रभा पृथिवी के ३ भाग हैं—खरभाग, पकभाग और अव्वहुल भाग।

रत्नप्रभा पृथ्वी १ लाख ८० हजार योजन मोटी है। इसमे—खरभाग १६००० योजन, पकभाग ८४००० योजन एव अव्वहुलभाग ८०००० योजन का है।

इनमे से भी खरभाग १६ भेदों से सहित है।

चित्रा, वज्रा, वैडूर्या, लोहिता, कामसारकल्पा, गोमेदा, प्रवाला, ज्योतिरसा, अजना, अजनमूलिका, अका, स्फटिका, चन्दना, सर्वार्थका, वकुला और शैला ये १६ भेद हैं।

खरभाग की मोटाई १६००० योजन है एव ये उपर्युक्त पृथिविया भी १६ है। प्रत्येक पृथिवी एक—एक हजार योजन प्रमाण मोटाई वाली हैं। लम्वाई और चौडाई से ये पृथिविया लोक के वरावर है।

इस मध्यलोक से सवसे प्रथम चित्रा पृथिवी है। जिसके ऊपर के भाग पर ही मध्यलोक की रचना है। इस चित्रा पृथिवी में अनेक वर्णो से युक्त महीतल, शिलातल, उपपाद, वालु, शक्कर, शीसा, चादी, सुवर्ण इनके उत्पत्तिस्थान वज्र, लोहा, तावा, रागा, मणिशिला, सिगरफ, हरिताल, अजन, प्रवाल, गोमेदक, रूचक, कदव, स्फटिक मणि, जलकात मणि, सूर्यकातमणि, चन्द्रकातमणि, वैडूर्य, गेरू, चन्द्राश्म आदि विविधि वर्णवाली अनेक धातुए है। इसीलिए इस पृथिवी का "चित्रा" नाम सार्थक है।

खरभाग और पकभाग मे भवनवासी तथा व्यतरवासी देवो के निवास है। इनका वर्णन आगे आवेगा और अव्वहुल भाग मे प्रथम नरक के विल है जिनमे नारकी लोगो के आवास है।

यह पहली रत्नप्रभा पृथिवी वहुत प्रकार के रत्नो से सहित शोभायमान होती है अत. इसका 'रत्नप्रभा' नाम सार्थक है।

सातों पृथिवियों की मोटाई का प्रमाण

रत्नप्रभा —	१ लाख ८० हजार योजन
शर्कराप्रभा—	३२००० योजन
वालुकाप्रभा—	२८००० योजन
पकप्रभा —	२४००० योजन
धूमप्रभा —	२०००० योजन
तम प्रभा —	१६००० योजन
महातम·प्रभा—	८००० योजन

ये सातो ही पृथिविया ऊर्ध्व दिशा को छोड शेप ६ दिशाओ मे घना-दधि वातवलय से लगी हुई है, परन्तु आठवी मोक्षपृथिवी दशो दिशाओं में ही घनोदधि वातवलय को छूती है।

नरक के बिलों का वर्णन

सातो नरको के विलो की सख्या चौरासी लाख प्रमाण है—

प्रथम पृथिवी के —	३०,००००० विल
द्वितीय „ „ —	२५,००००० विल
तृतीय „ „ —	१५,००००० विल
चौथी „ „ —	१०,००००० विल
पाँचवी „ „ —	३,००००० विल
छठी „ „ —	९९,९९५ विल

एव सातवी पृथिवी के— ५ विल है।

अव्वहुल भाग से पहले नरक से लेकर छठे नरक तक जो पृथिवियो का प्रमाण है उनके ऊपर व नीचे एक–एक हजार योजन प्रमाण मोटी पृथिवी को छोडकर पटलो के क्रम से नारकियो के विल है और सातवी पृथिवी के ठीक मध्य भाग मे ही नारकियो के विल है।

शीत उष्ण बिलों का प्रमाण

पहली, दूसरी, तीसरी व चौथी पृथिवी के सभी बिल एवं पाचवी पृथिवी के चार भागो मे से तीन भाग (¾) प्रमाण बिल अत्यन्त उष्ण होने से वहा रहने वाले जीवो को तीव्र गर्मी की पीडा पहुचाने वाले है। पाचवी पृथिवी में अवशिष्ट ¼ भाग प्रमाण बिल तथा छठी और सातवी पृथिवी मे स्थित नारकियो के बिल अत्यन्त शीत होने से वहा रहने वाले जीवों को भयानक शीत की वेदना देने वाले है।

नारकियो के उपर्युक्त ८४००००० बिलो में से ८२२५००० उष्ण एव १७५००० बिल अत्यन्त शीत है।

यदि उष्ण बिल मे मेरू के बराबर लोहे का शीतल पिंड डाल दिया जाए तो वह तल प्रदेश तक न पहुच कर बीच मे ही मैन (मोम) के टुकडे के समान पिघल कर नष्ट हो जाएगा।

इसी प्रकार यदि मेरूपर्वत के बराबर लोहे का उष्ण पिड शीत बिल में डाल दिया जाए तो वह भी तल प्रदेश तक न पहुच कर बीच में ही नमक के टुकडे के समान विलीन हो जायेगा।

बकरी, हाथी, घोडा, भैंस, गधा, ऊँट, बिल्ली, सर्प और मनुष्यादिक के सडे हुए मास की गन्ध की अपेक्षा नारकियो के बिल अनतगुणी दुर्गंध से युक्त है। स्वभावत. गाढ अन्धकार से परिपूर्ण ये नारकियो के बिल क्रकच कृपाण, छुरिका, खैर की आग, अति तीक्ष्ण सुई और हाथियो की चिघाड़ से भी अत्यन्त भयानक हैं।

नारक बिलों में भेद

ये नारकियो के बिल इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक के भेद से तीन प्रकार के है।

इन्द्रक—जो अपने पटल के सब बिलों के बीच मे हो वह इन्द्रक कहलाता है।

श्रेणीबद्ध—जो विल चारो दिशाओ और चारो विदिशाओं में पक्ति से स्थित रहते है वे श्रेणीबद्ध हैं।

प्रकीर्णक—श्रेणीवद्ध विलो के वीच मे इधर-उधर रहने वाले विलो को प्रकीर्णक सज्ञा है।

रत्नप्रभा आदिक ७ पृथिवियो मे क्रम से १३, ११, ९, ७, ५, ३, १ इस प्रकार कुल ४९ इन्द्रक विल है। इन्हे प्रस्तार एव पटल भी कहते है।

प्रथम नरक में १३ इन्द्रक पटल है। ये एक पर एक ऐसे खन पर खन बने हुए के समान है। ये तलघर के समान भूमि मे है एव चूहे आदि के बिलों के समान है। औधे मुख बने हुए है। व्यवस्थित दरवाजे खिडकी आदिको से रहित है। इसीलिए इनका बिल नाम सार्थक है।

पहले नरक के इंद्रक बिलों के नाम

सीमंतक, निरय, रौरव, भ्रात, उद्भ्रात, सभ्रात, असम्भ्रात, विभ्रात त्रस्त त्रसित,वक्रान्त, अवक्रान्त और विक्रान्त ये १३ इन्द्रक है।

इन्द्रक और श्रेणीबद्ध विलों का प्रमाण

पहले 'सीमतक' नामक इंद्रक विल की चारो दिशाओ मेउनचास–उनचास और चारो विदिशाओ मे ४८–४८ श्रेणीवद्ध विल हैं। 'सीमन्तक' इन्द्रक सम्वन्धी श्रेणीवद्ध विलो का प्रमाण ३८८ है—दिशा सम्वन्धी ४९ को ४ से गुणा एव विदिशा सम्वन्धी ४८ को ४ से गुणा करने पर ४९×४ =१९६, ४८×४=१९२। १९६+१९२=३८८ होता है।

इससे आगे दूसरे निरय आदि इन्द्रक विलो के आश्रित रहने वाले श्रेणीवद्ध विलो मे से एक एक विल कम होता जाता है। इसी प्रकार प्रथम पृथिवी सम्वन्धी इन्द्रक व श्रेणीवद्ध विलो का प्रमाण ४४३३ है। सम्पूर्ण-सातो पृथिवियो मे कुल ९६५३ इन्द्रक व श्रेणीवद्ध विल हैं। यथा—

	इन्द्रक		श्रेणीवद्ध
प्रथम पृथिवी में—	१३		४४२०
द्वितीय ,, ,, —	११		२६८४
तृतीय ,, ,, —	९		१४७६
चतुर्थ ,, ,, —	७		७००
पाचवी ,, ,, —	५		२६०
छठी ,, ,, —	३		६०
सातवी ,, ,, —	१		४
कुल जोड़	४९	+	९६०४
	=९६५३		

प्रकीर्णक बिलों का प्रमाण

रत्नप्रभा आदिक प्रत्येक पृथिवी के सम्पूर्ण विलो की सख्या को रखकर उनमे से अपने –अपने इन्द्रक और श्रेणीवद्ध विलो की संख्या को घटा देने पर उस–उस पृथिवी के प्रकीर्णक विलो का प्रमाण होता है। यथा—

प्रथम पृथिवी के समस्त विल—३०,००००० हैं,

३००००००–(१३+४४२०)=२९९५५६७

उन्तीस लाख, पचानवे हजार, पाच सौ सरसठ प्रकीर्णक विल है। ऐसे ही सभी नरको के विलो का प्रमाण निकाल लेना चाहिए।

इंद्रक, प्रकीर्णक और श्रेणीबद्ध बिलों की पृथक–पृथक संख्या

नरक	इन्द्रक	श्रेणीवद्ध	प्रकीर्णक
प्रथमपृथिवी मे	१३	४४२०	२९९५५६७
द्वितीय ,,	११	२६८४	२४९७३०५
तृतीय ,,	९	१४७६	१४९८५१५

चतुर्थ पृथिवी में	७	७००	९९९२९३
पञ्चम ,, ,,	५	२६०	२९९७३५
छठी ,, ,,	३	६०	९९९३२
सातवी ,, ,,	१	४	०
	४९	९६०४	८३९०३४७

सातवी पृथिवी में प्रकीर्णक विल नही है अत. ६ पृथिवी सम्बन्धी सभी प्रकीर्णक विलो का जोड़ तेरासी लाख नव्वे हजार तीन सौ संतालीस (८३९०३४७) है।

इद्रक विलो का विस्तार सख्यात योजन प्रमाण है। श्रेणीवद्ध विलों का प्रमाण असख्यात योजन एव प्रकीर्णक विलो का विस्तार कुछ का सख्यात और कुछ का असख्यात योजन है। सम्पूर्ण विलो की सख्या के पाच भागो मे से एक भाग ($\frac{1}{5}$) प्रमाण विलों का विस्तार सख्यात योजन और शेष चार भाग ($\frac{4}{5}$) प्रमाण विलो का विस्तार असख्यात योजन प्रमाण है।

सभी विल ८४०००००० है उसमे सख्यात योजन विस्तार वाले १६८००००, असख्यात योजन विस्तार वाले ६७२००००।

पृथक्-पृथक् नरकों में बिलों का विस्तार

	सख्यात योजन वाले	असख्यात योजन वाले
प्रथम पृथिवी	६०००००	२४०००००
द्वितीय ,,	५०००००	२००००००
तृतीय ,,	३०००००	१२०००००
चतुर्थ ,,	२०००००	८०००००
पाचवी ,,	६००००	२४००००
छठी ,,	१९९९९	७९९९६
सातवी ,,	१	४
कुल जोड	१६८००००	६७२००००

इन बिलों का तिरछा अंतराल

सख्यात योजन विस्तार वाले नारकियो के विलो मे तिरछे रूप मे जघन्य अन्तराल ६ कोस और उत्कृष्ट अन्तराल १२ कोस प्रमाण है।

असख्यात योजन विस्तार वाले विलो मे जघन्य अन्तराल ७००० योजन और उत्कृष्ट अन्तराल असंख्यात योजन प्रमाण है।

पूर्वोक्त प्रकीर्णक बिलो मे से असख्यात योजन विस्तार वाले विल अधिक है और सख्यात योजन वाले विल थोडे ही है। ये सब विल अहोरात्र अन्धकार से व्याप्त है।

सख्यात योजन प्रमाण वाले बिलो मे नियम से सख्यातो नारकी जीव तथा असख्यात योजन प्रमाण वाले विलो में असख्यातो नारकी जीव रहते है।

प्रथम इन्द्रक का विस्तार पंतालीस लाख योजन और अन्तिम इद्रक का विस्तार १ लाख योजन है। दूसरे इन्द्रक से लेकर ४८वें इन्द्रक तक का प्रमाण तिलोयपण्णत्ति से समझ लेना चाहिए।

४९ इंद्रक बिलों की मोटाई का प्रमाण

प्रथमपृथिवी में १३ इन्द्रक है। शेष ६ पृथिवियो मे उत्तरोत्तर इनसे २–२ कम होते गये है। सब पटल ४९ है। प्रथम पृथिवी के १३ पटलो की मोटाई १–१ कोस है। आगे द्वितीय आदि नरको मे वह मोटाई आधा-आधा कोस बढती गई है।

यथा—

सात नरको मे		इन्द्रक की मोटाई
प्रथम नरक में	—	१ कोस
द्वितीय ,,	—	१½ कोस
तृतीय ,,	—	२ कोस
चतुर्थ ,,	—	२½ कोस
पाचवे ,,	—	३ कोस
छठे ,,	—	३½ कोस
सातवे ,,	—	४ कोस

इंद्रक बिलों के अंतराल का प्रमाण

प्रथम आदि पृथिवियों मे जिन १३, ११ आदि पटलो का अवस्थान बतलाया गया है उनके मध्य मे कितना अन्तर है और वह किस प्रकार से प्राप्त होता है उसे स्पष्ट करते है—जिस विवक्षित नरक पृथिवी में जितने पटल स्थित हैं उन सवके समस्त मोटाई के प्रमाण को तथा पृथिवी के जितने भाग मे उन पटलो का अवस्थान नही है उसको भी कम करके शेष मे एक कम अपनी पटल सख्या का भाग देने से जो लब्ध हो, उतना उन पटलो के मध्य मे ऊर्ध्व अन्तर का प्रमाण होता है। जैसे—प्रथम पृथिवी के जिस अव्वहुल भाग में प्रथम नरक है—उसकी मोटाई का प्रमाण अस्सी हजार योजन है। चूकि इसके ऊपर और नीचे हजार-हजार योजन मे कोई पटल नही है अतएव अस्सी हजार मे २ हजार कम करने से ७८ हजार रहते है। पुन १३ पटल के प्रत्येक की मोटाई एक—एक कोस होने से १३ कोस अर्थात् ३$\frac{१}{४}$ योजन होती हे। इस मोटाई को ७८ हजार योजन मे कम करके उसमे १ कम प्रथम नरक के पटल १३ का भाग दे दीजिए, उन पटलो के मध्य के अन्तर का प्रमाण निकल आएगा।

[(८००००−२०००)−($\frac{१}{४}$×१३)]−(१३−१)=६४९९$\frac{३५}{४८}$ योजन।

सातों नरकों के पटलों का आपस में अन्तर

		अन्तर
प्रथम पृथिवी मे	—	६४९९$\frac{३५}{४८}$
द्वितीय ,, ,,	—	२९९९$\frac{४७}{९६}$
तृतीय ,, ,,	—	३२४९$\frac{७}{१२}$
चतुर्थ ,, ,,	—	३६६५$\frac{४}{९}$
पाचवी ,, ,,	—	४४९९$\frac{१}{२}$
छठी ,, ,,	—	६९९८$\frac{१}{३}$

सातवी पृथिवी के एक ही इन्द्रक के होने से अन्तर की संभावना नही है।

सातों नरकों में एक दूसरे से कितना अन्तर है?

प्रथम पृथिवी की मोटाई १ लाख अस्सी हजार योजन और द्वितीय पृथिवी की मोटाई ३२ हजार योजन है।

१८००००+३२०००=२१२००० योजन।

इस मोटाई से रहित दोनो पृथिविया के मध्य मे एक राजू प्रमाण अन्तराल है। यह तो अन्तर प्रथम नरक से दूसरे नरक के मध्य का हुआ। अब प्रथम नरक के अन्तिम इन्द्रक से द्वितीय नरक के प्रथम इद्रक का अन्तर बताते है।

एक हजार योजन प्रमाण चित्रा पृथिवी की मोटाई प्रथम पृथिवी की मोटाई में सम्मिलित है। फिर भी उसकी गणना ऊर्ध्वलोक की मोटाई में की गई है। अतएव इसमें से एक हजार योजन घटा दीजिए। पुन प्रथम पृथिवी के नीचे और द्वितीय पृथिवी के ऊपर ऐसे एक-एक हजार योजन के क्षेत्र मे नारकियो के बिलो के न होने से २ हजार योजन कम कर देने से शेप २ लाख ९ हजार योजन प्रमाण से रहित, एक राजू प्रमाण प्रथम पृथिवी के अन्तिम इद्रक और द्वितीय पृथिवी के प्रथम इन्द्रक के अन्तर का प्रमाण निकलता है।

सातों नरक के अन्तिम इन्द्रक और द्वितीय पृथिवी के प्रथम इन्द्रक का अन्तर

प्रथम नरक के अन्तिम इन्द्रक से द्वितीय पृथिवी के प्रथम इन्द्रक का अन्तर २०९००० योजन कम १ राजू है।

द्वितीय पृथिवी के अन्तिम इन्द्रक से तृतीय पृथिवी के प्रथम इद्रक तक अन्तर २६००० योजन कम १ राजू है।

तृतीय पृथिवी के अन्तिम इन्द्रक से चतुर्थ पृथिवी के प्रथम इन्द्रक तक अन्तर २२००० योजन कम १ राजू है। चतुर्थ पृथिवी के अन्तिम इन्द्रक से पचम पृथिवी के प्रथम इन्द्रक तक १८००० योजन कम १ राजू है।

अधो लोक संकेत यो० = योजन

ऊपर
नीचे

१ प्रथम नरक (धम्मा)
कुल बिल ३० लाख
(विशेष दे० रत्नप्रभा)

१ सीमन्तक
२ निरय
३ रौरव
४ भ्रान्त
५ उद्भ्रान्त
६ संभ्रान्त
७ असंभ्रान्त
८ विभ्रान्त
९ त्रस्त
१० त्रसित
११ वक्रान्त
१२ अवक्रान्त
१३ विक्रान्त

७ राजू
कुल अधोलोक ७ राजू

प्रत्येक पटल में इन्द्रक व श्रेणी बद्ध

उत्तर
पूर्व

प्रथम नरक का प्रथम पटल

अंतिम नरक का अंतिम पटल

सीमन्तक पटल
श्रेणीबद्ध
(इस नाली में ऊपर की ओर से देखने पर)

अवधिस्थान पटल
० काल
० रौरव
० रौरव
० काल

यहाँ प्रत्येक दिशा में केवल एक-एक श्रेणीबद्ध है। विदिशाओं में नहीं है। न ही प्रकीर्णक हैं

पांचवी पृथिवी के अन्तिम इन्द्रक से छठी पृथिवी के प्रथम इन्द्रक तक अन्तर १४००० योजन कम १ राजू है।

एव छठी पृथिवी के अन्तिम इन्द्रक से सातवी पृथिवी के प्रथम इंद्रक तक का अन्तर ३००० योजन और २ कोस कम १ राजू है।

नारकियो के जन्म लेने के उपपाद

स्थान का वर्णन

इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलो मे ऊपर के भाग में (छतमें) अनेक प्रकार के तलवारो से युक्त अर्धवृत्त और अधोमुख वाले जन्म स्थान है।

ये जन्म स्थान घर्मा, वंशा और मेघा नाम की तीसरी पृथिवी तक उष्ट्रिका, कोथली, कुभी, मुद्गलिका, मुद्गर और नाली के समान हैं।

चौथी और पाचवी पृथ्वी मे जन्मभूमियो के आकार गाय, हाथी, घोड़ा, भस्त्रा, अब्जपुट, अम्बरीष और द्रोणी जैसे है।

छठी और सातवी पृथिवी की जन्म भूमिया झालर, द्वीपी, चक्रवाक, शृगाल, गधा, बकरा, ऊंट और रीछ के सदृश आकार वाली है।

नारकियो की ये सभी जन्म भूमिया अन्त मे करोत के सदृश चारो तरफ से गोल और भयकर हे। इन नरको मे बकरी, हाथी, भैस, घोडा, गधा, ऊँट, बिलाव और मेढे आदि के सडे–गले शरीरो के दुर्गंध की अपेक्षा अनन्तगुणी अधिक दुर्गंध हे।

इन जन्म भूमियो का विस्तार एक, दो कोस आदि नीचे लिखे प्रमाण है एव इनकी ऊँचाई अपने अपने विस्तार से पचगुणी है यथा—

नरको मे	उपपाद स्थान का विस्तार,	ऊँचाई
प्रथम नरक मे	१ कोस	५ कोस
द्वितीय " "	२ कोस	१० कोस
तृतीय " "	३ कोस	१५ कोस
चतुर्थ " "	१ योजन (४ कोस)	५ योजन

पाचवा " "	२ योजन (८ कोस)	१० योजन
छठा " "	३ योजन (१२ कोस)	१५ योजन
सातवा " "	१०० योजन (४०० कोस)	५०० योजन

इन उपपाद स्थानो मे एक, दो, तीन, पाच, और सात द्वार–कोन और इतने ही दरवाजे है। यह व्यवस्था केवल श्रेणी और प्रकीर्णक बिलो मे ही है। इन्द्रक बिलो मे ये स्थान ३ द्वार और ३ कोनो से युक्त है। ये सब जन्म स्थान हमेशा ही अनन्त गुणित अन्धकार से व्याप्त है।

नरक में उत्पत्ति का वर्णन

नारकी जीव पाप से नरक बिल मे उत्पन्न होकर एक मूहूर्त काल में छहो पर्याप्तियो को पूर्ण कर आकस्मिक भय को प्राप्त होता है। पश्चात् वह नारकीजीव भय से कापता हुआ बडे कष्ट से चलने के लिए प्रस्तुत हो कर और छत्तीस आयुधो के मध्य मे गिरकर वहा से गेद के समान उछ-लता है।

प्रथम पृथिवी मे जीव सात योजन (उत्सेधयोजन) छह हजार पाच सौ धनुष प्रमाण ऊपर उछलता है, इसके आगे शेष पृथिवियो मे उछलने का प्रमाण क्रम से उत्तरोत्तर दूना–दूना है।

नरक के दुखों का वर्णन

जिस प्रकार दुष्ट व्याघ्र मृग के बच्चे को देखकर उसके ऊपर टूट पडता है, उसी प्रकार क्रूर पुराने नारकी उस नवीन नारकी को देखकर धमकाते हुए उसकी ओर दौडते है। जिस प्रकार कुत्तो के झुड एक दूसरे को दारुण दुख देते है उसी प्रकार नारकी नित्य ही परस्पर दुस्सह पीडा-दिक दिया करते है। वे नारकी जीव चक्र, वाण, शूली, तोमर, मुद्गर, करोत, भाला, सुई, मूसल और तलवार आदि शस्त्र, अस्त्र वन एव पर्वत की आग तथा भेडिया, व्याघ्र, तरक्ष, शृगाल, कुत्ता, बिलाव और सिंह इन पशुओ के अनुरूप परस्पर मे सदैव अपने–अपने शरीर की विक्रिया किया करते हैं। ये नारकी गहरे बिल, धुआ, वायु, खप्पर, यन्त्र, चूल्हा, चक्की,

वर्छी आदि के आकार रुप अपने-अपने शरीर की विक्रिया करते है और तो क्या ये नारकी दूसरों को दुःख देने के लिए दावानल, अग्नि, सड़े रक्त और कीड़ो से युक्त नदी, सरोवर, कूप और वापी आदि रूप से अपने अपने शरीर की ही विक्रिया करते है। इन नारकियो के पृथक् विक्रिया नही होती है, अपृथक् विक्रिया ही होती है।

कोई नारकी व्याघ्र सिहादिक वनकर अन्य नारकी को खाने लगते है। कोई नारकी किसी नारकी के द्वारा हजारो यन्त्रों मे पेले जाते है। कोई किसी को खम्भो मे वाधकर लोहे के सवल से मारते हैं, कोई जाज्वल्यमान दुष्प्रेक्ष्य अग्नि मे फेंके जाते है कोई नारकी आरो से चीरे जाते हैं, कोई भयकर भालो से बेधे जाते है। कितने ही नारकी जीव लोहे की कडाहियो के तपे हुए तेल में डाले जाते है, और कितने ही अग्नि मे तपाये जाते है। कभी-कभी कोयले और उपलो की आग में झुलसे हुए ये नारकी जीव शीतल जल समझ कर वैतरणी नदी में प्रवेश करते है। उसमें उनका शरीर अनेक रोगो से पूर्ण हो जाता है। क्योकि वह वैतरणी सडे हुए खून, पीव से भरी और असख्य जीवो से व्याप्त रहती है। वहा के नारकी ही इन विक्रियाओ को करते है क्योकि वहा पर विकलत्रय जीव पैदा नही होते है। उस वैतरणी मे कैंची के समान तीक्ष्ण जल के आकार से परिणत हुए नारकी अन्य नारकियो के शरीरो को दुस्सह अनेक प्रकार की पीडाओ को पहुचाते है। वैतरणी नदी के जल मे नारकी कछुआ, मेंढक और मगर प्रभृति जल जीवो के विविध रूपो को धारण कर एक दूसरे का भक्षण करते हैं। पश्चात् वे नारकी विस्तीर्ण शिलाओ के बीच मे बिलों को देखकर झटपट उनमें प्रवेश करते हैं, परन्तु वहा पर सहसा विशाल ज्वालाओं वाली महान अग्नि उठती है। जिस अग्नि से उन नारकियो के सम्पूर्ण अङ्ग तीक्ष्ण ज्वालाओ से जल जाते हैं। पुन वे ही नारकी शीतल छाया की आशा से असिपत्र वन मे प्रवेश करते हैं। वहा पर भी वज्रदण्ड और तलवार की धार के समान पैनें उन वृक्षो के पत्ते नारकियो के शरीर को विदीर्ण करके खण्ड-खण्ड कर देते है। उसी प्रकार से वहा चक्र, वाण, तोमर, मुद्गर,

तलवार, भाला, मूसल तथा और भी अस्त्र–शस्त्र उनके सिर पर गिरते है, अनन्तर जिनके शिर छिद गये है, हाथ, पैर आदि अङ्ग खण्डित हो गये है, जिनके नेत्र और आतों के समूह बाहर निकल पडे है–ऐसे वे नारकी अशरण होकर उस वन को छोडकर भागते है। तब गृद्ध, गरुड, काक आदि वज्रमय मुख वाले व तीक्ष्ण दातो वाले पक्षी बन करके नारकी उन नारकियो के शरीर को भक्षण करने लगते है। कोई–कोई नारकी उन नारकियो के अङ्ग और उपागो को प्रचण्डघातो से चूर्णकर घावो पर क्षार पदार्थ–तेजाब आदि डाल देते है। घावो मे क्षार पदार्थों के डालने से वे नारकी करुणा पूर्ण विलाप करते है और दु ख देने वाले नारकी के चरणो मे पडते हैं। फिर भी वे निर्दयी नारकी उन्हे खण्ड–खण्ड करके चूल्हे मे डाल देते है। कोई नारकी पर स्त्री में आसक्त होने वालो के शरीरो से तप्तायमान लोहपुतली को चिपका देते है। पूर्व भव मे मास भक्षण प्रेमी नारकी के शरीर के ही मास को काट–काट कर, कोई नारकी उन्ही के मुख मे जबरन डालते है। मधु और मद्य के सेवन करने वाले प्राणियो को अन्य नारकी अत्यन्त तपे हुए द्रवित लोहे को जबरदस्ती पिला देते है जिससे उनके अवयव समूह भी पिघल जाते है। जिस प्रकार तलवार के प्रहार से भिन्न हुआ कुए का जल फिर वापस मिल जाता है उसी प्रकार अनेकानेक शस्त्रो से छिन्न–भिन्न किया गया नारकियो का शरीर भी फिर से मिल जाता है। तात्पर्य यह है कि नारकियो की आयु पूरी हुए विना अकाल मरण नही होता है।

नरक की भूमि तप्तायमान लोहे के सदृश दु खद स्पर्शवाली, सुई के समान तीखी दूब से व्याप्त है उस पृथिवी से इतना दु ख होता है कि जैसे एक साथ ही हजारो बिच्छुओ ने डक मारा हो। उन नारकियों के उदर, नेत्र, मस्तक आदि सभी अवयव करोडो रोगो से जर्जरित रहते है। नरक मे नारकियो के एक साथ ही ५ करोड ६८ लाख ९९ हजार ५ सौ ८४रोग उदय मे बने रहते हैं।

नारकियों का आहार और मिट्टी के दोष

कुत्ते, गधे आदि जानवरो के अत्यन्त सडे हुए मास और विष्टा आदि की अपेक्षा भी अनतगुणी दुर्गंधि से युक्त ऐसी उस नरक की मिट्टी को घर्मा नरक के नारकी अत्यन्त भूख की वेदना से व्याकुल होकर भक्षण करते है और दूसरे आदि नरकों में उससे भी अधिक गुणी अशुभ दुर्गंधित मिट्टी को खाते हैं। घर्मा पृथिवी के प्रथम पटल के आहार की मिट्टी को यदि इस मध्य लोक मे डाल दिया जावे तो उसकी दुर्गंधि से १ कोस पर्यंत के जीव मृत्यु को प्राप्त हो सकते है। इससे आगे दूसरे तीसरे आदि पटलो मे आधे—आधे कोस प्रमाण अधिक होते हुए मारण शक्ति बढती गई है और सातवे नरक के अन्तिम उन्चासवे पटल में मिट्टी की मारण शक्ति २५ कोस प्रमाण हो जाती है

तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके नरक जाने वालों का वर्णन

कोई—कोई जीव इस मध्यलोक मे तीर्थंकर प्रकृति के बध के पहले यदि नरकायु का बध कर लेते है तो पहले, दूसरे या तीसरे नरक तक जा सकते है वे तीर्थंकर प्रकृति के सत्त्व वाले जीव भी वहा पर असाधारण दु खो का अनुभव करते रहते है और सम्यक्त्व के माहात्म्य से पूर्वकृत कर्म के विपाक का चितवन करते रहते है। जब इनकी आयु ६ महीने अवशेष रह जाती है तब स्वर्ग के देव नरक मे जाकर चारो तरफ से परकोटा बनाकर उस नारकी के उपसर्ग का निवारण कर देते है और मध्यलोक मे रत्नो की वर्षा, माता की सेवा आदि उत्सव होने लगते है।

नारकी के दुःखों के भेद

नरको मे नारकियो को चार प्रकार के दु ख होते है। क्षेत्र जनित, शारीरिक, मानसिक और असुरकृत्।

नरक मे उत्पन्न हुए शीत, उष्ण, वैतरणी नदी, शाल्मलिवृक्ष, आदि के निमित्त से होने वाले दु ख क्षेत्रज दुःख कहलाते है।

शरीर में उत्पन्न हुए रोगो के दु ख और मारकाट, कुभीपाक आदि के दु.ख शारीरिक दु ख है।

सक्लेश, शोक, आकुलता, पश्चात्ताप आदि के निमित्त से उत्पन्न हुए दु ख मानसिक दु ख कहलाते हैं।

एव तीसरी पृथिवी पर्यंत सक्लेश परिणाम वाले असुरकुमार जाति के भवनवासी देवो के द्वारा उत्पन्न कराये गये दु ख असुरकृत् दु ख कहलाते है।

असुरकुमारकृत दुःखों का वर्णन

पूर्व मे देवायु का वध करने वाले मनुष्य या तिर्यंच अनन्तानुवन्धी मे से किसी एक का उदय आ जाने से रत्नत्रय को नष्ट करके असुरकुमार जाति के देव होते है। सिकनानन, असिपत्र, महावल, रुद्र, अवरीप, आदिक असुरकुमार जाति के देव तीसरी वालुकाप्रभा पृथिवी तक जाकर नारकियो को क्रोध उत्पन्न करा करा कर परस्पर मे युद्धकराते है और प्रसन्न होते हैं।

नरक में अवधिज्ञान का वर्णन

नरक मे उत्पन्न होते ही अतर्मुहूर्त के वाद छहो पर्याप्तिया पूर्ण हो जाती हैं और भवप्रत्यय अवधिज्ञान प्रगट हो जाता है। जो मिथ्यादृष्टी नारकी है उनका अवधिज्ञान विभगावधि--कुअवधि कहलाता है एव सम्यक्-दृष्टि नारकियो का ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता हे।

अवधि के क्षेत्र का प्रमाण

प्रथम नरक मे अवधिज्ञान का विपय एक योजन है। आगे-आगे आधे-आधे कोस की हानि होकर सातवे नरक में वह एक कोस मात्र रह जाता है। यथा—

प्रथम नरक में —	४ कोस (१ योजन)
द्वितीय ,, ,, —	३½ कोस
तृतीय ,, ,, —	३ कोस
चतुर्थ ,, ,, —	२½ कोस
पाचवे ,, ,, —	२ कोस
छठे ,, ,, —	१½ कोस
सातवे ,, ,, —	१ कोस

इस अवधिज्ञान के प्रगट होते ही वे नारकी पूर्व भव के पापो को -वैर विरोध को एव शत्रुओ को जान लेते है। जो सम्यग्दृष्टी हैं वे अपने पापो का पश्चात्ताप करते रहते है, किन्तु जो मिथ्यादृष्टि है वे पूर्व भव मे किसी के द्वारा किये गये उपकार को भी अपकार रूप समझ कर यद्वा-तद्वा आरोप लगाते हुए मारकाट करते रहते हैं। कोई भद्रमिथ्यादृष्टि जीव पाप के फल को भोगते हुए अत्यन्त दु ख से घबडा कर पापो का पश्चात्ताप करके "वेदना अनुभव" नामक निमित्त से सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लेते हैं। तात्पर्य यह है यदि कोई नारकी पाप के फल को भोगते हुए यह सोचते है कि हाय ! मैंने परस्त्रीसेवन किया था जिसके फल स्वरूप मुझे यहा पर गरम—गरम लोह पुतली से आलिगन कराया जाता है। मैंने मद्य पान किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यहा ताबा गला-गला कर पिलाया जाता है। हाय ! हाय ! मैंने पूर्व जन्म मे गुरुओ की शिक्षा नही मानी, भगवान् की वाणी पर विश्वास नही किया, नियम लेकर भग किया, इत्यादि के फल स्वरूप मुझे ये नरक यातनाये भोगने को मिली हे। अव इनसे हमे छुटकारा कैसे मिले, कहा जाये, क्या करे ? इत्यादि विलाप करते-करते जिन धर्म पर प्रेम करते हुए श्रद्धा से सम्यक्त्व रूपी अमूल्य निधि को प्राप्त कर लेते हैं।

नरक में सम्यक्त्व के कारण

घर्मा आदि तीन पृथिवियो मे मिथ्यात्वभाव से सयुक्त नारकियो मे से कोई जाति स्मरण से, कोई दुर्वार वेदना से व्यथित होकर, कोई देवो के

सम्वोधन को प्राप्त कर अनन्त भवो के चूर्ण करने मे निमित्त भूत ऐसे सम्यग्दर्शन को ग्रहण करते है।

पकप्रभा आदि शेष चार पृथिवियो के नारकी जीव देवकृत् प्रवोध के विना जातिस्मरण और वेदना के अनुभव मात्र से ही सम्यक्त्व को ग्रहण कर सकते है।

जिनने पहले नरक आयु का वध कर लिया है, पुन सम्यक्त्व को प्राप्त किया है—ऐसे जीव सम्यक्त्व सहित मरकर प्रथम नरक मे ही जा सकते है, अन्यत्र नही। सभी नरको में सम्यक्त्व के लिए कारण भूत सामग्री मिल जाने से नारकी जीव सम्यक्त्व को ग्रहण कर सकते है।

नरक में जाने के कारण

जो मद्य पीते है, मास की अभिलाषा करते है, जीवो का घात करते है, शिकार करते है, क्षणमात्र के इन्द्रिय सुख के लिए पाप उत्पन्न करते है। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि के वशीभूत होकर असत्य वचन वोलते है। काम से उन्मत्त जवानी मे मस्त, परस्त्री में आसक्त होकर जीव नरकों मे चिरकाल तक नपु सक वेदी होते है और अनत दु खो को प्राप्त होते है।

नारकियों के शरीर को अवगाहना

रत्नप्रभा पृथिवी के प्रथम सीमतक पटल के नारकियो के शरीर की ऊचाई ३ हाथ है। इसके आगे के पटलो मे वढते-वढते अन्तिम १३ वे पटल मे ७ धनुष ३ हाथ ६ अगुल है। ऐसे ही बढते-वढते सातवी पृथिवी के अन्तिम अवधिस्थान नामक इन्द्रक विल में ५०० धनुष प्रमाण शरीर की अवगाहना है।

प्रत्येक नरक के प्रथम पटल और अन्तिम पटल में शरीर की अवगाहना का प्रमाण

	प्रथम पटल में	अन्तिम पटल में
प्रथम नरक मे	३ हाथ	७ धनुष ३ हाथ ६ अगुल
द्वितीय ,, ,,	८ धनुष २ हाथ २ २/११ अ०	१५ ध० २ हाथ १२ अ०
तृतीय ,, ,,	१७ धनुष ३४ २/३ अ०	३१ ध० १ हाथ
चतुर्थ ,, ,,	३५ धनुष २ हा० २० ४/७ अं०	६२ ध० २ हाथ
पाचवे ,, ,,	७५ धनुष	१२५ धनुष
छठे ,, ,,	१६६ धनुप २ हाथ १६ अं०	२५० धनुष
सातवी पृथिवी के अवधि स्थान इन्द्रक मे		५०० धनुष प्रमाण

सातों पृथिवियों में शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना

प्रथम पृथिवी मे	—	७ धनुष ३ रत्नि ६ अगुल	ऊचाई
द्वितीय ,, ,,	—	१५ धनुष २ हाथ १२ अगुल	,,
तृतीय ,, ,,	—	३१ धनुष १ हाथ	,,
चतुर्थ ,, ,,	—	६२ धनुष २ हाथ	,,
पाँचवी ,, ,,	—	१२५ धनुष	,,
छठी ,, ,,	—	२५० धनुष	,,
सातवी ,, ,,	—	५०० धनुष	,,

नारकियों की लेश्यायें

सभी नारकी जीवो के परिणाम हमेशा अशुभतर ही होते हैं, एव लेश्यायें भी अशुभतर होती है। उनके शरीर भी अशुभ नाम कर्म के उदय से हुडक सस्थान वाले वीभत्स और अत्यन्त भयकर होते है। यद्यपि उनका शरीर वैक्रियक है फिर भी उसमे मलमूत्र, पीव आदि सभी वीभत्स सामग्री रहती हैं। कदाचित् कोई नारकी जीव सोचते हैं कि हम शुभ कार्य करे, परतु कर्मोदय से अशुभ ही होता है। वे दुःख दूर करने के लिए जितने भी

उपाय करते हैं उनसे दूना दुःख ही बढ़ता जाता है। कषायों के उदय से अनुरंजित मन, वचन काय की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। उसके ६ भेद हैं—कृष्ण, नील, कापोत, पीत पद्म और शुक्ल। प्रारम्भ की तीन लेश्यायें अशुभ हैं एवं आगे की तीन लेश्यायें शुभ हैं। नरक में सर्वदा अशुभतर और अशुभतम ही लेश्यायें रहती हैं।

प्रथम और द्वितीय नरक में— कापोतलेश्या।
तृतीय नरक में — ऊपर कापोत और नीचे नील लेश्या।
चौथे ,, ,, — नील लेश्या।
पांचवें ,, ,, — ऊपर भाग में नील और नीचे भाग में कृष्ण
छठे ,, ,, — कृष्ण लेश्या
सातवें ,, ,, — परमकृष्ण लेश्या होती है।

नारकियों की आयु

दुःखों से घबड़ाकर नारकी जीव मरना चाहते हैं किन्तु आयु पूरी हुये बिना मर नहीं सकते हैं। उनके शरीर तिल के समान खंड-खंड होकर भी पारे के समान पुनः मिल जाते हैं। उन नारकियों की जघन्य आयु कम से कम १० हजार वर्ष है एवं उत्कृष्ट आयु ३३ सागर है। १० हजार वर्ष से एक समय अधिक से लेकर एवं तेंतीस सागर से एक समय कम के मध्य की सभी आयु मध्यम कहलाती है।

प्रथम नरक में १३ पटल हैं। प्रथम पटल की उत्कृष्ट आयु ९०,००० वर्ष है। द्वितीय पटल में यह आयु जघन्य हो जाती है तथा उत्कृष्ट आयु नब्बे लाख वर्ष हो जाती है। ऐसे ही आगे-आगे के पटलों में जघन्य आयु का प्रमाण पूर्व-पूर्व के पटलों की उत्कृष्ट आयु का प्रमाण है। ऐसे ही प्रथम नरक की उत्कृष्ट आयु दूसरे नरक की जघन्य आयु मानी गई है। जैसे—प्रथम नरक की उत्कृष्ट आयु १ सागर है वही दूसरे नरक में जघन्य आयु है। विशेष—

नरको मे	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु
प्रथम नरक मे	१०००० वर्ष	१ सागरोपम
द्वितीय ,, ,,	१ सागर	३ सागर
तृतीय ,, ,,	३ सागर	७ सागर
चतुर्थ ,, ,,	७ सागर	१० सागर
पाचवे ,, ,,	१० सागर	१७ सागर
छठे ,, ,,	१७ सागर	२२ सागर
सातवे ,, ,,	२२ सागर	३३ सागर

इस प्रकार से आयु प्रमाण काल तक उन नरको मे नारकियो को क्षणमात्र के लिए भी सुख नही है, प्रतिक्षण दारुण दु खो का ही अनुभव होता रहता है। इन नारकियो के शरीर आयु के अत मे वायु से ताडित मेघो के समान नि शेष विलीन हो जाते है। आचार्य कहते हैं कि इस प्रकार से पूर्व मे किये गये दोषों से जीव नरकों में जिन नाना प्रकार के दु ख को प्राप्त करते है, उन दुःखो के स्वरूप का सम्पूर्णतया वर्णन करने के लिए भला कौन समर्थ है ? यहाँ पर जो जीव पापो मे प्रवृत्त होकर आनद मानते है वे ही जीव चिरकाल तक ऐसे नरकवास मे निवास करते है।

नरक में नारकियों के जन्म लेने के अन्तर का वर्णन

इन नरको मे यदि कोई भी नारकी कुछ समय तक जन्म न लेवे तथा वहा नारकियो के उत्पन्न होने मे व्यवधान पड जावे उसका नाम अन्तर है। वह अन्तर प्रथम नरक मे अधिक से अधिक २४ मुहूर्त का है। ऐसे ही सभी का अन्तर दिखाते है—

प्रथम नरक मे	—	२४ मुहूर्त
द्वितीय ,, ,,	—	७ दिन
तृतीय ,, ,,	—	१५ दिन

चतुर्थ नरक मे—	१ मास
पाचवे ,, ,, —	२ मास
छठे ,, ,, —	४ मास
सातवे ,, ,, —	६ मास

कौन-कौन से जीव किन-किन नरकों में जाने की योग्यता रखते हैं

कर्म भूमि के मनुष्य और पचेन्द्रिय तिर्यंच जीव ही इन नरकों मे उत्पन्न हो सकते है किन्तु नारकी, देव, भोग-भूमिया, विकलत्रय और एकेन्द्रिय जीव नरकों मे नही जा सकते हैं। इन नरको से निकले हुए जीव भी वापस नरक मे उसी भव से नही जा सकते है। न देव हो सकते है एव विकलत्रय, एकेन्द्रिय और भोग भूमिया भी नही हो सकते है। मतलव यही है कि नरक से निकलकर नारकी जीव कर्म भूमिया मनुष्य और तिर्यंच ही होते है। इनमे भी गर्भज, सज्ञी एव पर्याप्त ही होते है।

असज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंच जीव मात्र घर्मा पृथिवी में जाने की योग्यता रखते हैं। सरीसृप प्रथम और द्वितीय नरक मे जाने की योग्यता रखते है। पक्षी तृतीय पृथिवी तक, भुजग आदि चतुर्थ पृथिवी तक, सिह पाचवी तक, स्त्रिया छठी तक एव मत्स्य और मनुष्य सातवी पृथिवी तक जाने की योग्यता रखते है।

नरक से निकलकर नारकी किन-२ पर्यायों को प्राप्त कर सकते हैं

नरक से निकलकर कोई भी जीव अनतर भव में चक्रवर्ती, वलभद्र नारायण और प्रतिनारायण नही हो सकता है, यह वात निश्चित है।

प्रथम तीन पृथिवियो से निकले हुए कोई जीव तीर्थंकर हो सकते है।

चौथी पृथिवी तक के नारकी वहा से निकलकर चरम शरीरी होकर उसी भव से मोक्ष भी प्राप्त कर सकते है। पाच पृथिवी तक के जीव

सयमी मुनी हो सकते है। छठी पृथिवी तक के नारकी जीव देशव्रती हो सकते है। सातवी पृथिवी से निकल कर जीव कदाचित् सम्यक्त्व को ग्रहण कर सकते है परन्तु ये सातवी पृथिवी से निकले हुए नारकी नियम से पचेन्द्रिय, पर्याप्तक, सज्ञी तिर्यंच ही होते है, मनुष्य नही हो सकते है—यह नियम है।

इस प्रकार अति सक्षेप से नरक लोक का वर्णन किया गया है जो कि भव्य जीवो को नरक के दुखो से भय उत्पन्न कराने के लिए एव सुख के साधन धर्म में आदर कराने के लिए है। विशेष वर्णन अन्यत्र देखना चाहिए।



नारकी जीवों का वर्णन

पृथिवी	मोटाई	विल-सख्या	इन्द्रक	उत्कृष्ट नरकायु	उत्सेध	अवधि क्षेत्र	उत्पद्यमान जीव	उत्पत्ति मरण अन्तर	अग्रिम भव मे	उछलन
१ रत्नप्रभा	१८०००००यो	३००००००	१३	१ सा	३१ १/४ हाथ	१ योजन	असज्ञी	२४ मूहूर्त	तीर्थंकर	७ १३/१६ यो.
२ शर्करा प्रभा	३२००० ,,	२५०००००	११	३ ,,	६२ १/२ ,,	३ १/२ कोश	सरीसप	७ दिन	,,	१५ १०/१६ ,,
३ वालुका प्रभा	२८००० ,,	१५०००००	९	७ ,,	१२५ ,,	३ ,,	पक्षी	१५ ,,	,,	३१ ४/१६ ,,
४ पकप्रभा	२४००० ,,	१००००००	७	१० ,,	२५० ,,	२ १/२ ,,	सर्पादि	१ मास	चरमशरीरी	६२ ८/१६ ,,
५. धूमप्रभा	२०००० ,,	३०००००	५	१७ ,,	१२५ धनुप	२ ,,	सिंह	२ ,,	सयत	१२५ ,,
६. तम प्रभा	१६००० ,,	९९९९५	३	२२ ,,	२५० ,,	१ १/२ ,,	स्त्री	४ ,,	देशव्रती	२५० ,,
७. महातम प्रभा	८००० ,,	५	१	३३ ,,	५०० ,,	१ ,,	मत्स्य	६ ,,	सम्यकत्व धर	५०० ,,

भवनवासी देव

भवनवासीदेवों का स्थान

पहले रत्नप्रभा पृथिवी के ३ भाग बताये जा चुके है। उसमे खरभाग और पकभाग में उत्कृष्ट रत्नों से शोभायमान भवनवासी और व्यतरवासियो के भवन है। इन दोनो भागो मे से खरभाग की मोटाई १६ हजार योजन एवं पकभाग ८४ हजार योजन प्रमाण है। १६०००+८४००० =१००००० योजन

भवनवासी देवों के भेद

असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, स्तनितकुमार, विद्युत्कुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार, ये १० भेद है।

व्यन्तरवासी देवों के भेद

किन्नर, किंपुरुप, महोरग, गधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच ये ८ भेद है।

चित्रा भूमि से नीचे १ हजार योजन जाकर राक्षस जाति के व्यन्तर देवो को छोडकर बाकी ७ प्रकार के व्यन्तर देवो के आवास स्थान है। चित्रा पृथिवी से २ हजार योजन नीचे जाकर असुरकुमार जाति के भवनवासी देवो को छोड़कर शेप ९ प्रकार के भवनवासी देवो के आवास स्थान है, जो कि अल्प ऋद्धिधारियो के है। ४२ हजार योजन नीचे जाकर महाऋद्धि के धारक भवनवासी देवो के स्थान एव १ लाख योजन जाकर मध्यम ऋद्धि के धारक भवनवासियो के भवन है।

रत्नप्रभा के पकभाग नाम के द्वितीय भाग में असुरकुमार जाति के भवनवासी एव राक्षस जाति के व्यतरो के आवास स्थान है।

भवनवासी देवों के चिन्हों का वर्णन

भवनवासी देवो के मुकुटो में क्रम से चूड़ामणि, सर्प, गरुड, हाथी, आदि १० प्रकार के चिन्ह माने गये है।

यथा —

असुरकुमार के मुकुट मे	—	चूडामणि
नागकुमार ,, ,,	—	सर्प
सुपर्णकुमार ,, ,,	—	गरुड
द्वीपकुमार ,, ,,	—	हाथी
उदधिकुमार ,, ,,	—	मगर
स्तनितकुमार ,, ,,	—	वर्द्धमान
विद्युत्कुमार ,, ,,	—	वज्र
दिक्कुमार ,, ,,	—	सिंह
अग्निकुमार ,, ,,	—	कलश
वायुकुमार ,, ,,	—	घोडा

भवनवासी देवो के भवनों का प्रमाण

असुरकुमार के	—	६४ लाख
नागकुमार ,,	—	८४ लाख
सुपर्णकुमार ,,	—	७२ लाख
द्वीपकुमार ,,	—	७६ लाख
उदधिकुमार ,,	—	७६ लाख
स्तनितकुमार ,,	—	७६ लाख
विद्युत्कुमार ,,	—	७६ लाख
दिक्कुमार ,,	—	७६ लाख
अग्निकुमार ,,	—	७६ लाख
वायुकुमार ,,	—	९६ लाख
कुल जोड		७,७२,०००००

कुल जोड मिलाकर भवनवासी देवो के भवनो का प्रमाण ७ करोड ७२ लाख होता है। इन एक-एक भवनो मे १-१ जिन मदिर होने से भवन-वासी देवो के ७ करोड ७२ लाख प्रमाण जिन मदिर है। उनमे स्थित जिन प्रतिमाओ को मन, वचन, काय से नमस्कार होवे।

भवनवासी देवों के इंद्रों का वर्णन

भवनवासी देवो के १० कुलो मे पृथक्-पृथक् दो-दो इन्द्र होते है। ये सब मिलकर २० इन्द्र होते है। जो अपनी-अपनी विभूति से शोभायमान है।

असुरकुमार	मे	—	चमर इन्द्र, वैरोचन इन्द्र।
नागकुमार	,,	—	भूतानन्द, धरणानन्द।
सुपर्णकुमार	,,	—	वेणु, वेणुधारी।
द्वीपकुमार	,,	—	पूर्ण, वशिष्ठ।
उदधिकुमार	,,	—	जलप्रभ, जलकात।
स्तनितकुमार	,,	—	घोष, महाघोष।
विद्युत्कुमार	,,	—	हरिषेण, हरिकात।
दिक्कुमार	,,	—	अमितगति, अमितवाहन।
अग्निकुमार	,,	—	अग्निशिखी, अग्निवाहन।
वायुकुमार	,,	—	वेलब, प्रभजन।

इनमें से प्रत्येको के प्रथम १० इन्द्र दक्षिण इन्द्र कहलाते है एव आगे-आगे के १० इन्द्र उत्तर इन्द्र कहलाते है। ये सब इन्द्र अणिमा-महिमा आदि ऋद्धियो से युक्त और मणिमय भूषणो से अलकृत होते है।

इंद्रों के भवनों की संख्या

दक्षिण इन्द्रो के भवनों की				सख्या
चमर	,,	,,	,,	— ३४ लाख
भूतानद	,,	,,	,,	— ३४ लाख
वेणु	,,	,,	,,	-- ३८ लाख

पूर्ण	"	"	"	—	४० लाख
जलप्रभ	"	"	"	—	४० लाख
घोष	"	"	"	—	४० लाख
हरिषेण	"	"	"	—	४० लाख
अमितगति	"	"	"	—	४० लाख
अग्निशिखी	"	"	"	—	४० लाख
वेलव	"	"	"	—	५० लाख

इन दक्षिण इन्द्रो के भवनो का प्रमाण ४ करोड ६ लाख है।

आगे उत्तर इन्द्रों का प्रमाण

उत्तर इन्द्र	—	भवन की सख्या
वैरोचन	—	३० लाख
धरणानन्द	—	४० लाख
वेणुधारी	—	३४ लाख
वशिष्ठ	—	३६ लाख
जलकात	—	३६ लाख
महाघोप	—	३६ लाख
हरिकात	—	३६ लाख
अमितवाहन	—	३६ लाख
अग्निवाहन	—	३६ लाख
प्रभजन	—	४६ लाख

इन उत्तर इन्द्रो का कुल जोड ३ करोड ६६ लाख प्रमाण है। इस प्रकार से—४०६००००००+३६६०००००=७७२०००००

भवनवासियों के निवास स्थान के भेद

इन देवो के निवास स्थान के भवन, भवनपुर और आवास के भेद से ३ भेद है।

रत्नप्रभा पृथिवी मे स्थित निवास स्थानो को भवन, द्वीप समुद्रो के ऊपर स्थित निवास स्थानो को भवनपुर और रमणीय तालाव, पर्वत तथा वृक्षादिक के ऊपर स्थित निवास स्थानो को आवास कहते है।

नागकुमार आदि देवों में से किन्ही के तो भवन, भवनपुर और आवास रूप तीनो ही तरह के निवास स्थान होते है परन्तु असुरकुमारो के केवल एक भवन रूप ही निवास स्थान होते है।

इनमे अल्पऋद्धि, महाऋद्धि और मध्यमऋद्धि के धारक भवनवासियो के भवन क्रमश. चित्रा पृथिवी के नीचे-नीचे दो हजार, ब्यालीस हजार और एक लाख योजन पर्यन्त जाकर है।

भवनों का वर्णन

ये सब भवन समचतुष्कोण तथा वज्रमय द्वारो से शोभायमान है। ये भवन ऊँचाई में तीन सौ योजन और विस्तार मे सख्यात और असख्यात योजन प्रमाण होते है। इनमे से सख्यात योजन विस्तार वाले भवनो मे सख्यात भवनवासी देव एव असख्यात योजन विस्तार वाले भवनो मे असख्यातो देव रहते है। इन भवनो की ऊँचाई ३०० योजन मात्र है।

जिन मदिर का वर्णन

इनमे से प्रत्येक के मध्य मे एक सौ योजन ऊँचे एक-एक कूट स्थित है। इन कूटो के ऊपर पद्मराग मणिमय कलशो से सुशोभित तथा चार गोपुर, तीन मणिमय प्राकार, वन, ध्वजाओ एव मालाओ से सयुक्त जिन गृह विराजते है। इन जिन मन्दिरो के चारो तरफ चैत्य वृक्षो से सहित और नाना वृक्षो से युक्त पवित्र अशोक वन, सप्तच्छद वन, चपकवन, और आम्रवन स्थित है। प्रत्येक भवनो के चैत्यवृक्ष का अवगाढ—जड एक कोस, स्कध की ऊचाई १ योजन और शाखाओ की लम्बाई चार योजन प्रमाण कही गई है। ये दिव्य वृक्ष विविध प्रकार के उत्तम रत्नो की शाखाओ से युक्त, विचित्र पुष्पो से अलकृत और उत्कृष्ट मरकत मणिमय उत्तम पत्रो से व्याप्त होते हुए अतिशय शोभा को प्राप्त है एव विविध प्रकार के अकुरो से मडित,

अनेक प्रकार के फलो से युक्त, नाना प्रकार के रत्नो से निर्मित, छत्र के ऊपर छत्र से सयुक्त, घटा, ध्वजा आदि से रमणीय, आदि-अन्त से रहित ये चैत्य-वृक्ष पृथिवीकायिक स्वरूप है। इन चैत्यवृक्षो के मूल मे चारो दिशाओ में से प्रत्येक दिशा में पद्मासन से स्थित और देवों से पूजनीय पाँच-पाच जिन प्रतिमाये विराजमान हैं। ये प्रतिमाये चार तोरणो से रमणीय, आठ महा-मगल द्रव्यो से सुशोभित और उत्तमोत्तम रत्नो से निर्मित अतिशय शोभाय-मान होती है। इन जिनालयो मे चार-चार गोपुरो से सयुक्त तीन कोट, प्रत्येक वीथी मे एक-एक मानस्थभ व वन, स्तूप तथा कोटो के अतराल में क्रम से वनभूमि, ध्वजभूमि और चैत्यभूमि ऐसी तीन भूमिया है। उन जिना-लयो मे चारो वनो के मध्य मे स्थित तीन मेखलाओ से युक्त नदादिक वापि-कायें, तीनो पीठो से युक्त धर्म विभव तथा चैत्यवृक्ष शोभायमान होते है। ध्वज भूमि मे सिह, गज, वृषभ, गरूड, मयूर, चद्र, सूर्य, हस, पद्म और चक्र इन चिह्नो से अकित प्रत्येक चिह्नो वाली १०८ महाध्वजाये और एक-एक महाध्वजा के आश्रित १०८ क्षुद्र ध्वजाये होती है। ये जिनालय वदन मडप, अभिषेक मडप, नर्तन मडप, सगीत मडप और प्रेक्षणमडप, क्रीडागृह, गुणन-गृह (स्वाध्याय शाला) एव विशाल चित्रशालाओ से युक्त है। इन मन्दिरो मे देवच्छद के भीतर श्री देवी, श्रुतदेवी तथा सर्वाण्ह और सनत्कुमार यक्षो की मूर्तियाँ एव आठ मगल द्रव्य होते है। झारी, कलश, दर्पण, ध्वजा, चामर, छत्र, व्यजन और सुप्रतिष्ठ इन आठ मगल द्रव्यो मे से वहा प्रत्येक १०८ होते है। इन भवनो मे चमकते हुए रत्नदीपक, ५ वर्ण के रत्नो से निर्मित चौक, गोशीर्ष, मलयचदन, कालागरू और धूप की गध तथा भभा, मृदग, मर्दल, जयघटा, कास्यताल, तिवली, दुदुभि एव पटह आदि के शब्द नित्य गुजायमान होते है। हाथ मे चवर लिये हुए नागकुमार देवो से युक्त उत्तम-उत्तम रत्नो से निर्मित, देवो द्वारा वद्य ऐसी उत्तम प्रतिमाये सिहा-सन पर विराजमान है। प्रत्येक जिन भवनो मे ये जिन प्रतिमाये १०८-१०८ प्रमाण है। ये अनादि निधन जिन भवन भवनवासी देवो के भवनो की सख्या के प्रमाण सात करोड, बहत्तर लाख है।

जो देव सम्यग्दर्शन से युक्त है वे कर्म क्षय के निमित्त नित्य ही जिन

भगवान की भक्ति से पूजा करते है। इसके अतिरिक्त सम्यग्दृष्टि देवो से सबोधित किये गये अन्य मिथ्यादृष्टि देव भी कुल देवता मानकर उन जिनेंद्र प्रतिमाओ की नित्य ही बहुत प्रकार से पूजा करते रहते है।

देवों के भवनों का वर्णन

कूटो के चारो तरफ नाना प्रकार की रचनाओ से युक्त, उत्तम सुवर्ण और रत्नो से निर्मित भवनवासी देवो के महल है। ये महल सात, आठ, नौ, दस इत्यादि अनेक भूमियो (तलो) से सहित, लटकती हुई रत्नमालाओ से भूषित, चमकते हुए मणिमय दीपको से सुशोभित, जन्मशाला, अभिषेकशाला भूषणशाला, मैथुनशाला, परिचर्यागृह और मत्रशाला से रमणीय, मणिमय तोरणो से सुन्दर द्वारो वाले सामान्यगृह, कदलीगृह, गर्भगृह, चित्रगृह, आसनगृह, नादगृह और लतागृह इत्यादि गृह विशेषो से सहित, सुवर्णमय प्राकार से सयुक्त, विशाल छज्जो से शोभित, फहराती हुई ध्वजाओ से सहित पुष्करिणी, वापी, कूप से सहित क्रीडन युक्त मत्तवारणो से सयुक्त मनोहर गवाक्ष और कपाटो से शोभित, नाना प्रकार की पुत्तलिकाओ से सहित एव अनादि निधन है।

उन भवनो के चारो पार्श्वभागो मे चित्र-विचित्र आसन एव उत्तम रत्नो से निर्मित दिव्य शय्याये स्थित है।

परिवार देवों का वर्णन

प्रत्येक इन्द्र के परिवार देव दस प्रकार के है। प्रतीन्द्र, त्रायस्त्रिश, सामानिक, लोकपाल, तनुरक्षक (आत्मरक्षक), तीन पारिषद, सात अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषक।

इनमे से इन्द्र राजा के सदृश, प्रतीन्द्र युवराज के सदृश, त्रायस्त्रिश देव पुत्र के सदृश, सामानिक देव पत्नी के तुल्य, चारो लोकपाल तत्रपालो के सदृश और सभी तनुरक्षक देव राजा के अगरक्षक के समान है।

राजा की बाह्य, मध्य और अभ्यतर समिति के समान देवो मे भी तीन प्रकार की परिषद होती है। इन तीनो परिषदो में बैठने वाले देव

क्रमश वाह्य पारिपद, मध्यमपारिषद और आभ्यतर पारिपद कहलाते । है

अनीक देव सेना के तुल्य, प्रकीर्णक देव प्रजा के सदृश, आभियोग जाति के देव दास के सदृश और किल्विपक देव चाडाल के समान होते है।

इनमे प्रतीन्द्र इन्द्र के वरावर २० होते है। प्रत्येक इन्द्रो के त्रायस्त्रिश देव ३३ ही होते हैं।

चमर आदि इन्द्रो के सामानिक देवो का प्रमाण १० लाख ३० हजार है।

चमरइन्द्र के सामानिक — ६४०००
वैरोचन ,, ,, — ६००००
भूतानद ,, ,, — ५६०००

शेप १७ इन्द्र के पचास–पचास हजार है। ६४०००+६००००+ ५६०००+(५००००×१७)=१०३०००० हुए।

प्रत्येक इन्द्र के पूर्व आदि दिशाओ के रक्षक क्रम से सोम, यम, वरुण और कुवेर नामक चार–चार लोकपाल होते है।

चमरेन्द्र के आत्मरक्षक देव २ लाख छप्पन हजार, वैरोचन के २लाख ४० हजार, भूतानन्द के २ लाख २४ हजार एव धरणानन्द आदि शेप १७ इन्द्रो के दो-दो लाख प्रमाण है।

२५६०००+२४००००+(२०००००×१७)=३८९६००० हुए।

पारिषद देव

चमर इन्द्र के अभ्यन्तर पारिपद २८०००
वैरोचन के ,, ,, २६०००
भूतानन्द के ,, ,, ६०००
शेष १७ के चार-चार हजार है १७×४०००=६८०००
२८०००+२६०००+६०००+६८०००=१२८०००
चमर इन्द्र के मध्यम पारिपद ३००००
वैरोचन ,, ,, ,, २८०००
भूतानद ,, ,, ,, ८०००

शेष १७ के छः छः हजार ,, (६००० × १७)
३०००० + २८००० + ८००० + (६००० × १७) = १६८०००
चमर इन्द्र के बाह्य पारिषद ३२०००
वैरोचन ,, ,, ,, ३००००
भूतानद ,, ,, ,, १००००
शेष १७ के आठ-आठ हजार (८००० × १७) = १३६०००
३२००० + ३०००० + १०००० + १३६००० = २०८०००
बीसो इन्द्रो के अभ्यन्तर पारिषद = १२८०००
बीसो ,, ,, मध्यम पारिषद = १६८०००
बीसो ,, ,, बाह्य पारिषद = २०८०००

अभ्यन्तर परिषद् का नाम 'जतु', मध्यम परिषद् का नाम 'चन्द्रा' एव बाह्य परिषद् का नाम 'समिता' है।

प्रत्येक इन्द्रो के ७-७ अनीक होती है। इन सात अनीको में से प्रत्येक अनीक सात-सात कक्षाओ से युक्त होती है। उनमें से प्रथम कक्षा का प्रमाण अपने-अपने सामानिक देवो के बराबर तथा इसके आगे अतिम कक्षा तक उत्तरोत्तर प्रथम कक्षा से दूना-दूना प्रमाण होता गया है।

असुरकुमारो मे महिष, घोडा, हाथी, रथ, पादचारी, गन्धर्व और नर्तकी ये सात अनीक होती है। इनमें से आदि के ६ अनीको मे ६ प्रधान देव एव अतिम अनीक में प्रधान देवी होती है।

नागकुमारो मे प्रथम अनीक नाग है। बाकी ६ अनीक घोडा आदि उपर्युक्त ही है। तथैव आगे भी सुपर्णकुमारो में गरूड, द्वीपकुमारों मे गजेंद्र, उदधि कुमारो मे मगर, स्तनितकुमारो मे ऊँट, विद्युत्कुमारो में गेंडा, दिक्कुमारो में सिंह, अग्निकुमारो मे शिविका और वायुकुमारो में अश्व ये प्रथम अनीक है बाकी ६ अनीक वे ही घोडाआदि ही है।

चमरेन्द्र के इक्यासी लाख अट्ठाईस हजार महिप सेना तथा पृथक्-पृथक् तुरग आदि भी इतने ही होते है।

८१२८००० × ७ = ५६८९६००० ।

वैरोचन के ७६२०००० महिष सेना है शेष इतने ही है ७६२०००० ×७=५३३४००००।

भूतानद के ७११२००० नाग और पृथक्-पृथक् घोडा आदि भी इतने ही है। ७११२०००×७=४६७८४०००।

शेष १७ इन्द्रो में से प्रत्येक के प्रथम अनीक का प्रमाण ६३५०००० है एव ७ अनीको का प्रमाण ४४४५०००० है।

सम्पूर्ण २० इन्द्रो में जितने भी प्रकीर्णक आदि देव हैं काल के वश से उनके प्रमाण का उपदेश उपलब्ध नही है।

इन्द्रों की देवियों की संख्या

चमरेन्द्र के कृष्णा, रत्ना, सुमेघा, सुका और सुकाता ये पाच अग्रमहिषी-महादेविया है। इन महादेवियो में प्रत्येक के ८००० परिवार देविया है। इस प्रकार से परिवार देविया ४०००० प्रणाण हैं। ८०००×५=४००००।

ये पाचो महादेविया विक्रिया से अपने आठ-आठ हजार रूप वना सकती है। इस इन्द्र के १६००० वल्लभा देविया है।

वल्लभा १६०००+सपरिवार महादेवी ४००००=५६०००।

द्वितीय वैरोचन इन्द्र के पद्मा, पद्मश्री, कनकश्री, कनकमाला और महापद्मा ये ५ अग्रमहिषिया है। इनकी विक्रिया, परिवार देवी आदि का प्रमाण पूर्ववत् होने से इस इन्द्र के भी ५६००० देविया है।

इसी प्रकार से भूतानन्द और धरणानन्द के पचास-पचास हजार देवागनाये हैं।

वेणुदेव, वेणुधारी इन्द्रो के ४४००० है। शेष इन्द्रों के ३२-३२ हजार देवागनायें है।

इन इन्द्रो के पारिषद आदि देवो की देवागनाओ का प्रमाण तिलोय-पण्णत्ति से जान लेना चाहिए। सवसे निकृष्ट देवो के ३२ देविया अवश्य होती है।

उपर्युक्त कहे गये प्रतीन्द्र, सामानिक आदि देव इन्द्रो के प्रधान परिवार स्वरूप है। इनके अतिरिक्त अन्य और भी अप्रधान परिवार रूप देव होते है जो कि असख्यात कहे गये है।

मानसिक आहार का वर्णन

इन्द्र और प्रतीन्द्र आदि देव तथा इनकी देवियो का अति स्निग्ध, अनुपम, अमृतमय आहार होता है। चमर और वैरोचन इन दो इन्द्रो के १००० वर्ष के बाद आहार ग्रहण होता है। इसके आगे भूतानन्द आदि छह इन्द्रो के साढे बारह दिनो मे आहार होता है। जलप्रभ आदि छह इन्द्रो के १२ दिन मे और अमितगति आदि छह इन्द्रो के साढे सात दिन मे आहार ग्रहण होता है। दस हजार वर्ष की जघन्य आयु वाले देवो का आहार दो दिन मे, पल्योपम की आयु वालो के पाच दिन मे भोजन का अवसर आता है। इन देवो के मन मे भोजन की इच्छा होते ही उनके कठ से अमृत झरता है और तृप्ति हो जाती है इसी का नाम मानसिक आहार है।

देवों के उच्छ्वास का वर्णन

चमर और वैरोचन इन्द्र १५ दिन मे उच्छ्वास लेते है, भूतानन्द आदि ६ इन्द्र १२½ मुहूर्त में, जलप्रभ आदि ६ इन्द्र ६½ मुहूर्त मे उच्छ्वास लेते है।

जो देव १० हजार वर्ष की आयु वाले है उनके ७ श्वासोच्छ्वास प्रमाण काल के बाद एव पल्योपम प्रमाण आयु धारक देवो के पाच मुहूर्त के बाद श्वासोच्छ्वास होता है।

देवों के शरीर के वर्ण

असुरकुमार के शरीर का वर्ण काला, नागकुमार के शरीर का वर्ण अधिक काला, गरुड और द्वीपकुमार का काला, उदधिकुमार और स्तनितकुमार का अधिक काला, विद्युत्कुमार का बिजली के सदृश, दिक्कुमार का काला वर्ण, अग्निकुमार का अग्नि की काति के सदृश एव वायुकुमार देव का नील कमल के सदृश वर्ण है।

इन्द्रों का वैभव

ये इन्द्र लोग भक्ति से पच कल्याणकों के निमित्त ढाई द्वीप में एवं जिनेन्द्र भगवान की पूजन के निमित्त नदीश्वर द्वीप आदि पवित्र स्थानों में जाते है। शीलादि से सयुक्त किन्ही मुनिवर आदि की पूजन या परीक्षा के निमित्त एव क्रीडा के लिए यथेच्छ स्थान पर आते-जाते है।

ये असुरकुमार आदि देव स्वय अन्य किसी की सहायता से रहित ईशान स्वर्ग तक जा सकते हैं तथा अन्य देवो की सहायता से अच्युत स्वर्ग तक भी जाते है। इन देवो के शरीर निर्मल काति के धारक सुगन्धित उच्छ्वास से सहित, अनुपम रूप वाले तथा समचतुरस्र सस्थान से युक्त हैं। देवो के समान इनकी देविया भी वैसे ही गुणो से युक्त होती है।

इन देव-देवियो के रोग, वृद्धावस्था आदि नही है, अनुपम बल-वीर्य है। इनका अकाल मरण भी नही होता है। इनके शरीर मे मल-मूत्र, हड्डी, मास, मेदा, खून, मज्जा, वसा, शुक्र आदि धातुए नही है। ये देवगण काय प्रवीचार से युक्त है अर्थात् वेद की उदीरणा होने पर मनुष्यों के समान काम सुख का अनुभव करते है। ये इंद्र प्रतीन्द्र विविध प्रकार की छत्रादि विभूतियो को धारण करते है।

प्रतीन्द्र आदि देवो के सिहासन, छत्र, चमर अपने-अपने इन्द्रो की अपेक्षा छोटे रहते है। सामानिक और त्रायस्त्रिश नामक देवों में विक्रिया, परिवार, ऋद्धि और आयु अपने-अपने इन्द्रो के समान है। इन्द्र उन सामानिक देवो की अपेक्षा केवल आज्ञा, छत्र, सिहासन और चामरों से अधिक वैभव युक्त होते है।

इन असुरकुमार आदि दस प्रकार के भवनवासी देवो के भवनो में **ओलग शालाओं** के आगे विविध प्रकार के रत्नो से निर्मित चैत्यवृक्ष होते है। पीपल, सप्तपर्ण, शाल्मलि, जामुन, वेतस, कदब, प्रियगु, शिरीष, पलाश और राजद्रुम ये १० चैत्यवृक्ष क्रम से उन असुरादिक कुलो के चिन्ह रूप है। प्रत्येक चैत्यवृक्ष के मूलभाग मे चारो ओर पल्यंकासन से

स्थित परम रमणीय पाच-पाच जिन प्रतिमाये विराजमान है। उन सभी प्रतिमाओं के आगे रत्नमय २० मानस्थभ है। एक-एक मानस्थभ के ऊपर चारो दिशाओ में सिहासन की शोभा से युक्त २८ जिन प्रतिमाएं हैं। इन प्रतिमाओ के निकट छत्र, चामर आदि विभूतिया शोभायमान होती है।

चमरइन्द्र सौधर्म इन्द्र से ईर्ष्या करता है। वैरोचन ईशान से, वेणु भूतानद से और वेणुधारी धरणानद से ईर्ष्या करते है। नाना प्रकार की विभूतियो को देखकर मात्सर्य से या स्वभाव से ही जलते रहते है।

देवों की आयु का वर्णन

चमर, वैरोचन की आयु	—	१ सागरोपम
भूतानद, धरणानद ,,	—	३ पल्योपम
वेणु, वेणुधारी, ,,	—	२½ पल्योपम
पूर्ण, वसिष्ठ की ,,	—	२ पल्योपम
जलप्रभ आदि शेष १२ इद्रो की	—	१½ पल्योपम

देवियों की आयु

चमरइन्द्र की देवियो की आयु	—	२½ पल्योपम
वैरोचन ,, ,, ,,	—	३ पल्योपम
भूतानद ,, ,, ,,	—	⅛ पल्योपम
धरणानद ,, ,, ,,	—	कुछ अधिक ⅛ पल्योपम
वेणु ,, ,, ,,	—	३ पूर्वकोटि
वेणुधारी ,, ,, ,,	—	कुछ अधिक ३ पूर्वकोटि

अवशिष्ट दक्षिण इन्द्रो मे से प्रत्येक इन्द्र की देवियो की आयु ३ करोड़ वर्ष और उत्तर इन्द्रो मे से प्रत्येक इन्द्र की देवियो की आयु कुछ

अधिक ३ करोड़ वर्ष है। असुर आदि १० प्रकार के देवो मे निकृष्ट देवो की जघन्य आयु का प्रमाण १० हजार वर्ष मात्र है।

देवों के शरीर की अवगाहना

असुरकुमारो के शरीर की ऊचाई — २५ धनुष
शेष देवो के शरीर की ऊचाई — १० धनुष

यह ऊचाई का [प्रमाण मूल शरीर का है। विक्रिया से निर्मित शरीरो की ऊचाई अनेक प्रकार की है।

देवों का अवधिज्ञान एवं विक्रिया

अपने अपने भवन मे स्थित भवनवासी देवो का अवधिज्ञान ऊर्ध्व दिशा मे उत्कृष्ट रूप से मेरु पर्वत के शिखर पर्यत को स्पर्श करता है एव अपने-अपने भवनो के नीचे-नीचे, थोडे-थोडे क्षेत्र मे प्रवृत्ति करता है। वही अवधिज्ञान तिरछे क्षेत्र की अपेक्षा अधिक क्षेत्र को जानता है। ये असुरकुमार आदि १० प्रकार के भवनवासी देव अनेक रूपो की विक्रिया करते हुए अपने-अपने अवधिज्ञान के क्षेत्र को पूरित करते है।

भवनवासी देवों में जन्म लेने के कारण

जो मनुष्य शकादि दोषो से युक्त हैं, क्लेशभाव और मिथ्यात्व भाव से युक्त चारित्र को धारण करते है। कलहप्रिय, अविनयी, जिनसूत्र से बहिर्भूत, तीर्थंकर और सघ की आसादना करने वाले, कुमार्गगामी, एव कुतप करने वाले तापसी आदि इन भवनवासी देवों में जन्म लेते है।

भवन वासी देव

क्रम स०	नाम	मुकुट चिन्ह	भवन	इन्द्र	उत्कृष्ट आयु	उत्सेध	उत्कृष्ट अवधि	
							क्षेत्र	काल
१.	असुर कुमार	चूडामणि	६४ लाख	२	१ सा	२५ धनुष	असं कोटि यो	असंख्यात वर्ष
२	नागकुमार	सर्प	८४ ,,	२	३ प	१० ध०	असं हजार यो	असुरो से स गुणाहीन
३.	सुपर्ण कुमार	गरुड	७२ ,,	२	२½ ,,	,,	,,	,,
४.	द्वीप कुमार	हाथी	७६ ,,	२	२ ,,	,,	,,	,,
५.	उदधिकुमार	मगर	,,	२	१½ ,,	,,	,,	,,
६.	स्तनित कुमार	स्वस्तिक	,,	२	,,	,,	,,	,,
७	विद्युत्कुमार	वज्र	,,	२	,,	,,	,,	,,
८	दिक्कुमार	सिंह	,,	२	,,	,,	,,	,,
९.	अग्नि कुमार	कलश	,,	२	,,	,,	,,	,,
१०.	वायु कुमार	तुरग	९६ लाख	२	,,	,,	,,	,,

भवनवासी देवों में सम्यक्त्व के कारण

सम्यक्त्व सहित जीव मरकर भवनवासी देवो मे उत्पन्न नही हो सकता है। कदाचित् जातिस्मरण, देव ऋद्धि दर्शन, जिनबिंब दर्शन और धर्म श्रवण के निमित्तो से ये देव सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त कर लेते है। इन भवनवासी देवो से निकल कर जीव कर्म भूमि मे मनुष्यगति अथवा तिर्यंच-गति को प्राप्त करते है किन्तु ये शलाका पुरुष नही हो सकते है।

देवों के जन्म स्थान

इन देवो के भवनो के भीतर उत्तम, कोमल उपपाद शाला है। वहा ये देव देवगति नाम कर्म के उदय से उत्पन्न होते है, अन्तर्मुहूर्त मे छहो पर्याप्तियों को पूर्ण कर १६ वर्ष के युवक के समान शरीर को प्राप्त कर लेते है। इन देवो के शरीर मे मल, मूत्र, चर्म, हड्डी, मास आदि नही है, ऐसा दिव्य वैक्रियक शरीर होता है। इसीलिए इन देवों के रोग आदि उत्पन्न नही होते हैं।

देव भवनों में जन्म लेते ही अनुद्घाटित दोनों ही किवाड खुल जाते है, आनद भेरी शब्द होने लगता है। इस भेरी के शब्द को सुनकर परि-वार के देव देविया हर्ष से जय जयकार करते हुए आते है। जय घटा, पटह आदि वाद्य सगीत नाट्य आदि मे चतुर मागधदेव मगलगीत गाते है। इस दृश्य को देखकर नवजात देव आश्चर्यचकित हो सोचता है कि तत्क्षण उसे अवधिज्ञान नेत्र प्रकट हो जाता है। इस अवधि का नाम विभंगावधि है। जब सम्यक्त्व प्रगट हो जाता है तब ये अवधि सुअवधि कहलाती है।

ये देवगण पूर्व के पुण्य का चिंतवन करते हुए यह भी सोचते है कि मैंने सम्यक्त्व शून्य धर्म धारण करके यह निम्न देव योनि पाई है इसके पश्चात् वे देव अभिषेक योग्य द्रव्यो को लेकर जिन भवनो मे स्थित जिन प्रतिमाओ की पूजा करते हैं।

भावन-

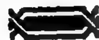
	इन्द्र नाम	भवन	प्रतीन्द्र	सामानिक	त्रायस्त्रिंश	परि० आदिम
असुर कु०	चमर दक्षिणेन्द्र	३४ लाख	१	६४ हजार	३३	२८ह०
	वैरोचन उत्तरेन्द्र	३० "	१	६० "	"	१६ "
नाग कु०	भूतानन्द द०	४४ "	१	५६ "	"	६ "
	धरणानन्द उ०	४० "	१	५००००	"	४०००
सुपर्ण कु०	वेणु द०	३८ "	१	"	"	"
	वेणुधारी उ०	३४ "	१	"	"	"
द्वीप कु०	पूर्ण द०	४० "	१	"	"	"
	वशिष्ट उ०	३६ "	१	"	"	"
उदधि कु०	जलप्रभ द०	४० "	१	"	"	"
	जलकान्त उ०	३६ "	१	"	"	"
स्तनित कु०	घोष द०	४० "	१	"	"	"
	महाघोष उ०	३६ "	१	"	"	"
विद्युत कु०	हरिषेण द०	४० "	१	"	"	"
	हरिकात उ०	३६ "	१	"	"	"
दिक् कु०	अमितगति द०	४० "	१	"	"	"
	अमितवाहन उ०	३६ "	१	"	"	"
अग्नि कु०	अग्निशिखी द०	४ "	१	"	"	"
	अग्नि वाहन उ०	३६ '	१	"	"	"
वायु० कु०	वेलम्ब द०	५० "	१	"	"	"
	[illegible]	[illegible] "	[illegible]	"	"	"

इन्द्र

पारिषद मध्य	परि० बाह्य	सात अनीक	तनुरक्ष	लोक-पाल	शेष प्रकीर्णक आदि ३	देवियां
३० हजार	३२ हजार	५६८६६०००	२५६००	४	सख्या के उपदेश का अभाव	५६०००
२८ "	३० "	५३३४००००	२४००००	४	"	"
८ "	१० "	४६७८४०००	२२४०००	४	"	५००००
६०००	८०००	४४४५००००	२०००००	४	"	"
"	"	"	"	४	"	४४०००
"	"	"	"	४	"	"
"	"	"	"	४	"	३००००
"	"	"	"	४	"	"
"	"	"	"	४	"	"
"	"	"	"	४	"	"
"	"	"	"	४	"	"
"	"	"	"	४	"	"
"	"	"	"	४	"	"
"	"	"	"	४	"	"
"	"	"	"	४	"	"
"	"	"	"	४	"	"
"	"	"	"	४	"	"
"	"	"	"	४	"	"
"	"	"	"	४	"	"
"	"	"	"	४	"	"

यहाँ सम्यग्दृष्टी देव "समस्त कर्मो के क्षय मे एक अद्वितीय कारण जिनपूजा है" ऐसा समझ कर बड़ी भाव भक्ति से पूजा करते है एव मिथ्यादृष्टी देव अन्य देवो की प्रेरणा से इन्हे कुलदेवता मानकर पूजा करते हैं। पश्चात् अपने-अपने भवन मे आकर ये देव सिहासन पर विराजमान हो जाते है। ये देवगण दिव्य रूप लावण्य से युक्त, अनेक प्रकार की विक्रियाओ से सहित स्वभाव से ही प्रसन्न मुखवाली देवियो के साथ क्रीड़ा करते है।

ये देव स्पर्श, रस, रूप, और सुन्दर शब्द से प्राप्त हुए सुखो का अनुभव करते हुए क्षणमात्र भी तृप्ति को प्राप्त नही होते है। द्वीप, कुलाचल, भोगभूमि, नदनवन आदि उत्तम-उत्तम स्थानो मे क्रीडा किया करते है। यदि ये देव सम्यक्त्व से सहित मरण करते है तो उत्तम मनुष्य पर्याय को प्राप्त कर लेते है। यदि मिथ्यात्व के प्रभाव से जीवन भर विषय भोगो मे आनद मानते हुए मरण के ६ महिना पहले अपने मरण काल को जान लेते है तो विलाप करते हुए सक्लेश परिणाम से मरणकर एकेन्द्रिय पर्याय में पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक जीव हो जाते है। उस एकेन्द्रिय पर्याय से निकल कर पुन. त्रस पर्याय पाना अत्यत ही कठिन है। इस विषयासक्ति का यह दुष्परिणाम है कि इन देवो को भी एकेन्द्रिय पर्याय मे गिरा देता है। ऐसा समझकर मिथ्यात्व को छोड़ देना चाहिए।



व्यँतरवासी देव

व्यन्तरवासी देवों के निवासस्थान

रत्नप्रभा पृथिवी के खरभाग मे ७ प्रकार के व्यंतर देवों के निवास स्थान है एव पकप्रभा में राक्षस जाति के व्यतर वासियो का निवास स्थान है। इन व्यतर देवो के भवन, भवनपुर और आवास ऐसे ३ प्रकार के भवन माने गये है।

इनमें से रत्नप्रभा पृथिवी में भवन, द्वीपसमुद्रो में भवनपुर और पर्वत, सरोवर आदि के ऊपर आवास होते हैं। उत्कृष्ट भवनो में से प्रत्येक का विस्तार १२००० योजन और मोटाई ३०० योजन प्रमाण है। जघन्य भवनो में से प्रत्येक के विस्तार का प्रमाण २५ योजन और मोटाई ¾ योजन हैं।

इन भवनों के बिल्कुल मध्य भाग में वेदी, ४ वन और तोरण द्वारो से रमणीय एवं अपने भवनो की मोटाई के तीसरे भाग प्रमाण कूट होते है। इन कूटो के उपरिम भाग पर विविध प्रकार की रचना से सयुक्त सुवर्ण-चादी और रत्नमयी जिनेन्द्र प्रासाद है। ये प्रत्येक जिनेन्द्र भवन, झारी, कलश, दर्पण, ध्वजा, चवर, बीजना, छत्र और ठोना इन एक सौ आठ, एक सौ आठ मंगल द्रव्यों से सहित है। इन भवनो में सिंहासन आदि प्रातिहार्यो से सहित और हाथ में चामरो को लिए हुए नागयक्ष देव युगलो से संयुक्त अकृत्रिम जिन प्रतिमायें विराजमान है। एव वहा पर नित्य ही दुदुंभि, मृदग, मर्दल, जयघण्टा, भेरी, शख, झाझ, वीणा आदि वादित्रों के सुन्दर शब्द होते रहते है।

सम्यग्दृष्टि देव कर्म क्षय के निमित्त गाढ भक्ति से विविध द्रव्यो के द्वारा उन जिनेन्द्र प्रतिमाओं की पूजा करते है। अन्य देवो के उपदेश वश मिथ्यादृष्टि देव भी "ये कुल देवता है" ऐसा समझ कर उन जिनेन्द्र प्रतिमाओ की पूजा करते है। इन कूटो के चारो तरफ ७—८ आदि तलो से युक्त विचित्र आकृतियो से सहित व्यतर देवो के प्रासाद है। ये प्रासाद लटकती हुई रत्नमालाओ से युक्त, उत्तम तोरणो से युक्त द्वारो वाले, निर्मल विचित्र, मणिमय शयनों एव आसनो के समूह से परिपूर्ण है। इस प्रकार

ये प्रासाद ३०००० प्रमाण है। इनका सम्पूर्ण वर्णन भवनवासी देवो के भवनो के समान है।

व्यन्तर देवों के भवन आदिकों का विस्तार आदि

व्यन्तर देवो के उत्कृष्ट भवनो का विस्तार	१२००० योजन
„ „ „ मोटाई	३०० योजन
„ „ उत्कृष्ट भवन पुरो का विस्तार	५१००००० योजन
„ „ „ आवासो का „	१२२०० योजन
व्यन्तर देवो के जघन्य भवनो का विस्तार	२५ योजन
„ „ „ „ „ मोटाई	३/४ योजन
„ „ „ भवनपुरो का विस्तार	१ योजन
„ „ „ आवासो का „	३ कोस

कूट, जिनेन्द्र भवन, देवप्रासाद, वेदिका, वन आदि रचनाये भवनो के सदृश ही भवनपुरो और आवासो में भी मानी गई है।

व्यन्तर देवों के भेद

किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच इस प्रकार से ये व्यन्तर देव आठ प्रकार के होते है।

भूतो के चौदह हजार प्रमाण और राक्षसो के १६ हजार प्रमाण भवन है। शेष व्यन्तरो के भवन नही है।

व्यन्तर देवों के चिन्ह विशेष

किन्नर, किपुरुष आदि व्यन्तर देवो सबधी तीनो प्रकार के (भवन, भवनपुर, आवास) भवनो के सामने एक-एक चैत्य वृक्ष है। यथा—

किन्नरो	के भवनों	के सामने	—	अशोक वृक्ष
किंपुरुष	,,	,,	—	चपक ,,
महोरग	,,	,,	—	नागद्रुम ,,
गन्धर्व	,,	,,	—	तुवरू ,,
यक्ष	,,	,,	—	न्यग्रोध-वट ,,
राक्षस	,,	,,	—	कटक ,,
भूत	,,	,,	—	तुलसी ,,
पिशाच	,,	,,	—	कदव ,,

ये सव चैत्यवृक्ष भवनवासी देवो के चैत्यवृक्षो के सदृश अनादि-निधन है, इनके मूल में चारो ओर चार तोरणो से शोभायमान चार-चार जिनेन्द्र प्रतिमायें विराजमान है। पल्यकासन से स्थित, प्रातिहार्यों से सहित दर्शन मात्र से ही पाप समूह को दूर करने वाली ये जिनेन्द्र प्रतिमाये भव्य-जीवो को मुक्ति प्रदान करने वाली है।

व्यंतर देवों के अन्तर्गत कुलों के भेदों का वर्णन

इन किन्नर आदि व्यतरो में दस, वारह आदि भेद पाये जाते है। इनमें दो-दो इंद्र और इद्रों के दो-दो अग्रदेविया मानी गई है। ये देवियां २-२ हजार वल्लभिकाओ से युक्त होती है।

यथा—

किन्नर के	—	१० भेद
किंपुरुष ,,	—	१० ,,
महोरग ,,	—	१० ,,
गन्धर्व ,,	—	१० ,,
यक्ष ,,	—	१२ ,,
राक्षस ,,	—	७ ,,
भूत ,,	—	७ ,,
पिशाच ,,	—	१४ ,,

किन्नर के १० भेद

किंपुरुष, किन्नर, हृदयगम, रूपपाली, किन्नर-किन्नर, अनिंदित, मनोरम, किन्नरोत्तम, रतिप्रिय और ज्येष्ठ ये १० प्रकार से किन्नर जाति के देव होते हैं। इनमें से किंपुरुष और किन्नर ये २ इन्द्र है।

किन्नर के २ इन्द्र—किंपुरुष और किन्नर।

किंपुरुष के २ अग्रदेवियां—अवतंसा, केतुमती।

किन्नर — ,, ,, रतिषेणा, रतिप्रिया।

किंपुरुष के १० भेद—पुरुष, पुरुषोत्तम, सत्पुरुष, महापुरुष, पुरुष-प्रभ, अतिपुरुष, मरू, मरूदेव, मरुप्रभ और यशस्वान्।

किंपुरुष के २ इन्द्र—सत्पुरुष, महापुरुष।

सत्पुरुष इन्द्र की २ देविया—रोहिणी, नवमी।

महापुरुष ,, ,, ,, — ह्री, पुष्पवती।

महोरग जाति के १० भेद—भुजग, भुजगशाली, महाकाय, अतिकाय, स्कधशाली, मनोहर, अशनिजव, महेश्वर, गम्भीर और प्रियदर्शन।

महोरगो मे २ इन्द्र—महाकाय, अतिकाय।

महाकाय के २ देवियाँ—भोगा, भोगवती।

अतिकाय के २ देविया—अनिंदिता, पुष्पगधी।

गंधर्वजाति के देवों के १० भेद

हाहा, हूहू, नारद, तुबरू, वासव, कदम्ब, महास्वर, गीतरति, गीतरस और वज्रमान्।

इनमें इद्र—गीतरति और गीतरस।

गीतरति की दो अग्रदेविया—सरस्वती, स्वरसेना।

गीतरस की ,, ,, —नदिनी, प्रियदर्शना।

यक्षों के १२ भेद

माणिभद्र, पूर्णभद्र, शैलभद्र, मनोभद्र, भद्रक, सुभद्र, सर्वभद्र, मानुष, धनपाल, स्वरूपयक्ष, यक्षोत्तम और मनोहरण ये १२ भेद यक्षो के है।

इनमे इन्द्र—माणिभद्र, पूर्णभद्र ।

माणिभद्र की २ देविया—कुदा, बहुपुत्रा ।

पूर्णभद्र की ,, ,, —तारा, उत्तमा ।

राक्षसों के ७ भेद

भीम, महाभीम, विनायक, उदक, राक्षस, राक्षस-राक्षस और ब्रह्मराक्षस ।

इनके २ इन्द्र —भीम, महाभीम ।

भीम की देवियां—पद्मा, वसुमित्रा ।

महाभीम ,, —रत्नाढ्या, कंचनप्रभा ।

भूतों के ७ भेद

सुरूप, प्रतिरूप, भूतोत्तम, प्रतिभूत, महाभूत, प्रतिच्छन्न और आकाशभूत ।

इनके इन्द्र—सुरूप, प्रतिरूप ।

स्वरूप की २ देविया—रूपवती, बहुरूपा ।

प्रतिरूप ,, ,, —सुमुखी, सुसीमा ।

पिशाचों के १४ भेद

कूष्माड, यक्ष, राक्षस, समोह, तारक, अशुचि, काल, महाकाल, शुचि, सतालक, देह, महादेह, तूष्णीक और प्रवचन ।

इनमें २ इद्र — काल, महाकाल ।

काल की २ अग्रदेविया — कमला, कमलप्रभा ।

महाकाल ,, ,, — उत्पला, सुदर्शना ।

इन इद्रो की आयु १ पल्य एव इनकी अग्रदेवियो की आयु अर्धपल्य है । इन अग्रदेवियो में से प्रत्येक के १००० प्रमाण परिवार देवियां होती है । इस प्रकार से आठ प्रकार के व्यन्तर भेदो में प्रत्येक के २-२ इद्र होकर

१६ इद्र हो जाते है। इन १६ इद्रो में प्रत्येक के २-२ रूपवती गणिका महत्तरी होती है। यथा—

किन्नर { किंपुरुष की गणिका—मधुरा, मधुरालापा।
किन्नर के „ —सुस्वरा, मृदुभाषिणी।

किंपुरुष { सत्पुरुष—पुरुषप्रिया, पुरुपकाता।
महापुरुष—सौम्या, पुरुषदर्शिनी।

महोरग { महाकाय—भोगा, भोगवती।
अतिकाय—भुजगा, भुजगप्रिया।

गधर्व { गीतरस—सुस्वरा, अनिंदिता।
गीतरति—सुघोषा, विमला।

यक्ष { माणिभद्र—भद्रा, सुभद्रा।
पूर्णभद्र—मालिनी, पद्ममालिनी।

राक्षस { भीम—शर्वरी, सर्वसेना।
महाभीम— रूद्रा, रूद्रवती।

भूत { स्वरूप—भूता. भूतकाता।
प्रतिरूप—भूतदत्ता, महाभुजा।

पिशाच { काल—अबा, कराला।
महाकाल—सुलसा, सुदर्शना।

इन इंद्रो की ये गणिका' महत्तरिया है। इन गणिकाओ की आयु अर्ध-पल्य प्रमाण है।

व्यन्तर देवों के शरीर के वर्ण

व्यतर देव		देह का वर्ण
किन्नर	—	प्रियगु
किपुरुष	—	सुवर्ण सदृश
महोरग	—	कालश्यामल
गधर्व	—	शुद्धसुवर्ण
यक्ष	—	कालश्यामल
राक्षस	—	शुद्ध श्याम
भूत	—	कालश्यामल
पिशाच	—	कज्जल के सदृश ।

ये सभी किन्नर आदि देव कृष्ण आदि वर्ण के होते हुए भी सुन्दर, देखने में सौम्य, सुभग, विलास से सयुक्त, मणिमय भूषणो से अलकृत और महान तेज के धारक होते है ।

दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र

इन इद्रो मे जिनका नाम पहले उच्चारण किया गया है वे ८ दक्षिणेन्द्र है एव जिनका नाम बाद में है वे ८ उत्तरेन्द्र कहलाते है ।

इन्द्रों का वैभव

इन व्यन्तर देवो के नगर अजनक, वज्रधातुक, सुवर्ण, मन.शिलक, वज्ररजत, हिंगुलक और हरिताल द्वीप मे स्थित है । इद्रों के समभाग में पांच-पाच नगर होते है । इनमे से अपने नाम से अकित नगर मध्य मे, एव प्रभ, कात, आवर्त और मध्य इन नामो से अकित नगर पूर्व आदि दिशाओ में होते है । जैसे किन्नर, किन्नरप्रभ, किन्नरकात, किन्नरावर्त और किन्नरमध्य ये पाच नगर के नाम है । इसमे किन्नर नगर मध्य मे है शेष ४ नगर पूर्व आदि दिशाओ मे क्रम से है । इन द्वीपो मे दक्षिण इद्र दक्षिण भाग मे एव उत्तर इद्र उत्तर भाग में निवास करते है ।

समचौकोण से स्थित इन पुरो के सुवर्णमय कोट है। इन नगरो के बाहर पूर्व आदि दिशाओ मे से प्रत्येक दिशा मे अशोक, सप्तच्छद, चम्पक तथा आम्रवृक्षो के वन समूह स्थित है। ये वन समूह एक लाख योजन लबे और पचास हजार योजन विस्तृत अनेक प्रकार की विभूतियो से सुशोभित है। इन नगरो मे सुवर्ण, चादी एव रत्नो के प्रासाद है। इन नगरो मे अपने परिवार से सयुक्त इद्र वहुत प्रकार की विभूतियो से क्रीडा करते रहते है।

व्यन्तर देवों के परिवार देव

इन १६ इद्रो मे से प्रत्येक के प्रतीन्द्र, सामानिक, आत्मरक्ष, तीनो पारिषद, सात अनीक, प्रकीर्णक और आभियोग्य इस प्रकार से परिवारदेव होते है। मतलब देवो के जो इन्द्र, सामानिक आदि दस भेद वताये गये है उसमे व्यन्तरवासियो मे त्रायस्त्रिश और लोकपाल भेद नही होते है। अत यहा आठ भेद कहे गये है। प्रत्येक इंद्र के एक-एक प्रतीन्द्र होते हैं।

प्रत्येक इन्द्र के चार-चार हजार सामानिक देव होते हैं।

प्रत्येक इन्द्र के आत्मरक्षक १६-१६ हजार है।

प्रत्येक इन्द्र के अभ्यतर पारिषद देव ८०००

" " मध्य " " १००००

" " वाह्य " " १२०००

हाथी, घोडा, पदाति, गन्धर्व, नर्तक, रथ और बैल इस प्रकार प्रत्येक इन्द्रो की ये ७ सेनाए होती है। हाथी घोडे आदि की पृथक्-पृथक् ७ कक्षाए स्थित है।

इनमे से प्रथम कक्षा का प्रमाण २८००० है। द्वितीयादि कक्षाओ मे हाथी आदि दूने-दूने है। उनमे से प्रत्येक इद्र के हाथियो का प्रमाण ३५५६००० है।

प्रत्येक इन्द्र की ७ अनीको का प्रमाण दो करोड ४८ लाख ९२ हजार है। २४८९२०००।

इन सात अनीकदेवो के महत्तर देवो के नाम क्रमश सुज्येष्ठ, सुग्रीव विमल, मरूदेव, श्रीदाम, दामश्री और विशालाक्ष है।

इसी प्रकार से इन इद्रो के प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषक जाति के देव भी होते है। इस प्रकार के परिवार से सयुक्त सुखो का अनुभव करने वाले व्यन्तर देवेन्द्र अपने-अपने पुरो मे बहुत प्रकार की क्रीडाओ को करते हुए आनन्द में मग्न रहते है।

अपने-अपने इन्द्रो की नगरियो के दोनो पार्श्व भागो में उत्तमवेदी आदि से सयुक्त गणिका महत्तरियो के नगर होते हैं। उन पुरियो मे से प्रत्येक का विस्तार चौरासी हजार योजन प्रमाण है और इतनी ही लम्बाई है।

व्यन्तर देवों के विशेष स्थान

भवनवासी देवो से ऊपर व्यतर देव, उनसे ऊपर नीचोपपातिक देव, उनसे ऊपर दिग्वासी देव स्थित है। आगे-आगे जाकर आकाशोत्पन्न देव है। उनके ऊपर ज्योतिर्वासी देव हैं पुन उनसे ऊपर कल्पवासी, कल्पातीत देव स्थित हैं।

यथा—

चित्रापृथिवी से एक हाथ ऊपर जाकर नीचोपपातिक देव है।

इससे	१००००	हाथ की ऊँचाई पर		दिग्वासी देव है।
„	१००००	„	„	अन्तरनिवासी देव है।
„	१००००	„	„	कूष्माडदेव है।
„	२००००	„	„	उत्पन्न देव है।
„	२००००	„	„	अनुत्पन्न देव है।
„	„	„	„	प्रमाणक देव है।
„	„	„	„	गन्ध देव है।
„	„	„	„	महागध देव है।
„	„	„	„	भुजगदेव है।
„	„	„	„	प्रीतिक देव है।
„	„	„	„	आकाशोत्पन्न देव है।

रत्नप्रभा पृथ्वी १८०००० योजन मोटी है। उसके तीन भाग है। खरभाग, पकभाग, अब्बहुल भाग। खर पृथ्वी १६००० योजन मोटी है। पक पृथ्वी ८४००० योजन मोटी है और अब्बहुल पृथ्वी ८०००० योजन है। खर पृथ्वी के ऊपर नीचे की ओर एक-एक हजार योजन पृथ्वी छोड-कर मध्य के १४००० योजन मे किनर, किंपुरुप, महोरग, गधर्व, यक्ष, भूत और पिशाच इन सात प्रकार के व्यतरो के एव नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्ण, अग्नि, वात, स्तनित, उदधि, द्वीप और दिक्कुमार जाति के भवनवासी देवो के निवास स्थान— भवन है। पक भाग में भवन-वासी के असुरकुमार और व्यतरवासी के राक्षस जाति के देवो के भवन है। नीचे अब्बहुल भागादि मे नरक विल है।

भवनवासियो के ७७२०००००० भवन है। व्यतरवासियो के असख्यात भवन हैं। व्यतर देवो के भवन के तीन भेद है—भवन, भवनपुर और आवास। खर भाग, पकभाग मे पृथ्वी मे व्यतरो के भवन है। असख्यातो द्वीप समुद्रो के ऊपर भवनपुर है और सरोवर, पर्वत, नदी आदिको के ऊपर आवास होते है।

भवनवासी देवो से ऊपर व्यतरवासी देव, उनसे ऊपर नीचोप-पातिक देव, उनसे ऊपर दिग्वासी देव आदि से लेकर अत मे अनुत्तर देव एव उनसे ऊपर सिद्ध परमेष्ठी विराजमान है।

चित्रा पृथ्वी के एक हाथ ऊपर जाकर नीचोपपातिक देव स्थित है।

उसके ऊपर १०००० हाथ जाकर दिग्वासी देव रहते है।

उसके ऊपर १०००० हाथ जाकर अतर निवासी देव है।

उसके ऊपर १०००० हाथ जाकर कूष्माण्ड देव रहते है।

इनकी आयु का प्रमाण १०००० वर्ष आदि है। उसका स्पष्टीकरण—

पृथ्वी से ऊपर		देवो की जाति	आयु
चित्रा पृथ्वी से	१	हाथ ऊपर नीचोपपातिक	१०००० वर्ष
उससे —	१००००	,, ,, दिग्वासी	२०००० ,,
,, —	१००००	,, ,, अतरनिवासी	३०००० ,,
,, —	१००००	,, ,, कूष्माडदेव	४०००० ,,

,,	—	२०००० ,,	,,	उत्पन्न	५०००० ,,
,,	—	२०००० ,,	,,	अनुत्पन्न	६०००० ,,
,,	—	२०००० ,,	,,	प्रमाणक	७०००० ,,
,,	—	२०००० ,,	,,	गध	८०००० ,,
,,	—	२०००० ,,	,,	महागध	८४००० ,,
,,	—	२०००० ,,	,,	भुजग	१/८ पल्य प्रमाण
,,	—	२०००० ,,	,,	प्रीतिक	१/४ पल्य
,,	—	२०००० ,,	,,	आकाशोत्पन्न देव	१/८ पल्य

उनसे बहुत ऊपर अर्थात् चित्रा पृथ्वी से ७९० योजन ऊपर } ज्योतिषी देव रहते है

चित्रा पृथ्वी से ८०० योजन	—	सूर्यदेव	१ पल्य, १००० वर्ष।
इससे ,, ८० योजन ऊपर		चन्द्रदेव	१ पल्य, १००००० वर्ष

वैमानिक के दो भेद है—कल्प, कल्पातीत।

चित्रा पृथ्वी से ९९०४० योजन ऊपर, सौधर्म आदि १२ कल्प है।

मध्यलोक से ६ राजू के ऊपर	अहमिंद्र आदि कल्पतीत देव है
कुछ कम ७ राजू के ऊपर	सिद्ध शिला है जिस पर अनतानत सिद्ध विराजमान है।

व्यन्तर देवों का आहार

किन्नर आदि देव एव देवियां दिव्य, अमृतमय आहार का मन से ही उपभोग करते है। उनके कवलाहार नही है अत. देवो के आहार का नाम मानसिक आहार है।

पल्यप्रमाण आयु से युक्त देवो के आहार का काल ५ दिन एव दस हजार वर्ष की आयु वाले देवो का आहार २ दिन बाद होता है, ऐसा जानना चाहिए।

देवों के उच्छ्वास का वर्णन

इन देवो मे जो पल्यप्रमाण आयु से युक्त है वे पाच मूहूर्तों मे, एवं जो दस हजार वर्ष की आयु से युक्त है वे सात उच्छ्वास काल प्रमाण के अनन्तर उच्छ्वास लेते हैं।

देवों के अवधिज्ञान का विषय

जघन्य आयु–१०००० वर्ष प्रमाण आयु वालों की जघन्य अवधिका विषय ५ कोस है एव उत्कृष्ट अवधिका विषय ५० कोस है।

पल्योपम प्रमाण आयु वाले व्यन्तर देवो की अवधि का विषय नीचे व ऊपर एक लाख योजन प्रमाण है।

व्यन्तर देवों की शक्ति एवं विक्रिया का वर्णन

दस हजार वर्ष प्रमाण आयु का धारक प्रत्येक व्यन्तर देव १०० मनुष्यो को मारने व पालनें के लिए समर्थ है। एव १५० धनुष प्रमाण विस्तार व मोटाई से युक्त क्षेत्र को अपनी शक्ति से उखाड कर अन्यत्र फेंकनें की सामर्थ्य रखता है।

एक पल्य प्रमाण आयु का धारक व्यन्तरदेव अपनी भुजाओं से छह खण्डो को उलट सकता है व उसमें स्थित लोगो को मारने व पालने मे भी समर्थ है।

दस हजार वर्ष की आयु का धारक व्यन्तरदेव उत्कृष्ट रूप से १०० रूपो की और जघन्य रूप से ७ रूपो की विक्रिया कर लेता है और मध्यम रूप से १०० से नीचे-नीचे विविध प्रकार की विक्रिया करता है। बाकी के व्यन्तरवासी देवो मे से प्रत्येक देव अपने-अपने अवधिज्ञानों का जितना क्षेत्र है उतने मात्र क्षेत्र को विक्रिया बल से पूर्ण कर सकते हैं।

सख्यात वर्ष प्रमाण आयु के धारक व्यन्तर देव एक समय मे सख्यात योजन और असंख्यात वर्ष की आयु से युक्त देव असख्यात योजन तक जा सकते हैं।

देवों के शरीर की अवगाहना

किन्नर आदि आठो व्यन्तर देवो में से प्रत्येक की ऊँचाई १० धनुष प्रमाण है। इन देवो के भी जन्म लेने के स्थानो का नाम उपपाद शय्या है। जिस पर जन्म लेकर पुण्य प्रभाव से १६ वर्ष के युवक के समान हो जाते है। अतर्मुहूर्त मे ही शरीर और पर्याप्तिया पूर्ण हो जाती है।

व्यन्तर देवों में जन्म लेने के कारण

जो कुमार्ग मे स्थित है, दूषित आचरण करने वाले है, सम्पत्ति में अत्यन्त रूप से आसक्त हैं, विना इच्छा के विषयो से विरक्त है-अकाम निर्जरा करने वाले है, अग्नि आदि के द्वारा मरण को प्राप्त करते है, सयम लेकर उसे मलिन करते है या विनाश करते है, सम्यक्त्व से शून्य है, पञ्चाग्नि तप आदि करके मद कषायी है, ऐसे कर्म भूमिया मनुष्य या तिर्यंच इन व्यन्तर देवो की पर्याय मे जन्म लेते है। भोग भूमिया जीव भी मरकर भावन, व्यंतर और ज्योतिष्क देवो मे जन्म लेते है।

इस देव पर्याय से च्युत होकर सम्यक्त्व से सहित देव उत्तम मनुष्य पर्याय प्राप्त करते हैं। जो सम्यक्त्व से शून्य ही मरण करते है वे देव कर्म भूमि के मनुष्य या पचेन्द्रिय, सैनी, पर्याप्तक तिर्यंचो में जन्म लेते है। कदाचित् विषयो की अत्यासक्ति के कारण मरने के ६ महीने पहले से विलाप और सताप करते हुए मरकर एकेन्द्रिय पर्याय मे पृथ्वीकायिक, जलकायिक और प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव भी हो जाते है।

इन देवों में सम्यक्त्व उत्पत्ति के कारण

कदाचित् ये देव जातिस्मरण, देव ऋद्धि दर्शन, जिन बिम्ब दर्शन और धर्म श्रवण के निमित्तो से सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेते है।

जातिस्मरणः—कदाचित् इन देवो मे से किसी को जातिस्मरण हो कर कई-कई भवों के पाप, पुण्य, कृत्य स्मृति में आ जाते है, तब ये पाप भीरू होकर पापो की एव मिथ्यात्व की आलोचना करते हुए सम्यक्त्व को ग्रहण कर लेते है।

देव ऋद्धि दर्शनः—कदाचित् कोई देव अपने से महान विभूतियो को अन्यदेवो के पास देखकर अवधिज्ञान से अपने और उसके पाप पुण्य का तोल लगाने लगते है और सोचते है कि मैने मद पुण्य किया है जिससे कि सौधर्म आदि के वैभव से शून्य रहा हू इत्यादि सोचते हुए एव कर्म को मंद करते हुए सम्यक्त्व को ग्रहण करते है।

जिनबिंबदर्शनः—कदाचित् ये देव जिनेन्द्र भगवान के पंचकल्याणको के महोत्सव में आते है या और किन्ही अतिशयशाली जिन महिमा को देखते है अथवा अकृत्रिम चैत्यालयो के दर्शन करते है। तब इन्हे सम्यक्त्व की उत्पत्ति हो जाती है।

धर्मश्रवणः—कदाचित् मध्यलोक में मुनियो से धर्म श्रवण करते है, कदाचित् देवो की सभा मे ही धर्म श्रवण करते है जिसके फलस्वरूप सम्यक्त्व निधि को प्रगट कर लेते है। पुनः सम्यक्त्व के प्रभाव से मरण काल मे सताप और सक्लेश न करते हुए शाति भाव से देव पर्याय से च्युत होकर मनुष्य भव प्राप्त कर लेते है एव सम्यक्त्व के फलस्वरूप सम्यक्चारित्र को ग्रहण करके मोक्ष प्राप्त कर लेते है।

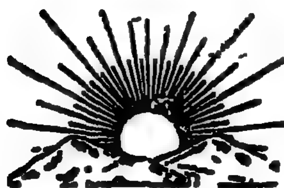
व्यन्तर देवों का विशेष वर्णन

औपपातिक, अध्युषित और अभियोग्य इस प्रकार से व्यन्तर देव तीन प्रकार के होते है। भवन, भवनपुर और आवास ये तीन प्रकार के स्थान व्यन्तरदेवो के माने गये है।

मेरू प्रमाण ऊँचे मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक और अधोलोक मे व्यन्तरदेवो का निवास है। इन व्यन्तरो मे से किन्ही के भवन है, किन्ही के भवन और भवनपुर दोनो है एवं किन्ही के तीनो ही स्थान होते हैं। ये सभी आवास प्राकार से परिवेष्टित बतलाये गये है। सब भवनो के चारो ओर वेदिकाएं मानी गई है जो कि परकोटे के सदृश हैं। ये परकोटे महाभवनो के दो कोस ऊँचे तथा अन्य भवनो के १०० हाथ ऊँचे है।

महाभवनो का विस्तार १२२०० योजन है एव मोटाई ३०० योजन है। अल्पभवनो का विस्तार ३ कोस एव मोटाई भी ३ कोस है। उत्कृष्ट भवन में १०० योजन चौड़ाई वाला एव जघन्य भवनो मे एक कोस मात्र मोटाई वाला कूट है।

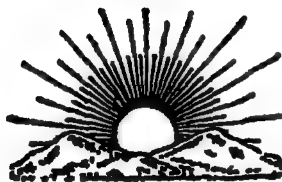
समुद्र मे स्थित द्वीपो मे भवनपुर होते है और तालाव, पर्वत एव वृक्षो के आश्रित आवास होते है। पुरो मे कितने ही गोल,त्रिकोण तथा चतुष्कोण भी होते है। इनमे क्षुद्रपुर एक योजन विस्तीर्ण तथा महापुर एक लाख योजन विस्तीर्ण होते है। ये पुर असंख्यात द्वीप-समुद्रो मे स्थित है। ये रत्नमयी पुर रमणीय, बहुत प्रकार के आकार वाले है। इस प्रकार व्यन्तरवासी देवो के स्थान असख्यात होने से उनमे स्थित जिन मदिर भी असख्यात प्रमाण हैं। उन सभी जिनमदिरो मे एक सौआठ-एक सौ आठ प्रमाण जिन प्रतिमाए विराजमान है और बाकी सभी व्यवस्था भवनवासी देवो के जिनमंदिरों के सदृश ही है। ये व्यतर देव क्रीड़ा प्रिय होने से इस मध्य लोक में यत्र-तत्र शून्य स्थान, वृक्षो की कोटर, श्मसान भूमि आदि मे भी विचरण करते रहते हैं। कदाचित् क्वचित् किसी से पूर्व जन्म का वैर विरोध होने से उसे कष्ट भी दिया करते हैं। किसी पर प्रसन्न होकर उसकी सहायता भी करते हैं। जब सम्यक्दर्शन को ग्रहण कर लेते है तब पापभीरू बनकर धर्मकार्यो मे ही रूचि लेते है ऐसा समझना चाहिए।



भवनवासी देवों में जिनगृह सप्त करोड़ बहत्तर लाख।
भवविजयी की प्रतिमा उनमें नमन करूं हो दुःख विनाश ॥

व्यंतरवासी देवों में व्यतीतसंख्या जिनराज भवन।
मीनपताका विजयी जिनकी प्रतिमा अनुपम करूं नमन ॥

—०—



मध्य लोक

मध्य लोक

लोकाकाश के मध्य में एक राजू चौडा एव एक लाख चालीस योजन ऊँचा मध्यलोक है—इसे तिर्यक् लोक भी कहते हैं। इस तिर्यकलोक में जबू-द्वीप और लवण समुद्र से प्रारम्भ करके असख्याती द्वीप समुद्र हैं जो कि गोलाकार—थाली के आकार वाले है एवं एक-दूसरे को वेष्टित किये हुए हैं।

सबसे पहले बीचो-बीच मे एक लाख योजन विस्तार वाला जबूद्वीप है। इस जम्बू द्वीप को वेष्टित करके चारो तरफ २ लाख योजन विस्तार वाला लवण समुद्र है। इसी तरह आगे-२ द्वीप और समुद्र के क्रम से एक राजू प्रमाण तक असख्याती द्वीप समुद्रो मे अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र है।

एक लाख योजन व्यास वाले जबू द्वीप की परिधि का प्रमाण तीन लाख १६ हजार २२७ योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठाईस धनुष एव कुछ अधिक साढे तेरह अगुल मात्र है। अर्थात् ३१६२२७ योजन, ३ कोस, १२८ धनुष, साधिक १३½ अगुल। एवं क्षेत्रफल ७९० करोड़, ५६ लाख, ९४ हजार, १५० योजन है।

जम्बूद्वीप के परकोटे का वर्णन

इस जम्बूद्वीप को चारो तरफ से वेष्टित करके परकोटे के समान आठ योजन ऊँची जगती कहलाती है। इस जगती का विस्तार (मोटाई) मूल से १२ योजन, मध्य मे आठ और शिखर पर ४ योजन है। यह जगती मध्य मे बहुत प्रकार के रत्नो से निर्मित और शिखर पर वैडूर्य मणियो से परिपूर्ण है।

इस जगती के मूल प्रदेश में पूर्व-पश्चिम की ओर सात-सात गुफाये हैं, जो उत्कृष्ट तोरणो से रमणीय, अनादि निधन एवं अत्यत विचित्र है। इन १४ गुफाओ से ही आगे कही जाने वाली १४ नदिया लवण समुद्र में प्रवेश करती है। इस जगती के चार योजन प्रमाण वाले ऊपरले भाग पर ठीक बीच मे दिव्य सुवर्णमय वेदिका है। यह दो कोस ऊँची, पाच सौ धनुप प्रमाण चौडी है। जगती का ऊपर का विस्तार ४ योजन कहा गया है। १ योजन मे ४ कोस और १ कोस के २००० धनुष होने से जगती का विस्तार ३२००० धनुष हुआ। इसमे से वेदी के विस्तार को घटा कर दो का भाग देने से वेदिका के दोनो पाश्वं भागो मे जगती का प्रमाण निकल आता है।

$$\frac{३२०००-५००}{२} = १५७५० \text{ धनुष}$$

इस प्रकार से वेदी के दोनो पाश्वं भागो मे १५७५० धनुष प्रमाण विस्तृत जगती पर उत्तम वापियो से सयुक्त, विचित्रमणिमय गृहो से परिपूर्ण रमणीय, उपवनो के समूह है। इनमे उत्कृष्ट बावडियो का विस्तार दो सौ धनुष,मध्यम का एकसौ पचास धनुष और जघन्य का सौ धनुष प्रमाण है। तीनो ही तरह की बावडिया अपने-अपने विस्तार के दसवे भाग गहरी, कैरव-श्वेत कमल, लालकमल, एव नील कमलो की सुगन्धि से व्याप्त है।

वेदी के अभ्यन्तर भाग मे प्राकार से वेष्टित, उत्तम गोपुरद्वार व तोरणो से रमणीय ऐसे महोरग जाति के व्यन्तर देवो के भवन स्थित है। इन देवो के नगरो में विविध प्रकार की रचनाओ से युक्त, उत्तमोत्तम रत्नो से निर्मित, अभ्यन्तर भाग मे चैत्यतरूओ से सहित,चारों ओर प्रदीप्त रत्न दीपको से सुशोभित, धूपघटो से युक्त, वज्रमय कपाट, वेदी एव गोपुर द्वारो से सहित, रमणीय प्रासाद है। इनमें से उत्कृष्ट प्रासाद-महल दो सौ पचीस धनुष ऊँचे, तीन सौ धनुष लम्बे और एक सौ पचास धनुष चौडे है। जघन्य प्रासादो की ऊँचाई ७५ धनुष, लम्बाई १०० धनुष और चौडाई ५० धनुष प्रमाण है।

उत्कृष्ट महलो के द्वारो की ऊँचाई ३६ धनुष एव चौडाई १८ धनुष है तथा जघन्य महलोके द्वारो की ऊँचाई १२ धनुष व चौडाई ६ धनुष है।

इन व्यन्तरो के नगरो मे सामान्यगृह, चित्रगृह, कदलीगृह, गर्भगृह, लतागृह, नादगृह और आसनगृह ये रम्य आकार वाले गृह विशेष होते है। मडनशाला, मैथुनशाला, ओलगशाला, वदनशाला, अभिषेकशाला और नृत्य-शाला ऐसी रत्नो से निर्मित शालाए होती है। इन रमणीय प्रासादो मे हाथी, सिंह, शुक, मयूर, मगर, व्याल, गरूड और हस के आकार वाले आसन रखे हुए है। महलो मे उत्तम रत्नो से निर्मित, मृदुल स्पर्श वाले और दोनो पार्श्व भाग मे स्थित तकियो से युक्त सुन्दर शय्याए शोभायमान है। सुवर्ण के समान निर्लेप, निर्मल कान्ति के धारक सुगन्धमय निःश्वास से युक्त उत्तमोत्तम विविध प्रकार के भूषणो को धारण करने वाले, सिर पर सूर्य मण्डल के समान मुकुट के धारक, रोग एव वृद्धावस्था से रहित, प्रत्येक दस धनुष की अवगाहना वाले व्यन्तर देव उन नगरो में स्वच्छद क्रीडा करते रहते है। व्यन्तर देवो के सभी भवनो मे भव्य जिन मन्दिर शोभायमान रहते है ऐसे ये अकृत्रिम व्यन्तर नगर हैं।

जम्बूद्वीप के मुख्य चार द्वारों का वर्णन

जम्बूद्वीप की चारो दिशाओं में विजय, वैजयत, जयत और अपराजित इन नामो से प्रसिद्ध चार द्वार हैं।

पूर्व दिशा मे विजय द्वार, दक्षिण मे वैजयन्त, पश्चिम में जयन्त और उत्तर दिशा मे अपराजित द्वार है। इन प्रत्येक द्वारो की ऊँचाई आठ योजन एव चौडाई ४ योजन प्रमाण है। उत्कृष्ट वज्रमय कपाटो से युक्त चित्र-विचित्र रत्नो की मालाओ से सुन्दर ये चारो द्वार व्यन्तर देवो से सदैव रक्षित हैं। प्रत्येक द्वार के उपरिम भाग में सतरह तलो से युक्त, अनेक उत्तम बरामदो से सुशोभित, प्रदीप्त रत्नदीपको से सहित अनेक प्रकार की उत्तम पुत्तलिकाओ से युक्त खम्भो वाले, फहराती हुई ध्वजा पताकाओ से युक्त, विविध प्रकार के दृश्यो से रमणीय, उत्तुग रत्न शिखरो से सयुक्त, चारो तरफ नाना प्रकार के स्पष्ट रूपो से युक्त, देवो व अप्सराओ से सेवित

और पट्टांशुक आदि से शोभायमान द्वार प्रासाद है । गोपुर द्वारो पर सिहासन, तीन छत्र, भामण्डल और चामरादिक से रमणीय रत्नमय जिन प्रतिमाए शोभायमान होती है ।

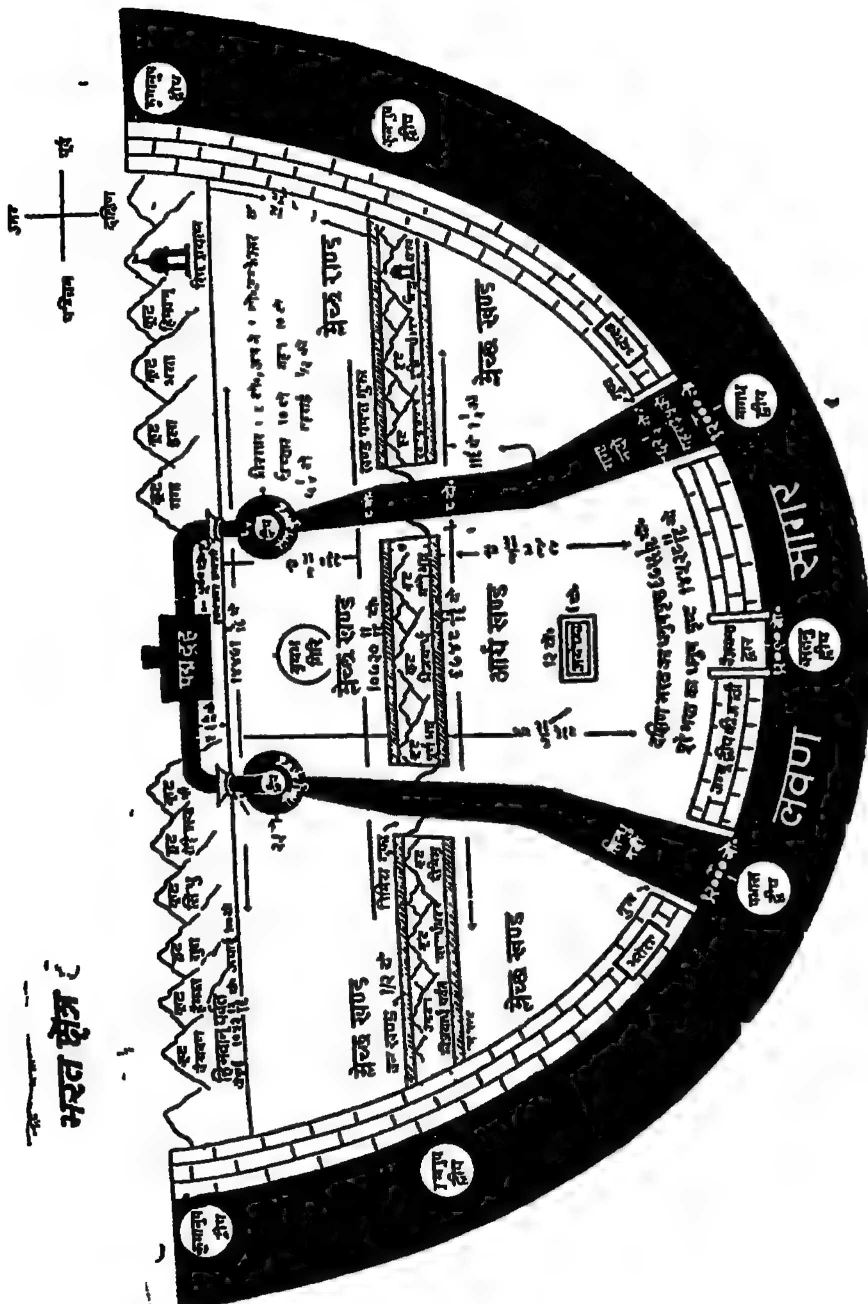
द्वारों के अधिपति व्यंतर देवों का वर्णन

इन द्वारो के अधिपति व्यन्तर देव है । द्वारो के जो नाम है वे ही नाम रक्षा के निमित्त से इन देवो के भी है । इन देवो की आयु एक पल्य प्रमाण है एव इनके शरीर की ऊँचाई दस धनुष प्रमाण है । ये दिव्य निर्मल मुकुट के धारक और हजारो देवियो से सहित है ।

विजय देव के नगर का वर्णन

द्वार के ऊपर आकाश मे बारह हजार योजन लम्बा और इससे आधे विस्तार वाला विजय देव का नगर है । उसमे चार गोपुरो से सयुक्त सुवर्णमयी तट वेदी है, जो मार्ग व अट्टालिकाओ से सुन्दर और द्वारो के ऊपर स्थित जिनपुरो से रमणीय है । इस नगर मे नाना प्रकार के रत्नो और सुवर्णो से निर्मित, समचतुरस्र, दीर्घ और अनेक आकृतियों से शोभायमान, विचित्र प्रासाद है जो कि कुदपुष्प, चन्द्रमा एव शख के समान धवल, मरकत मणियो जैसे वर्ण वाले, सुवर्ण के सदृश, उत्तम पद्म राग मणियो के समान व बहुत से अन्य विचित्र वर्णो वाले है । इनमे ओलगशाला, मत्रशाला, भूषणशाला, अभिषेकशाला, उत्पत्तिशाला, मैथुनशाला आदि रत्नमयी विशाल शालाए शोभायमान है । वे सब भवन वनसमूहो से सुशोभित, रमणीय प्रदीप्त रत्न दीपको से युक्त, श्रेष्ठ धूप घटो से सयुक्त सात, आठ, नौ, दस इत्यादि विचित्र खण्डो से विभूषित, विशाल, फहराती हुई ध्वजा पताकाओ से सहित और अकृत्रिम होते हुए अच्छी तरह शोभायमान है ।

ये भवन नाना प्रकार के स्पर्श, रस, वर्ण, उत्तम ध्वनि एव गन्ध से सदृशता को प्राप्त उज्ज्वल एव विचित्र बहुत प्रकार के शयन तथा आसनो के समूह से परिपूर्ण है । इस नगर मे बहुत प्रकार के परिवार से परिपूर्ण विजय देव अपनी देवियो से युक्त होकर सर्वदा उपचार सुखो को भोगता है ।


भरत क्षेत्र
पद्म द्रह
आर्य खण्ड
म्लेच्छ खण्ड
लवण
सागर

इसी प्रकार अन्य दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा के द्वारो के उपरिम भाग पर आकाश में जिन भवनो से युक्त उन्ही-उन्ही देवो के रमणीय उत्तम नगर है।

जगती के अभ्यन्तर भाग मे पृथ्वी तल पर दो कोस विस्तार से युक्त और उत्तम वृक्षो के समूह से परिपूर्ण वन समूह शोभायमान है। ये वन समूह शीतल छाया से युक्त, उत्तम सुगन्वित पुष्पो से परिपूर्ण, दिव्य सुगन्ध से सुगधित देव एव विद्याधर युगलो के चित्त को हरने वाले है।

सुवर्ण एव उत्तमोत्तम रत्नो के समूह से निर्मित उस उद्यान की दिव्य वेदिका (परकोटा) दो कोस ऊँची एव पाँच सौ धनुप प्रमाण चौड़ी है। यहाँ तक जम्बूद्वीप के परकोटे का वर्णन समाप्त हुआ।

छह कुलाचल और सात क्षेत्र

जबू द्वीप मे छह पर्वत है जो कि पूर्व पश्चिम लम्बे है। इन पर्वतो से इस जबू द्वीप मे ७ क्षेत्र हो गए है।

पर्वतो के नाम—हिमवन्, महाहिमवन्, निषध, नील, रूक्मि और शिखरी।

पर्वतो से विभाजित ७ क्षेत्रो के नाम—भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत। एव ऐरावत इनमे दक्षिण दिशा से प्रारभ करके भरत क्षेत्र, हिमवन् पर्वत, हैमवत क्षेत्र, महाहिमवन् पर्वत आदि क्रम से है।

ये छहो पर्वत मूल मे व ऊपर समान विस्तार वाले है और पूर्व पश्चिम मे समुद्रो से सलग्न है। इन पर्वतो पर क्रमश पद्म, महापद्म, तिगिछ केसरी, पुडरीक, महापुडरीक नाम के छह सरोवर स्थित है। जिनमे श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नामक देवियाँ निवास करती है। इन छह पर्वतो के पद्म, महाह्रद्म आदि सरोवरो से १४ नदियाँ निकली है जो कि वे क्रमश एक-एक क्षेत्र में दो-दो बहती है। उन नदियो के नाम—गगा, सिन्धु, रोहित, रोहितास्या, हरित, हरिकाता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकाता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला और रक्ता रक्तोदा।

छ पर्वतो की ऊँचाई—क्रमश: सौ योजन, दो सौ योजन, चार सौ योजन पुन: चार सौ, दो सौ और सौ योजन प्रमाण है। इन पर्वतों के वर्ण क्रमश सुवर्ण, चादी, तपाये हुए स्वर्ण, वैडूर्यमणि, रजत और सुवर्ण के समान वर्ण वाले हैं।

क्षेत्र एवं पर्वतों के विस्तार का प्रमाण

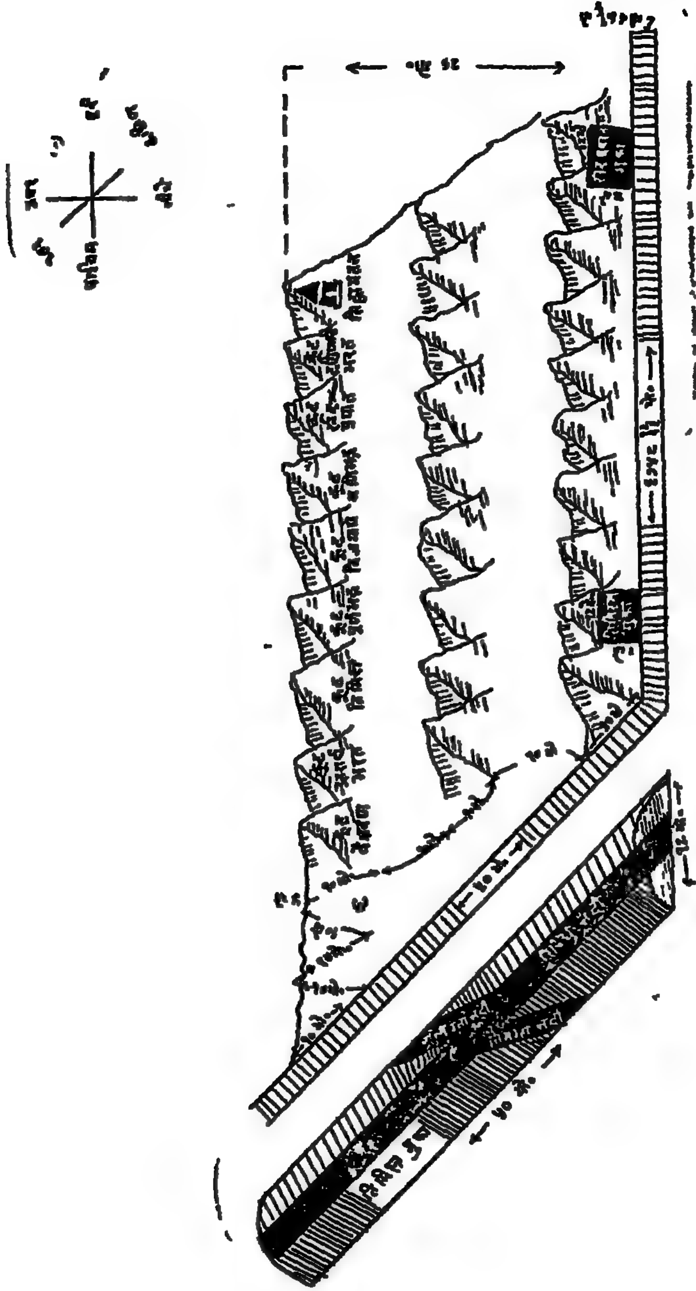
जबूद्वीप के विस्तार प्रमाण मे एक सौ नव्वे का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना भरत क्षेत्र का विस्तार समझना चाहिए। यथा—१००००० ÷ १९० = ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन। इसके आगे-आगे के पर्वत, क्षेत्र आदि विदेह पर्यंत दूने-दूने होते गए है। जैसे—भरत क्षेत्र ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन। हिमवन् पर्वत १०५२$\frac{१२}{१९}$ यो०, हैमवत क्षेत्र २१०५$\frac{५}{१९}$ यो०, महाहिमवन् पर्वत ४२१०$\frac{१०}{१९}$ यो०, हरिक्षेत्र ८४२१$\frac{१}{१९}$ यो० निषध पर्वत १६८४२$\frac{२}{१९}$ यो० विदेह क्षेत्र ३३६८४ $\frac{४}{१९}$ योजन है। इसके आगे के पर्वत और क्षेत्र आधे-आधे होते गए हैं।

भरत क्षेत्र

विजयार्ध पर्वत का वर्णन

इस भरत क्षेत्र के बिल्कुल मध्य भाग में रजतमय, नाना प्रकार के उत्तम रत्नो से रमणीय "विजयार्ध" नाम का उन्नत पर्वत स्थित है। यह पर्वत पच्चीस योजन ऊँचा, पचास योजन प्रमाण मूल मे विस्तार से युक्त, ऊँचाई के चतुर्थ भाग प्रमाण नीव से सहित, पूर्व-पश्चिम समुद्र को स्पर्श करने वाला और तीन श्रेणियो मे विभक्त कहा गया है।

विजयार्ध की ऊँचाई २५ यो०, मूल विस्तार ५० यो० एव नीव ६$\frac{१}{४}$ यो०। दस योजन ऊपर जाकर उस पर्वत के दोनो पार्श्व भागो मे दस योजन विस्तार से युक्त विद्याधरो की एक-एक श्रेणी है। विजयार्ध के आयाम—लम्बाई प्रमाण विद्याधरो की श्रेणियाँ है तथा नाना प्रकार के तोरणो से शोभायमान दोनो तरफ एक-एक वेदी (ऊँची दीवाल सदृश) है। इस विजयार्ध पर पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर दक्षिण दिशा की श्रेणी में पचास



विजयार्द्धपर्वत

और उत्तर श्रेणी में साठ नगर स्थित है। ये एक-एक नगर हिन्दुस्तान से भी कई गुने बडे समझना चाहिए।

उन नगरो के नाम—किनामित, किन्नरगीत, वहुकेतु, पुडरीक, सिह-ध्वज, श्वेतकेतु, गरुडध्वज, श्रीप्रभ आदि सुन्दर-सुन्दर नाम वाले ११०नगर हैं। जो कि विजयार्ध की लम्बाई मे पक्ति से स्थित है।

विद्याधरो के ये श्रेष्ठ नगर अनादिनिधन, स्वभाव सिद्ध अनेक प्रकार रत्नमय तथा गोपुर, प्रासाद और तोरणादि से सहित हैं। इन नगरो में उद्यान वनो से सयुक्त, पुष्करिणी, कूप एव वापिकाओ से सहित और फह-राती हुई ध्वजा, पताकाओं से सुशोभित रत्नमय प्रासाद है। इन पुरो में रमणीय उत्तम रत्न और सुवर्णमय नाना प्रकार के जिन मन्दिर स्थान-स्थान पर शोभायमान है।

इन नगरो के वाहरी विशाल प्रदेश प्रफुल्लित कमल वनों वाले और वापी समूहो से युक्त उद्यान वनो से मडित हैं। कल्हार, कमल, कुवलय और कुमुदो से उज्ज्वल जलप्रवाह से परिपूर्ण वहुत से दिव्य तालाव है। जुवार, तुवर, तिल, जौ, गेहूं और उडद इत्यादि धान्यो से परिपूर्ण खेत शोभित होते हैं। ये नगर वहुत से दिव्य ग्रामो से सहित, दिव्य महा पट्टनो से रमणीय कर्वट, द्रोणमुख, सवाह और मटवों से परिपूर्ण, पद्म-रागादिक रत्नो की खानो से सुशोभित धन धान्य की वृद्धि से रमणीय दिव्य मनुष्यो से परि-पूर्ण हैं।

इन नगरो मे रहने वाले उत्तम विद्याधर मनुष्य कामदेव के समान वहुत प्रकार की विद्याओ से सयुक्त हमेशा ही छह कर्मों से सहित है। इन विद्याधरो की स्त्रियाँ अप्सराओ के सदृश, दिव्य लावण्य से रमणीय और वहुत प्रकार की विद्याओ से समृद्ध है।

यहा के मनुष्य अनेक प्रकार की कुलविद्या, जातिविद्या और साधित विद्याओ के प्रसाद से हमेशा ही अनेक प्रकार के सुख का अनुभव करते रहते हैं। ये सभी विद्याधर नगर अनेक उद्यानो से विभूषित जिन भवनो से युक्त हैं। इनका सम्पूर्ण-तया वर्णन के लिए कौन समर्थ हो सकता है?

इन विद्याधरो के आगे दस योजन ऊपर जाकर विजयार्ध पर्वत के दोनो ही पार्श्व भागो मे दस योजन विस्तार वाली आभियोग्य देवो की श्रेणिया है। ये श्रेणियाँ उत्कृष्ट कल्प-वृक्षो से रमणीय, सुवर्णमय वेदिका (ऊँची दीवाल के परकोटे सदृश) से सहित, उत्कृष्ट गोपुरो से सुन्दर, फलित उपवनो से परिपूर्ण, प्रचुर वापी एव तालाबो से सहित, उत्तम अप्सराओ की क्रीडाओ से युक्त, बहुत से मणिमय भवनो से परिपूर्ण, परिखा एव प्राकार से वेष्टित है। इन दक्षिण-उत्तर श्रेणियो मे उत्तम दिव्य रूप के धारी सौधर्म इन्द्र के वाहन जाति के व्यन्तर देव रहते है।

इन आभियोग्य पुरो से पाँच योजन ऊपर जाकर दस योजन विस्तार वाला विजयार्ध पर्वत का उत्तम शिखर है।

यह शिखर इन्द्र धनुष के सदृश, विशाल व उत्तम वेदिकाओ (परकोटे सदृश दीवालो) से वेष्टित, बहुत तोरण द्वारो से सयुक्त और विचित्र रत्नो से रमणीय है। वहाँ पर स्फुरायमान उत्तम रत्नो के किरण समूहो से युक्त सम भूमि भाग मे सुवर्ण और मणियो से मडित दिव्य नौ कूट स्थित है। इन कूटो मे पूर्व दिशा के क्रम से सबसे प्रथम सिद्धकूट, पुन. भरतकूट, खण्डप्रपात, माणिभद्र, विजयार्धकुमार, पूर्णभद्र, तिमिश्रगुह, उत्तर भरत-कूट और पश्चिम दिशा के अन्त मे वैश्रवण कूट है। इन कूटो की ऊँचाई सवा छह योजन और मूल मे विस्तार भी सवा छह योजन है। मध्य मे कूटो का विस्तार ४ योजन, $\frac{3}{4}$ कोस तथा शिखर के पास मे विस्तार ३ योजन $\frac{1}{2}$ कोस प्रमाण है।

सिद्धकूट पर स्थित जिन मंदिर

प्रथम सिद्धकूट पर विचित्र ध्वजा समूहो से शोभायमान जिनेन्द्र भवन तथा उत्तम सुवर्ण और रत्नो से निर्मित तोरणो से युक्त विमान भी स्थित है। इस जिन भवन की लम्बाई एक कोस, चौडाई आधा कोस और ऊँचाई पौन कोस प्रमाण है। यह जिन भवन सुवर्णमय तीन प्राकारो से

वेष्टित, गोपुरो से सयुक्त, उत्तम वज्र, नील, विद्रुम, मरकत और वैडूर्य-मणियो से निर्मित, लटकती हुई रत्नमालाओ से युक्त, नाना प्रकार के फूलो के उपहार से शोभायमान, गोशीर, मलय चदन, कालागुरु और धूप की गध से व्याप्त, उत्कृष्ट वज्र कपाटो से युक्त, बहुत प्रकार के द्वारो से सुशोभित विशाल और उत्तम मानस्तम्भो से सहित एव अनुपम है। झारी, कलश, दर्पण, चामर, घण्टा, छत्रत्रय आदि मगल द्रव्यो मे, विचित्र उत्तम वस्त्रो से, नाग, पुनाग, चपक, अशोक और बकुल आदि वृक्षो से परिपूर्ण विविध प्रकार के उपवनो से शोभायमान है। स्वच्छ जल से परिपूर्ण कमल और नील कमलो से अलंकृत भूमि भागो से युक्त, मणिमय सोपान पक्तियो से शोभा-यमान ऐसी पुष्करिणियो से यह जिनभवन रमणीय दिखता है। इस जिन भवन मे अष्ट महामगल द्रव्यो से परिपूर्ण, सिहासन आदि मे सहित, हाथ मे चामरो को लिए हुए नागयक्षो के युगलो मे युक्त, ऐसी जिनेन्द्र प्रतिमाए विराजमान हैं।

झारी, कलश, दर्पण, ध्वजा, छत्र, चामर और सुप्रतिष्ठ (ठोना) इन आठ मगल द्रव्यो मे मे प्रत्येक वहाँ एक सौ आठ-एक सौ आठ है।

जो स्मरण मात्र से ही भव्य जीवो के सम्पूर्ण पापो को नष्ट करती है और शाश्वत ऋद्धियो से युक्त है, ऐसी इन जिन प्रतिमाओ का जितना भी वर्णन किया जावे थोडा ही है। इन मन्दिरो मे स्थित सुन्दर जिन मूर्तियो का जो भव्य जीव निर्मल चित्त होकर भक्ति से ध्यान करते है वे अपने भावो के अनुसार नाना प्रकार के अभ्युदयो को प्राप्त कर अनत सुख स्वरूप मोक्ष को भी प्राप्त कर लेते है।

भरतादि आठ कूटो पर व्यन्तर देवो के उत्तम रत्न और सुवर्ण से निर्मित वेदी एव गोपुर द्वारो से शोभित, उद्यानो से युक्त, मणिमय शय्या और आसनो से परिपूर्ण, फहराती हुई ध्वजा पताकाओ से सुशोभित और अनेक वर्ण वाले देवो के भवन है। ये व्यन्तर देवो के प्रासाद बहुत से देव-देवियो से सहित हैं। ये एक कोस लम्बे, आधा कोस चौडे तथा पौन कोस

ऊँचे प्रमाण वाले है।

भरत कूट पर	—	भरत नामक देव
खडप्रपात ,,	—	नृत्यमाल देव
माणिभद्र ,,	—	माणिभद्र देव
विजयार्ध कूट पर	—	विजयार्ध कुमार देव
पूर्णभद्र ,,	—	पूर्णभद्र देव
तिमिश्र ,,	—	कृतमाल देव
उत्तर भरत ,,	—	भरत देव
वैश्रवण ,,	—	वैश्रवण देव

क्रमश इन आठ कूटो पर उनके अधिपति देवो का निवास है। ये सभी देव दस धनुष ऊँची अवगाहना वाले हैं और एक पल्य प्रमाण आयु से युक्त हैं।

इस विजयार्ध पर्वत के भूमि तल पर दोनो पार्श्व भागो मे दो कोस विस्तीर्ण और पर्वत के बराबर लबे वनखण्ड है। इन वनो की वेदिकायें—दीवाले दो कोस ऊँची और पाँच सौ धनुष प्रमाण विस्तार वाली है एव तोरण द्वारो से सहित है। ये वेदिकाये मार्ग एव अट्टालिकाओ से सुन्दर नाना प्रकार के लाखो यत्रो से व्याप्त, विविध प्रकार के उत्तम रत्नो से खचित और अनुपम शोभा को धारण करने वाली है। इन सब उपवनो में प्राकार और गोपुरो से युक्त तथा जिन भवनो से भूषित, व्यन्तर देवों के विशाल, उत्कृष्ट नगर है।

इस विजयार्ध पर्वत मे पचास योजन लम्बी, आठ योजन ऊँची और बारह योजन विस्तार से युक्त दो गुफाए है। इनमे से पूर्व में तिमिश्र गुफा और पश्चिम में खण्ड प्रपात गुफा है। ये दोनो गुफाए वज्रमय कपाटो से युक्त और अनादि निधन हैं। दोनो ही गुफाओ में द्वारो के दिव्य युगल कपाटो में से प्रत्येक कपाट छह योजन विस्तीर्ण और आठ योजन ऊँचे है।

दक्षिण-उत्तर भरत का प्रमाण

विजयार्ध पर्वत का मूल में विस्तार पचास योजन है। इसको भरत क्षेत्र के विस्तार मे से कम करके शेप का आधा दक्षिण भरत एव उत्तर भरत का विस्तार होता है। दक्षिण भरत का विस्तार दो सौ अडतीस योजन और एक योजन के उन्नीस भागो मे से तीन भाग प्रमाण है। इसी के सदृश विस्तार वाला उत्तर भरत है। यथा—

$(५२६\frac{६}{१९}—५०)\div२=२३८\frac{३}{१९}$ यो०।

हिमवन् पर्वत का वर्णन

भरत क्षेत्र के विस्तार से दूने विस्तार वाला हिमवन् पर्वत है यह सौ योजन ऊँचा है एव सुवर्णमयी है। हिमवन् पर्वत की ऊँचाई १०० यो०, चौडाई १०५२ $\frac{१२}{१९}$ यो०, लम्बाई पूर्व-पश्चिम लवणसमुद्र तक एव वर्ण—सुवर्णमय है।

भूमितल पर हिमवन् पर्वत के सदृश लम्बी उसकी दो तट वेदिया है ये वेदियाँ दो कोस ऊँची और पाच सौ धनुप प्रमाण विस्तार से युक्त है। इस पर्वत के दोनों पार्श्व भागो मे अर्ध योजन प्रमाण विस्तार से युक्त वन खण्ड है तथा पूर्वोक्त वेदियो के समान बहुत तोरण द्वारो से सयुक्त वेदी है।

इस हिमवन् पर्वत के शिखर पर चारो तरफ पद्मराग मणिमय दिव्य वेदिका है। वन, भवन और वेदी आदि का सब वर्णन पूर्वोक्त ही है।

हिमवान् पर्वत के ११ कूटो का वर्णन

पर्वत पर पूर्व दिशा से लेकर क्रमश सिद्धकूट, हिमवान् कूट, भरत, इला, गगा, श्री, रोहितास्या, सिन्धु, सुरा, हैमवत और वैश्रवण ये ११ कूट है।

इनमे से प्रत्येक कूट की ऊँचाई और मूल मे विस्तार पच्चीस योजन है। ऊपर का विस्तार १२$\frac{१}{२}$ योजन है। और मध्य मे विस्तार १८ योजन ३ कोस है। ये ११ कूट समान गोल, वेदियो से रमणीय और व्यन्तरो के भवनो से रमणीय हैं एव पूर्व दिशा के सिद्धकूट पर जिनभवन है।

जिनभवन का वर्णन

इस जिन भवन की लम्बाई ५० यो०, चौडाई २५ यो०, और ऊँचाई ३७½ यो० है। जिन भवन मे तीन द्वार है। पूर्व मुख द्वार की ऊँचाई ८ यो०, विस्तार एव प्रवेश ४ योजन है शेष दो द्वारो की ऊँचाई व चौडाई इससे आधी है। यथा—

पूर्व मुख द्वार	—	ऊँचाई ८ योजन।	विस्तार ४ यो०।
दक्षिण-उत्तर मुख द्वार—		„ ४ योजन।	„ २ योजन।

जिन भवन मे १ देवच्छद है जिसकी लम्बाई ८ यो०, ऊँचाई ४ यो० एव चौडाई २ योजन है।

वहा पर सिंहासन आदि से सहित, हाथ मे चामरो को लिए हुए नाग-यक्ष युगलो से सयुक्त एव एक सौ आठ धनुष प्रमाण ऊँची उत्कृष्ट जिन प्रतिमाए विराजमान है। देवच्छद के भीतर जिन प्रतिमाओ के आजू-बाजू श्रीदेवी श्रुतदेवी, तथा सर्वाण्ह और सनत्कुमार यक्षो की मूर्तिया एव आठ मगल द्रव्य स्थित है। वहाँ पर सुन्दर चदोवे शोभायमान है जिसमे पुष्प-मालाए लटकती रहती है एव जो मयूर, कबूतर आदि के कण्ठ के सदृश एव मरकत, मूगा जैसे वर्ण वाले है। प्रत्येक जिन भवन के द्वार के आगे भेरी, मृदग, मर्दल, जयघटा, कास्यताल, तिवली, पटुपटह, शख, काहल और देव-दुदभि बाजों के शब्दो से गम्भीर ऐसे दिव्य मुख मडप है। इन मडपो का विस्तार २५ यो०, लम्बाई ५० यो०, एव ऊँचाई ८ योजन प्रमाण है। इन मडपो के आगे अभिषेक, गीत और अवलोकन के मडप है। इन जिन भवनो मे चार गोपुर, तीन प्राकार, वीथियो मे मानस्तम्भ, नौ स्तूप, वनभूमि, ध्वज भूमि और चैत्यभूमि होती है। सब गोपुर द्वार पाच वर्ण के रत्नो से निर्मित पुत्तलीयुक्त, तोरणों से युक्त, और अनेक प्रकार के मत्तवारण-छज्जो से रमणीय है। ये गोपुर द्वार बहुतसी शालभजिका—पुत्तलियो एव मधुर शब्द करने वाले कोकिल मयूर आदि पक्षियो से सहित लहराती हुई ध्वजा-पताकाओ से सयुक्त है।

वहाँ के उद्यान वनों मे इलायची, तमालवल्ली, लौग, ककोल, केला इत्यादि नाना वृक्ष शोभायमान है। इन वगीचो मे कल्हार, कदल, कमल, नीलकमल और कुमुद के फूलों से व्याप्त पुष्करिणी, वापी और उत्तम कूप है। चारो वनो के मध्य में स्थित तीन मेखला युक्त नदादिक वापिकाए हैं, तीन पीठो से सहित, धर्मचक्र और चैत्य वृक्ष शोभित हैं।

शेष कूटों का वर्णन

हैमवत्, भरत, हिमवान् और वैश्रवण नाम के कूटो पर अपने-अपने कूटो के नाम वाले देव तथा शेष कूटो पर अपने-अपने कूटो के नाम वाली देवियाँ रहती है। यथा—

सिद्धकूट	—	जिन भवन
हिमवान्	—	हिमवान् देव का भवन।
भरत	—	भरत देव
हैमवत	—	हैमवत देव
वैश्रवण	—	वैश्रवण देव
इला	—	इला देवी
गगा	—	गगा देवी
श्री कूट	—	श्री देवी
रोहितास्याकूट	—	रोहितास्या देवी
सिन्धु कूट	—	सिन्धु देवी
सुरा कूट	—	सुरा देवी

इन कूटो पर वहुत से परिवार देवो से सहित जो देव-देविया स्थित है वे सौधर्म इद्र के परिवार स्वरूप है। इन देव-देवियो के शरीर की अवगाहना दस धनुष प्रमाण है। इन व्यन्तर देव देवियो के भवन रत्नमय है। भवनो का विस्तार ३१ यो० १ कोस और ऊंचाई ६२ योजन २ कोस प्रमाण है।

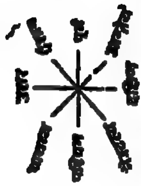
दस कूटो के शिखरो पर प्राकार, बलभी-छज्जा, गोपुर और धवल निर्मल वेदिकाओ से व्याप्त देवो के नगर है। ये नगर लहराती हुई ध्वजा पताकाओ से सहित, गोपुर द्वारो से शोभित, विशाल एव उत्तम वज्रमय कपाटो से युक्त,उपवन,पुष्करिणी एव वापिकाओ से रमणीय है। इन नगरो मे से कितने ही नगर तुषार,चन्द्र किरण एव हार के सदृश, कितने ही विकसित चपक जैसे वर्ण वाले, कितने ही नील व रक्त कमल के सदृश वर्ण वाले है।

ये नगर वज्रमणि, इन्द्रनील मणि, मरकत मणि, कर्केतन और पद्म-राग मणियो से परिपूर्ण तथा जिन भवनो से सनाथ है– सहित है।

पद्म सरोवर का वर्णन

इस हिमवन् पर्वत के मध्य मे पूर्व-पश्चिम से एक हजार यो० लवा पाच सौ योजन चौडा एक सरोवर है जिसे पद्मद्रह कहते है। यह सरोवर दस योजन गहरा और चार तोरण द्वार एव वेदिकाओ से सयुक्त है। इस सरोवर मे एक योजन ऊँचाई व विस्तार वाला, जल से आधा योजन ऊँचा और एक कोस विस्तृत कर्णिका से युक्त कमल है यह कमल पृथ्वी कायिक है। इसके ऊपर रत्नमय भवन मे श्री देवी का निवास है। श्री देवी के गृह के परिवार स्वरूप वहाँ एक लाख चालीस हजार एक सौ पन्द्रह अन्य कमल है। इस पद्म सरोवर के ईशान कोण मे "वैश्रवण" नामक कूट, आग्नेय दिशा मे 'श्री निचय कूट' नैऋत भाग मे 'क्षुद्र हिमवान्' कूट और वायव्य कोण में 'ऐरावत' नाम का कूट है तथा इस सरोवर के उत्तर भाग मे 'श्री सचय' नामका कूट है। इन पाच कूटो से हिमवान् पर्वत 'पचशिखरी' इस नाम से सयुक्त है।

नाना प्रकार के रत्नो से निर्मित ये सब कूट उपवन वेदियो से सहित और व्यन्तरो के नगरो से रमणीय है। पद्म सरोवर के जल मे उत्तर दिशा की ओर से प्रदक्षिणा के रूप मे जिनकूट, श्री निचय, वैडूर्य, अकमय, आश्चर्य, रूचक, शिखरी और उत्पल ये कूट उसके जल मे तट वेदियो और वन वेदियो से सहित होते हुए व्यन्तर नगरो से शोभायमान है।



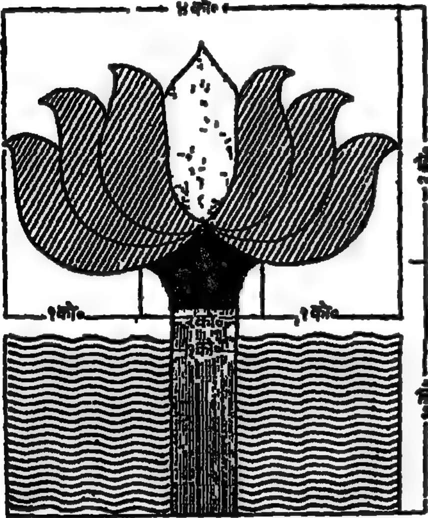
पद्म द्रह

इन कूटो में से प्रत्येक कूट की ऊँचाई २५ योजन है एव ऊपर की चौडाई १२½ यो० है। अर्थात् ये कूट २५ योजन ऊँचे, मूल मे चोडे २५ यो०, मध्य मे चौडे १८¾ यो० और ऊपर में चौडे १२½ योजन है।

कमल का वर्णन

इस तालाब के मध्य मे व्यालीस कोस ऊँचा, एक कोस मोटा कमल का नाल है इसका मृणाल रजतमय है और तीन कोस मोटाई वाला है।

पद्मद्रहका मध्यवर्ती कमल



इस कमल का कद, अरिष्ट रत्नमय और नाल वैडूर्य मणि से निर्मित है। इसके ऊपर चार कोस ऊँचा किंचित् विकसित पद्म है। कणिका की ऊँचाई और लम्वाई दो-दो कोस मात्र है। इस कमल मे ११ हजार दल है इस कणिका के ऊपर वैडूर्य मणिमय कपाटो से सहित और उत्तम स्फटिक मणि से निर्मित कूटागारो मे श्रेष्ठ भवन है। इस भवनकी लम्वाई १ कोस, विस्तार ½ कोस और ऊँचाई पौन कोस है।

इस भवन मे श्री देवी निवास करती है इस देवी की आयु एक पल्योपम एव शरीर दस धनुष ऊँचा है।

श्री देवी के सामानिक, आत्मरक्ष, तीनो प्रकार के पारिषद, अनीक प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषक जाति के देव है। विविध प्रकार के अजन और भूषणो से शोभित तथा सुप्रशस्त एव विशालकाय वाले वे सामानिक देव चार हजार प्रमाण है।

आत्मरक्ष देव चारो ही दिशाओ मे चार-चार हजार होनें से कुल १६००० है। अभ्यन्तर पारिषद देव ३२०००, मध्यम पारिषद ४००००,

एव वाह्य परिपद देव ४८००० हैं। हाथी, घोडा, महारथ, वैल, गन्धर्व, नर्तक और दास इनकी सात सेनायें हैं। इनमें से प्रत्येक सात कक्षाओं से सहित हैं। प्रथम अनीक का प्रमाण सामानिक देवो के सदृश ४००० है। शेप छह सेनाओ मे से प्रत्येक का प्रमाण दूना-दूना है। ये निर्मल शक्ति से सयुक्त देव हाथी आदि के शरीरों की विक्रिया करते हैं एव माया, लोभ आदि से रहित होकर नित्य ही श्री देवी की सेवा करते हैं। उत्तम रूप व विनय से संयुक्त और वहुत प्रकार के उत्तम परिवार से सहित ऐसे एक सौ आठ प्रतीहार, मत्री एव दूत है। अन्य पद्मो पर स्थित वहुत से प्रकीर्णक देव है।

अर्थात्—

श्री देवी के सामानिक	४०००
„ आत्मरक्ष	१६०००
„ अभ्यन्तर परिपद	३२०००
„ मध्यम „	४००००
„ वाह्य „	४८०००

और भी अनीक, प्रकीर्णक आदि मिला करके इन देवो के कमल १४०११६ हैं। मूल श्री देवी के कमल से सामानिक देवो के कमल ईशान, उत्तर और वायव्य दिशा मे हैं। आत्मरक्ष देव ४-४ हजार पूर्व आदि चार दिशाओ मे है।

आग्नेय दिशा मे अभ्यन्तर पारिपद देवो के कमल हैं, दक्षिण दिशा में मध्यम पारिपद देवो के कमल हैं एव वाह्य परिपद देवो के कमल नैऋत दिशा मे हैं।

सात अनीक देवो के सात कमल पद्मद्रह के पश्चिम प्रदेश मे है। प्रतीहार आदि के १०८ कमल मध्य कमल की दिशा-विदिशाओ मे हैं। इन सभी कमलो पर सुन्दर भवन वने हुए हैं। अत इन भवनों (महानगरो) का प्रमाण भी १४०११६ है। इनके अतिरिक्त क्षुद्र भवनो की गणना करने के लिए कौन समर्थ है ? पद्म सरोवरो में सभी उत्तम गृह पूर्वाभिमुख है और शेप क्षुद्र गृह यथा योग्य उनके सन्मुख स्थित है।

जिन मन्दिरों का वर्णन

इन कमल पुष्पों पर जितने भवन कहे गए हैं उतने ही वहाँ पर विविध प्रकार के रत्नो से निर्मित जिनगृह भी है। ये जिनभवन नाना प्रकार के तोरण द्वारो से सहित भारी, कलश, दर्पण, घटा एव ध्वजा आदिको से परिपूर्ण है। इनमे उत्तम चामर, छत्र, सिहासन, भामडल, पुष्पवृष्टि आदि से सयुक्त जिन प्रतिमाए विराजमान है।

गंगा, नदी का वर्णन

पद्म सरोवर की पूर्व दिशा से गगा एव पश्चिम दिशा से सिन्धु नदी निकलती है।

उद्गम स्थान मे गगा नदी का विस्तार छह योजन एक कोस है इस नदी के निर्गमन स्थान मे नौ योजन डेढ कोस ऊँचा दिव्य तोरण है।

इस तोरण द्वार पर चामर, घटा, किंकणी और सैकडों वदनमालाओ से शोभित, भारी, कलश, दर्पण तथा पूजा द्रव्यो से रमणीय, रत्नमय स्तभो पर नियोजित विचित्र और पुत्तलिकाओ से सुन्दर वज्र, इद्रनील, मरकत, कर्केतन एव पद्मराग मणियो से युक्त, चन्द्रकात, सूर्यकान्त प्रमुख मणियो की किरणो से अधकार को नष्ट करने वाली जिन प्रतिमाए विराजमान है। ये प्रतिमाए अकृत्रिम, अनुपम, छत्रत्रय आदि विभूतियो से सहित उत्तम रत्नमय, प्रकाशमान किरण समूहो से युक्त एवं विद्याधरो से पूजित है। इस तोरण पर सम भूभाग मे विविध प्रकार के रत्न एव सुवर्ण से निर्मित, वज्रमय कपाटो से सहित, चार तोरण व वेदिकाओ से सयुक्त प्रासाद है। इन भवनो मे वहुत परिवार से युक्त, निर्मल लावण्य रूप को प्राप्त दिक्कन्या देवियाँ निवास करती हैं।

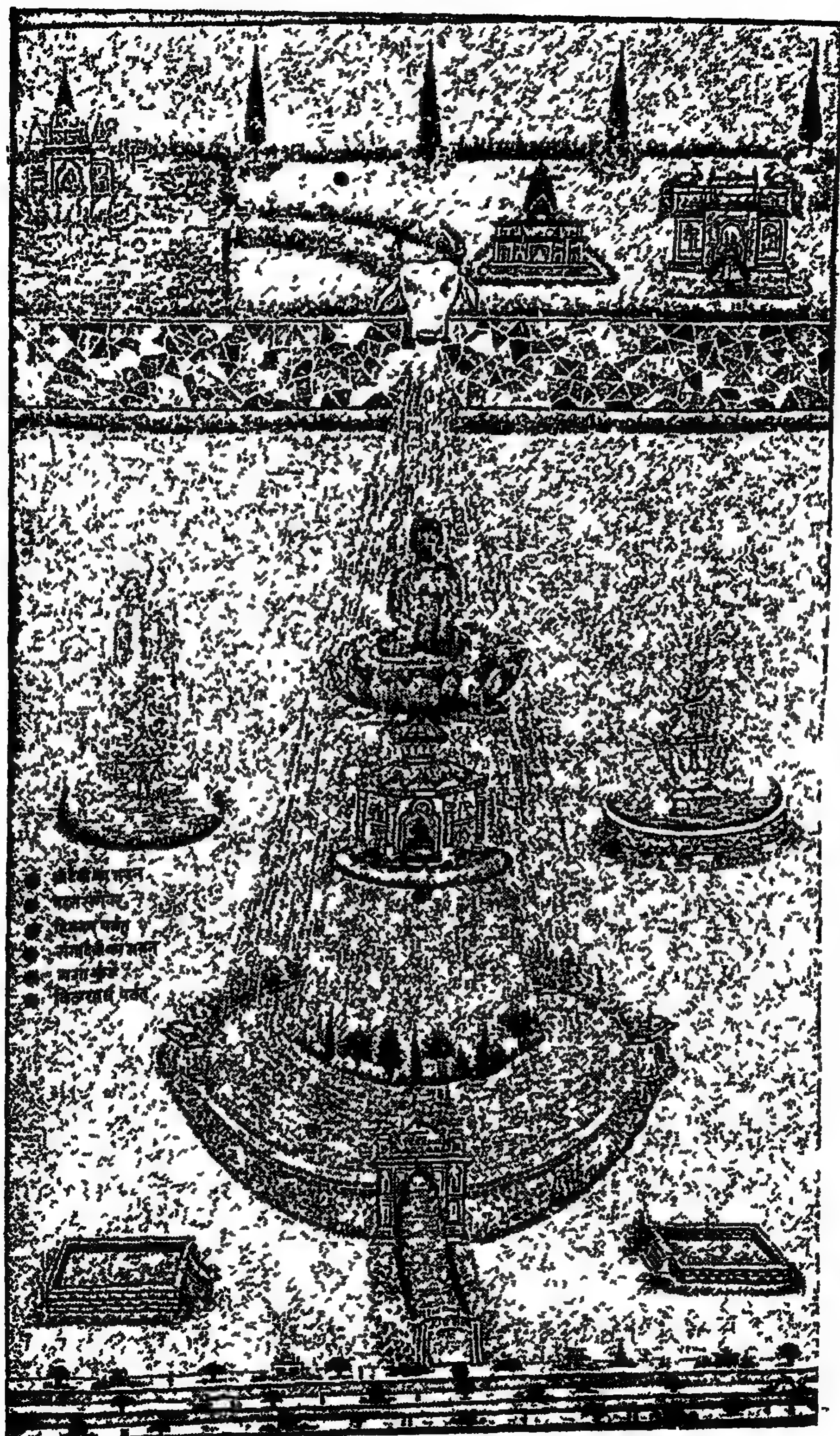
पद्मद्रह से पूर्व दिशा मे थोड़ी-सी दूर पर गगा नदी के बीच में एक मणिमय कूट है। यह मणिमय कूट विकसित कमल के आकार रमणीय, वैडूर्यमणि नाल से युक्त है। इसके पत्ते अत्यन्त लाल है और प्रत्येक पत्र का विस्तार $\frac{1}{2}$ कोस मात्र है। पानी से ऊपर इस कूट की ऊँचाई एक कोस

और विस्तार दो कोस है, यह सुवर्णमय पराग से संयुक्त है। इस कमलाकार कूट की रत्नमय कर्णिका एक कोस ऊँची और इतने ही विस्तार से युक्त है। इसके ऊपर मणिमय दिव्य भवन स्थित है। उस भवन में 'बला' इस नाम से विख्यात, बहुत परिवार से युक्त व्यन्तर देवी निवास करती है। इसकी आयु एक पल्य प्रमाण है।

इस प्रकार से यह गंगा नदी पद्म सरोवर से इसी पर्वत पर पांच सौ योजन आगे जाकर और गंगा कूट तक न पहुंच कर उससे आधा यो० पहले ही दक्षिण की ओर मुड़ जाती है। और ५२३ ६/१९ योजन प्रमाण पर्वत पर दक्षिण में आकर गंगा नदी पर्वत के तट पर स्थित जिह्विका को प्राप्त होती है। इस जिह्विका—नाली का विस्तार ६ यो० एक कोस, लम्बाई दो कोस और मोटाई भी दो कोस है। यह नाली वृषभाकार है। सींग, मुख, कान, जिह्वा और भृकुटी आदि से गाय के सदृश होने से इस नाली को गोमुख या वृषभाकार भी कहते हैं, यह रत्नमयी है। पर्वत के अंत में इस मणिमय उत्तम कूट के मुख में प्रवेश कर चन्द्रमा के समान धवल और दस योजन विस्तार वाली गंगा की धारा नीचे गिरती है। यह गंगा नदी पृथ्वी पर पर्वत को पच्चीस योजन छोड़ कर गंगा कुण्ड में गिरती है।

गंगा कुण्ड का वर्णन

हिमवान् पर्वत के नीचे पृथ्वी पर साठ योजन विस्तृत, समवृत्त, दस योजन गहरा, मणिमय सीढ़ियों से युक्त एक कुण्ड है। यह कुण्ड चार तोरण और वेदिका से युक्त है। इसके बहुमध्य भाग में रत्नों से विचित्र, चार तोरण एवं वेदिकाओं से शोभायमान एक द्वीप है। यह द्वीप जल के मध्य में दस योजन है, आठ योजन विस्तृत है तथा जल से ऊपर दो कोस ऊँचा है। इस द्वीप के मध्य में एक वज्रमय शैल—पर्वत स्थित है। इसका विस्तार मूल में ४ योजन, मध्य में २ योजन एवं ऊपर १ योजन है। यह पर्वत दस योजन ऊंचा और चार तोरण एवं वेदिकाओं से शोभायमान है। इस पर्वत पर बीचोंबीच में उत्तम रत्न एवं सुवर्ण से निर्मित, 'गंगा कूट' इस



नाम से प्रसिद्ध एक दिव्य प्रासाद है। यह प्रासाद भी चार तोरणो से युक्त, उत्तम वेदी से वेष्टित, अतिविचित्र, हजारो यत्रो से शोभित और अनुपम है। इसका प्रमाण मूल में ३ हजार, मध्य मे २ हजार और ऊपर १ हजार धनुष प्रमाण विस्तार से युक्त है एव यह २ हजार धनुष ऊँचा है। अत यह भवन कूट के सदृश दिखता है। इस भवन का अभ्यन्तर विस्तार सात सौ पचास धनुष है। इस भवन का द्वार चालीस धनुष विस्तृत एव अस्सी धनुष ऊँचा है। यह द्वार मणिमय तोरणो से शोभायमान नाना प्रकार के रत्नो की प्रभा से नित्य ही प्रकाशमान है। उत्तम वेदी से वेष्टित चार गोपुर एव मदिर से सुशोभित, रमणीय उद्यान से युक्त उस भवन में स्वय गगा देवी रहती है। इस भवन के ऊपर कूट पर किरण समूह से सपूर्ण दिशाओ को प्रकाशित करने वाली शाश्वतऋद्धि को प्राप्त ऐसी जिनेन्द्र प्रतिमा विराजमान है। वह जिनेन्द्र प्रतिमा जटा मुकुट के शेखर से युक्त है। इस प्रतिमा के ऊपर वह गगा नदी मानो मन में अभिषेक की भावना को रख कर गिरती है। यह जिनेन्द्र की प्रतिमा फूले हुए कमलासन पर विराजमान है और कमल के सदृश वर्ण वाली है। जो भव्य जीव इनका स्मरण करते हैं उन्हे निर्वाण प्रदान करने वाली है।

गंगा नदी के आगे बढ़ने का वर्णन

गगा नदी इस कुण्ड के दक्षिण तोरण द्वार से निकलकर भूमि प्रदेश में मुडती हुई विजयार्ध पर्वत को प्राप्त हुई है। गगा नदी के दोनो ही तट-वेदियो पर स्थित वन खड अत्रुटित रूप से विजयार्ध पर्वत तक चले गये है। गगा तटवेदी सम्बन्धी ये वनखड उत्तम वज्रमय कपाटो के सवरण और प्रवेश भाग को छोड़कर शेष गुफा के भीतर है। विजयार्ध की गुफा में प्रवेश करने के स्थान पर गगा नदी का विस्तार ८ यो० प्रमाण हो जाता है।

विजयार्ध पर्वत की गुफा में २५ योजन जाने पर उन्मग्ना और निमग्ना ये दो नदियाँ पूर्व-पश्चिम से आई हुई हैं। उन्मग्ना नदी का स्वभाव है कि वह अपने जल प्रवाह में गिरे हुए भारी से भारी द्रव्य को ऊपर ले

आती है एव निमग्ना नदी हल्के से हल्के द्रव्य को नीचे ले जाती है।

ये दोनों नदियां पर्वतीय गुफा कुण्डो के मणिमय तोरण द्वारो से निकलकर रत्न से निर्मित एक प्रकार के पुल से विभक्त, वन वेदी से वेष्टित प्रत्येक दो योजन प्रमाण विस्तार से सहित गगा नदी के प्रवाह में प्रवेश करती है।

यह गंगानदी पचास योजन प्रमाण गुफा मे जाकर इसके दक्षिण द्वार से निकलती है और ११९$\frac{३}{१९}$ योजन दक्षिण भरत मे आती है और पूर्व की ओर मुडकर चौदह हजार प्रमाण परिवार नदियो से युक्त होती हुई अत में मागध तीर्थ पर पूर्व समुद्र मे प्रवेश करती है। गगा नदी की ये कुण्डो से उत्पन्न हुई परिवार नदियाँ ढाई म्लेच्छ खडो में ही है, आर्य खड में नही है। लवण समुद्र मे प्रवेश करते समय गगा नदी का विस्तार ६२½ योजन और गहराई ५ योजन प्रमाण हो जाती है।

जबूद्वीप की वेदी के पास नदी के प्रवेश स्थान पर उत्तमोत्तम रत्नो से खचित और खम्भो पर स्थित पुत्तलिकाओ से युक्त दिव्य तोरण है। इस तोरण की ऊँचाई ९३ यो० ३ कोस एव चौड़ाई ६२½ योजन प्रमाण है। इन तोरणो पर भी तीन छत्र आदि से सहित, शाश्वत, स्मरण मात्र से ही पाप को नष्ट करने वाली, जिनेन्द्र प्रतिमाए स्थित है। इन उत्कृष्ट तोरणो के ऊपर चार तोरण और वेदी से युक्त वज्रमय कपाटो से रमणीय रत्न एव सुवर्णमय भवन है। इन भवनो मे नाना प्रकार के परिवार से युक्त दिक्कुमारी नामक व्यन्तर देवियाँ निवास करती है।

सिन्धु नदी का वर्णन

पद्म सरोवर के पश्चिम द्वार से सिन्धु नदी निकलती है। पर्वत पर ही थोडी दूर चल कर नदी के बीच मे विकसित कमल सदृश वैडूर्य मणिमय नाल से युक्त एक उत्तम कूट है इसका सारा वर्णन पूर्ववत् है इस भवन मे "लवणा" नामकी देवी रहती है। इसमें भी तोरण द्वार, सिन्धु कूट,

आदि का वर्णन गगा नदी के तुल्य ही समझना चाहिए, अतर इतना ही है कि सिन्धु कूट मे सिन्धु देवी का निवास है और यह नदी पश्चिम समुद्र में प्रभास तीर्थ के ऊपर गिरती है।

छह खंड का विभाजन

गगा-सिन्धु नदी और विजयार्ध पर्वत से भरत क्षेत्र के छह खड हो गए है अतः उत्तर और दक्षिण भरत क्षेत्र मे से प्रत्येक के तीन–तीन खण्ड है। इनमें से दक्षिण भरत के तीन खडो मे से मध्य का आर्य खड है। शेष पाँचो ही खड म्लेच्छ खड के नाम से प्रसिद्ध है।

वृषभाचल का वर्णन

उत्तर भरत के तीन खडो मे से मध्यम खड के बीचो-बीच में चक्रवर्तियो के मान का मर्दन करने वाला अनेक चक्रवर्तियो के नामो से व्याप्त रत्नो से निर्मित ऐसा वृषभाचल पर्वत है। यह पर्वत सौ योजन ऊँचा, मूल में सौ योजन विस्तृत, मध्य मे पचहत्तर योजन एव शिखर पर पचास योजन प्रमाण है। इसके मूल में, मध्य में और ऊपर में वेदी तथा वन खण्ड स्थित है। इस पर्वत के शिखर पर चार तोरणो से सहित, पुष्करिणी एव कूपो से परिपूर्ण, वज्र, इन्द्र नील, मरकत, कर्केतन और पद्मराग इन मणि विशेषो से निर्मित, विचित्र रचनाओ से मनोहर आकृति को धारण करने वाले, देदीप्यमान रत्नो के दीपको से सयुक्त ऐसे उत्तम भवन है। इन भवनो में उत्तम रत्न एव सुवर्ण से निर्मित विविध प्रकार के सुन्दर आकारो वाले जिन भवन स्थित है इनका सब वर्णन पहले के ही समान है।

पर्वत के उपरिम भवन मे विविध प्रकार के परिवार से सहित और 'वृषभ' इस नाम से प्रसिद्ध व्यन्तर देव अनेक प्रकार के सुखो का उपभोग करते हुए निवास करता है। यह देव सर्वांग सुन्दर है, दस धनुष प्रमाण शरीर की ऊँचाई एव एक पल्य की आयु से युक्त है।

दक्षिण भरत के मध्य भाग के खड का नाम आर्य खड है इसके बीचों वीच मे 'अयोध्या' नगरी है। इस आर्य खड में ही तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि महापुरुष जन्म लेते है। आज की उपलब्ध दुनियाँ इसी आर्य खड मे ही है। इसमें षट्काल से परिवर्तन होता रहता है। इस समय पचम काल चल रहा है इसका विस्तृत वर्णन आगे किया जाएगा। यहाँ तक षट्खड युक्त भरत क्षेत्र एवं हिमवन् पर्वत का वर्णन पूर्ण हुआ है।

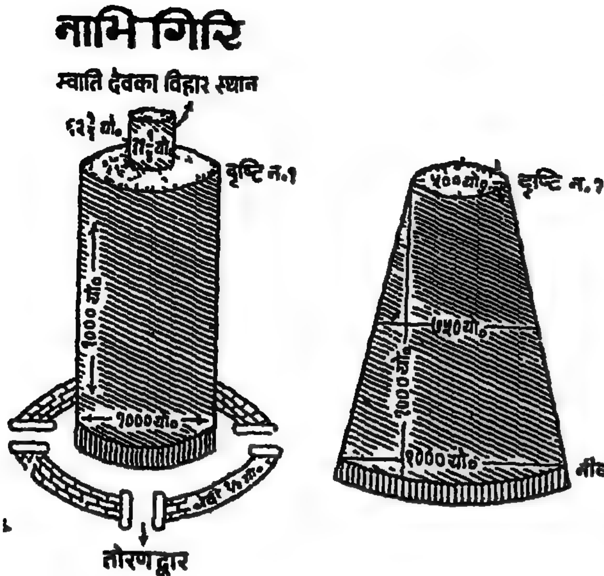
हैमवत क्षेत्र

हैमवत् क्षेत्र का विस्तार हिमवान् पर्वत से दूना अर्थात् २१०५$\frac{५}{१९}$ योजन (८४२१०५२$\frac{१२}{१९}$ मील) प्रमाण है।

शब्दवान् वृत्तवैताढ्य

इस क्षेत्र के बिल्कुल बीचोबीच मे एक हजार योजन ऊँचा एव इतना ही विस्तार वाला सदृश गोल 'शब्दवान्' नामका नाभिगिरि स्थित है।

इस पर्वत का भूमि मे विस्तार १००० योजन, मध्य विस्तार ७५० यो० और ऊपरी भाग का विस्तार ५०० योजन प्रमाण है इस पर्वत की परिधि ३१६२ योजन प्रमाण है। यह पर्वत मूल और उपरिम भागो मे वेदी एव उपवनो से सयुक्त है। वेदी और उपवनो का विस्तार हिमवान् पर्वत के सदृश है अर्थात् भूमि तल पर पर्वत के चारो तरफ २ कोस ऊँची, ५०० धनुष विस्तार से युक्त वेदी है। पर्वत के चारो तरफ अर्ध योजन प्रमाण विस्तार से युक्त वनखड हैं। इस पर्वत के शिखर पर चारो तरफ पद्मराग मणिमय दिव्य वेदिका है। वन, भवन और वेदी का वर्णन पूर्ववत् ही है। इस पर्वत की वन वेदी बहुत तोरण द्वारो से सयुक्त, विचित्र रत्नमयी मार्ग व अट्टालिकाओ से सहित, लहराती हुई अनेक ध्वजा पताकाओ से सुन्दर है। इस



पर्वत के ऊपर मध्य भाग में अनेक तोरण व वेदियो से युक्त, सुन्दर प्रतिमाओ से सहित दिव्य जिन भवन है एव जिन भवन के चारो तरफ रत्नमय प्रासाद है। ये प्रासाद सात, आठ तलो से शोभित है। वहा पर दस धनुष ऊँची अवगाहना का धारक 'शाली' नामक व्यन्तर देव वहुत से परिवार से युक्त होकर रहता है। इस व्यन्तर देव की आयु एक पल्य प्रमाण है। कोई आचार्य नाभिगिरि को मध्य और ऊपर में घटता हुआ न मानकर सर्वत्र १००० योजन ही मानते है। उपरोक्त दृष्टि न० १ व दृष्टि न० २ से स्पष्ट है।

रोहितास्या नदी का वर्णन

हिमवान् पर्वत के पद्म सरोवर के उत्तर भाग से रोहितास्या नामक नदी निकलकर दो सौ छियत्तर योजन से कुछ अधिक दूर तक पर्वत के ऊपर जाती है। इस नदी का विस्तार, तोरणो के अन्तर, कूट, प्रणालिका स्थान, धारा का विस्तार, कुण्ड, द्वीप, अचल और कूट का विस्तार, तोरण द्वार मे तोरण स्तम्भ इन सवका वर्णन गगा नदी के सदृश ही है। विशेष यह है कि यहा पर इन सवका विस्तार गगा नदी की अपेक्षा दूना है। हिमवान् पर्वत की उत्तर दिशा मे तल भाग मे अर्थात् हैमवत क्षेत्र मे पूर्ववत् कुण्ड है उसमे द्वीप, पर्वत और रोहितास्या देवी का भवन है। उस भवन की छत पर जटा जूट सहित अनादिनिधन प्रतिमा विराजमान है उस पर रोहितास्या नदी की धार अभिषेक करते हुए के समान पडती है पुन कुड के उत्तर तोरण द्वार से निकल कर आगे बढती हुई 'वृत्तवैताढ्य-नाभिगिरि'

पर्वत से दो कोस पूर्व ही पश्चिम की ओर मुड जाती है। इसके पश्चात् फिर उत्तराभिमुख होकर कुटिल रूप से आगे जाती है और पर्वत के मध्य प्रदेश को अपना मध्य प्रदेश करके २८ हजार परिवार नदियो से युक्त होती हुई पश्चिम की ओर चली जाती है और जम्बूद्वीप की जगती की गुफा में होकर लवण समुद्र मे प्रवेश करती है।

महाहिमवन् पर्वत का वर्णन

महाहिमवन् पर्वत का विस्तार भरत क्षेत्र से अठगुणा है अर्थात् ४२१० $\frac{१०}{१९}$ यो० (१६८४२१०५ $\frac{५}{१९}$ मील) है। इस पर्वत की ऊँचाई २०० यो० (८०००००मील) है यह पर्वत चाँदी के सदृश है। इस महाहिमवान् पर्वत के दोनो पार्श्व भागो में रमणीय वेदी और वन हैं।

इनकी लम्बाई इसी पर्वत के बराबर है एव विस्तार आदि हिमवान् पर्वत के समान है। इस पर्वत के ऊपर पूर्व दिशा के क्रम से सिद्धकूट, महाहिमवान्, हैमवत्, रोहित, ह्री, हरिकात, हरिवर्ष और वैडूर्य ये आठ कूट है। हिमवान् पर्वत के कूटो से इन कूटो की ऊँचाई और विस्तार आदि सब दुगुना–दुगुना है। जिन नामो के ये कूट है, उन्ही नाम वाले व्यन्तर देव एव देवी उन कूटो पर रहते हैं। ये सभी देव-देवियाँ अनुपम रूप युक्त शरीर के धारक बहुत से परिवार देवो से युक्त हैं।

महापद्म सरोवर

महाहिमवन् पर्वत पर महापद्म नामका सरोवर है जो १००० यो० चौडा, २००० योजन लम्बा और २० योजन गहरा है। इसके मध्य मे जो कमल है वह पद्म सरोवर के कमल से दूना है अर्थात् ८ कोस का है। इस कमल के ऊपर स्थित प्रासाद मे बहुत परिवार से युक्त तथा श्री देवी के सदृश वर्णनीय गुणो से परिपूर्ण 'ह्री' देवी निवास करती है इस ह्री देवी के परिवार और कमलो की सख्या श्री देवी से दूनी है यथा–२८०२३२ परिवार कमल है। इस तालाब में जितने प्रासाद हैं उनमें उतने ही रमणीय जिन भवन भी है।

महापद्म सरोवर के कूट

इस सरोवर के ईशान दिशा में वैश्रवण नाम का कूट, दक्षिण दिशा मे श्री निचय कूट, नैऋत्य दिशा में महाहिमवान् कूट, वायव्य दिशा में ऐरावत कूट और उत्तर दिशा में श्री सचय कूट स्थित है। इन पच कूटों से महाहिमवान् पर्वत भी 'पचशिखरी' कहलाता है ये सव कूट व्यन्तर नगरों से परम रमणीय और उपवन वेदियो से सयुक्त है। तालाव के उत्तर पार्श्व भाग में जल मे जिन कूट है।

श्री निचय, वैडूर्य, अकमय, आश्चर्य, रूचक, उत्पल और शिखरी ये कूट जल मे प्रदक्षिण रूप से स्थित हैं।

रोहित् नदी

इस सरोवर के दक्षिण तोरण द्वार से प्रचुर जल से सयुक्त रोहित् नदी निकलती है और पर्वत पर एक हजार छः सौ पाच यो०, अर्थात् १६०५$\frac{५}{१९}$ यो०, प्रमाण दक्षिण की ओर आती है। यह नदी भी गगा नदी के समान कुंड पर स्थित 'रोहित देवी' के भवन पर जिन प्रतिमा का अभिपेक कराते हुए के समान गिरती है एव कुड के दक्षिण तोरण द्वार मे निकल कर हैमवत क्षेत्र मे 'नाभिगिरि' को प्रदक्षिणा करती हुई पूर्वाभिमुख होकर आगे जाती है। इस प्रकार यह रोहित् नदी उस हैमवत क्षेत्र के वहुमध्य भाग से जवूद्वीप की वेदी की विल-गुफा मे जाकर अट्टाईस हजार परिवार नदियो से सहित समुद्र में प्रवेश करती है।

इस हैमवत क्षेत्र मे जघन्य भोग भूमि की व्यवस्था है जो कि शाश्वत है। आगे पट्काल के परिवर्तन में भोग भूमियो का वर्णन किया जाएगा।

हरिक्षेत्र एवं निषध पर्वत का वर्णन

हरिवर्ष क्षेत्र का विस्तार महाहिमवान् से दूना है अर्थात् ८४२१$\frac{१}{१९}$ योजन, ३३६८४२१०$\frac{१०}{१९}$ मील है। इस क्षेत्र में मध्यम भोग भूमि की व्यवस्था है। यह क्षेत्र हानि वृद्धि से रहित एक सदृश ही रहता है। इस क्षेत्र के विल्कुल

बीच मे 'विजयवान्' नाम का नाभिगिरि स्थित है, उसका वर्णन 'शब्दवान्' नाभिगिरि के सदृश है। यहा पर सर्व दिव्य वर्णन से सयुक्त चारण देव रहते है। महापद्म सरोवर के उत्तर भाग सबधि तोरण द्वार से हरिकान्ता नदी निकल कर पर्वत के ऊपर से जाती है। यह नदी एक हजार छह सौ पाच योजन अर्थात् १६०५ ५/१९ योजन प्रमाण पर्वत के ऊपर आकर नाली के द्वारा कुड मे गिरती है। पश्चात् वह नदी दो कोस से नाभिगिरि को छोडकर उसकी प्रदक्षिणा करते हुए के समान पश्चिम की ओर जाती है। यह नदी छप्पन हजार परिवार नदियो के साथ जबूद्वीप की वेदिका की गुफा मे होती हुई पश्चिम समुद्र मे प्रवेश करती है। विशेषता यह है कि जहा कुड मे यह नदी गिरती है वहा पर कुड मे स्थित पर्वत पर हरिकान्ता देवी का महल है। बाकी वर्णन पूर्ववत् है। कुड का विस्तार आदि प्रमाण रोहित् नदी की अपेक्षा दूना है।

निषध पर्वत

निषध पर्वत का विस्तार १६८४२ १/१९ योजन ६७३६८४२१ १/१९ मील है। इसकी ऊचाई चार सौ योजन एव वर्ण तपाए हुए स्वर्ण के समान है। इस पर्वत के दोनो पार्श्व भागो मे वहुत प्रकार के उत्तम वृक्षो से सहित, तोता, कोयल, मयूर आदि पक्षियो से युक्त रमणीय वन खण्ड है। ये सब वनखड पर्वत की लम्बाई के समान लम्बे, उत्तम वापी एव कूपो से सयुक्त है इनका सभी वर्णन पहले के समान है।

निषध पर्वत के कूटों का वर्णन

निषध पर्वत के ऊपर पूर्व दिशा के क्रम से सिद्धकूट, निषध, हरि-वर्ष, विदेह, हरि, विजय, सीतोदा, अपरविदेह और रूचक ये नौ कूट स्थित है। इन कूटो की ऊचाई आदि सब हिमवान् पर्वत के कूटो से चौगुणी है। विशेषता केवल यह है कि कूटो पर स्थित भवन हिमवान् पर्वत सबधी भवनो के सदृश है, सिद्धकूट पर स्थित जिन चैत्यालय भी पूर्ववत् है। जिस नाम के धारक ये कूट हैं उसी नाम के धारक व्यतर देव

उन कूटो पर निवास करते है। ये देव बहुत परिवारों से युक्त एक पल्य प्रमाण आयु वाले और दस धनुष ऊँचे है।

तिगिंछ सरोवर

निषध पर्वत के मध्य भाग मे पद्म सरोवर की अपेक्षा चौगुने विस्तार आदि से सहित और 'तिगिंछ' नाम से प्रसिद्ध एक दिव्य सरोवर है इस सरोवर की लम्बाई ४००० यो०, चौडाई २००० यो०, और गहराई ४० योजन की है।

कमल का वर्णन

इस सरोवर मे जो मुख्य कमल है वह चार योजन का है। इस कमल के भवन पर 'धृति देवी' निवास करती है। इस देवी के परिवार कमलो की सख्या 'ह्री देवी' के परिवार कमलो से दूनी है। धृति देवी के ५६०४६४ परिवार कमल है। धृति देवी की आयु एक पल्य प्रमाण है। नाना प्रकार के रत्नो से भूषित शरीर वाली, अतिरमणीय है और व्यतर-वासिनी है। उस सरोवर मे जितने पद्म गृह हैं, उतने ही जिन भवन है, जो कि भव्यजनों को आनदित करने वाले है एव किन्नर देवो के युगलो से सकीर्ण है।

सरोवर सम्बन्धी कूटों का वर्णन

तिगिंछ सरोवर की ईशान दिशा मे मनोहर वैश्रवण कूट दक्षिण दिशा मे श्री निचय, नैऋत्य दिशा मे निषध कूट, वायव्य दिशा मे ऐरावत और उत्तर दिशा मे श्री सचय नाम का कूट है। इन कूटो से पर्वत 'पचशिखरी' नाम से प्रसिद्ध है। ये कूट उत्तम वेदिकाओ से सहित और व्यतर नगरोसे अतिशय रमणीय है। ऊपर पार्श्व भाग मे जल मे जिनकूट है।

इस सरोवर के जल मे श्री निचय, वैडूर्य, अकमय अवरीक, रुचक, शिखरी और उत्पल कूट स्थित है।

हरित् नदी

तिगिंछ सरोवर के दक्षिण द्वार से निकल कर यह हरित नदी ७३२१ $\frac{१}{१९}$ यो० तक पर्वत पर आती है पश्चात् गोमुखाकर प्रणालिका द्वार

से नीचे गिरती है। यहा पर भी पर्वत की तलहटी मे गिरने के स्थान मे कुंड है उस पर पूर्वोक्त भवन के ऊपर जिन प्रतिमा स्थित है। इस जिनेन्द्र प्रतिमा का अभिषेक करते हुए के समान यह हरित् नदी गिरती है पुन: कुंड के दक्षिण तोरण द्वार से निकल कर नाभिगिरि—वृत्त वैताड्य को दूर से ही छोडकर प्रदक्षिणा के आकार से होती हुई हरिवर्ष क्षेत्र मे वहती हुई पूर्व की ओर चली जाती है। यह नदी छप्पन हजार परिवार नदियो से युक्त और नील पर्वत के दक्षिण भागो मे होती हुई जम्बूद्वीप की जगती के बिल में प्रवेश करती हुई पूर्व लवण समुद्र मे प्रवेश करती है। इस हरित् नदी का विस्तार व गहराई आदि हरिकान्ता नदी के सदृश है।

इन जघन्य, मध्यम भोग भूमियो के नदी-सरोवर आदिक स्थान जलचर जीवो से रहित होते हैं।

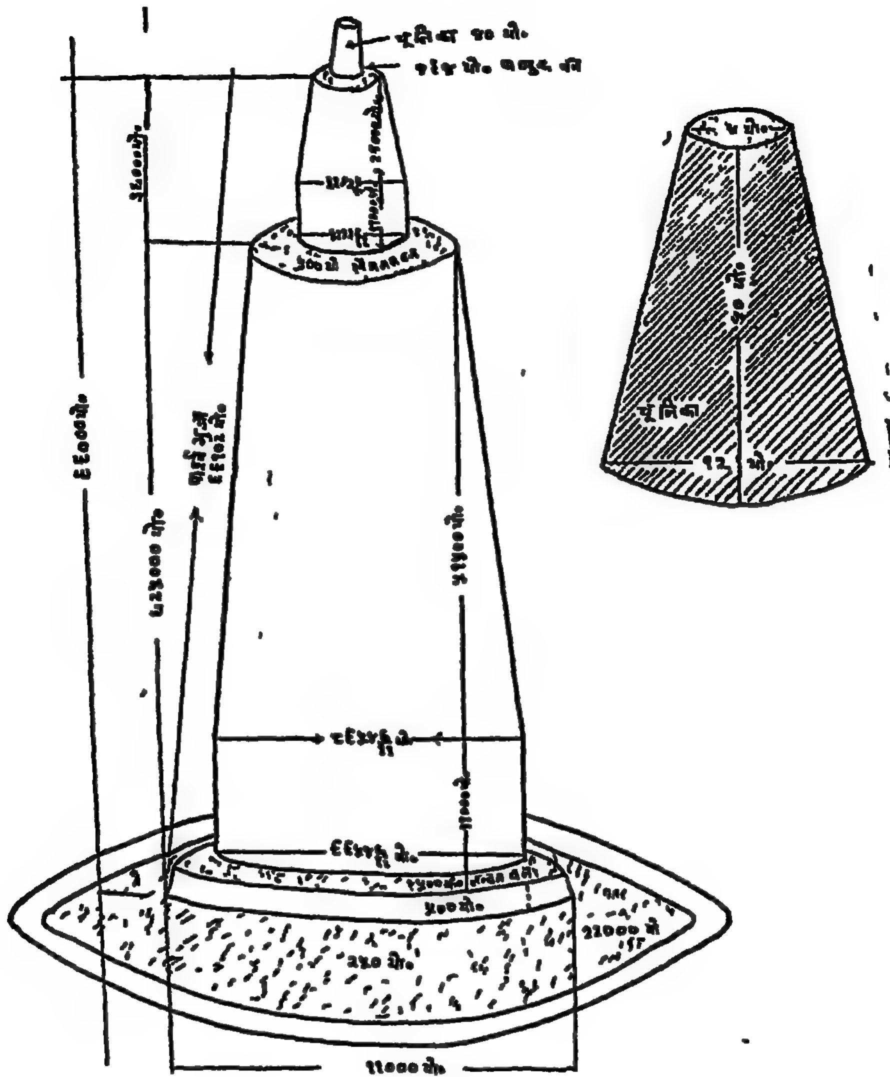
विदेह क्षेत्र का वर्णन

निषध पर्वत के वाद इस पर्वत से दूने विस्तार वाला विदेह क्षेत्र है। ३३६८४ योजन, (१३४७३६८४२$\frac{३}{१९}$) मील है।

निषध पर्वत के उत्तर भाग मे दोनो पर्वतो के मध्य भाग मे विदेह क्षेत्र है इस विदेह क्षेत्र के बीचोबीच मे सुमेरु पर्वत स्थित है। इसके सुदर्शन, मेरु, मन्दर पर्वत आदि अनेको नाम है। इस सुमेरु पर्वत के निमित्त से विदेह क्षेत्र के दो भेद हो गये है पूर्वविदेह और पश्चिम विदेह। पुन: सीता नदी और सीतोदा नदी के निमित्त से पूर्व विदह के भी दक्षिण उत्तर के भेद से दो भेद हो गए है और पश्चिम विदेह के सीतोदा के निमित्त से तीन भेद है।

सुमेरु पर्वत

विदेह क्षेत्र के बीचोबीच में दोनो कुरु क्षेत्रो के समीप मे निन्यानवे हजार, चालीस योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत स्थित है। इसकी नीव एक हजार योजन नीचे है। इस मेरु का विस्तार नीव के तल भाग मे १००९०$\frac{१०}{११}$ योजन प्रमाण है। ऊपर मे भद्रशाल वन के पास मे इस मेरु का विस्तार दस हजार योजन है।



इस भद्रशाल वन में मेरु की परिधि ३१६२२ योo, ३ कोस, २१२ धनुप, ३ हाथ, १३ अगुल प्रमाण है।

मेरु पर्वत के ऊपर ५०० योजन जाकर नन्दन वन स्थित है। इस नन्दन वन का विस्तार भी चारो तरफ (कटनी रूप से) ५०० योजन प्रमाण है। नन्दन वन के ६२५०० योजन ऊपर जाकर सौमनस

नामक वन स्थित है इसका विस्तार भी चारो तरफ ५०० योजन प्रमाण है। इस सौमनस वन से ३६००० योजन ऊपर जाकर मेरु के शिखर पर पाडुक वन स्थित है। इस पाडुक वन की कटनी का विस्तार ४९४ योजन प्रमाण है। इसके ठीक मध्य मे ४० योजन प्रमाण ऊँची मेरु पर्वत की चूलिका स्थित है।

सुमेरु पर्वत का भद्रशाल वन के पास विस्तार	१०००० यो०।
भद्रशाल से नदन वन तक ऊँचाई	५०० यो०।
नदन वन से सौमनस की ऊँचाई	६२५०० यो०।
सौमनस से पाडुक की ऊँचाई	३६००० योजन है।
चूलिका की ऊँचाई	४० योजन है।

यह मेरु पर्वत क्रम से हानि रूप होता हुआ पृथ्वी से ५०० योजन ऊपर जाकर उस स्थान मे युगपत् ५०० योजन प्रमाण सकुचित हो गया है। इस ५००यो० की कटनी को ही नन्दन वन कहते है। इसके ऊपर ग्यारह हजार योजन तक समान विस्तार है। अर्थात् पाँच सौ योजन के वाद अदर मे पाँच सौ योजन की कटनी हो जाने से ११ योजन मे १ योजन की हानि का क्रम यहाँ ११००० योजन तक नही रहा है। पुनः वही घटने का क्रम ५१५०० योजन तक होता गया है। इस ५१५०० योजन प्रमाण ऊपर जाने पर पुन: वह पर्वत सब ओर से युगपत् ५०० योजन सकुचित हो गया है। इस कटनी का नाम सौमनस वन है। पुनरपि इसके आगे ११००० योजन ऊपर तक सर्वत्र समान विस्तार है। फिर क्रम से हानि रूप होकर २५००० योजन जाने पर वह पर्वत युगपत् ४९४ योजन प्रमाण सकुचित हो गया है। इस प्रकार से सम्पूर्ण पर्वतों के स्वामी और उत्तम देवो के आलय स्वरूप इस अनादि निधन मेरु पर्वत की ऊँचाई १ लाख ४० योजन प्रमाण है।

नीव नदन समविस्तार सौमनस समविस्तार पाँडुक

१००० + ५०० + ११००० + ५१५००+११०००+२५०००

=१००००० योजन।

एव इसकी चूलिका ४० योजन प्रमाण है।

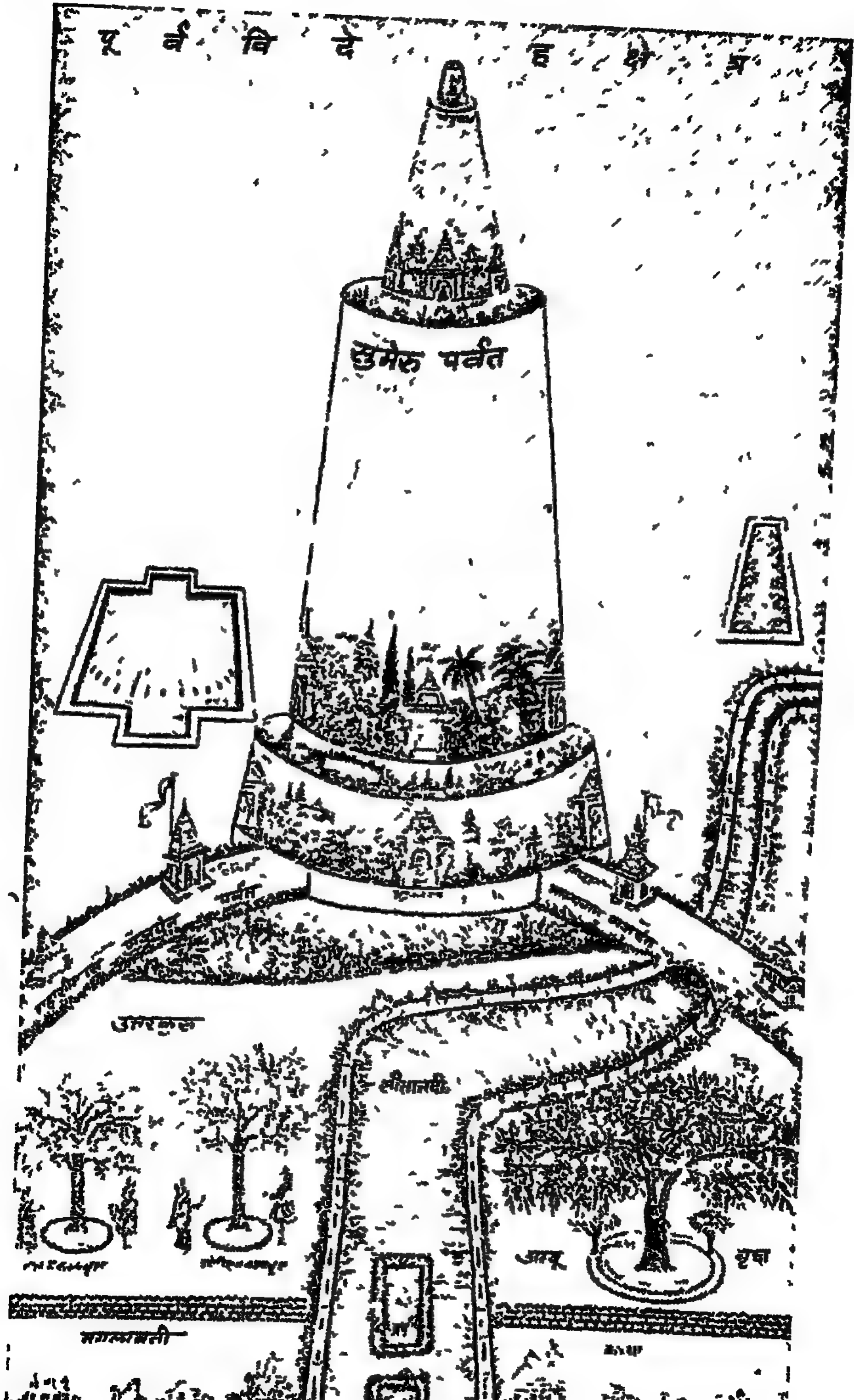
सुमेरु पर्वत के वर्ण का कथन

यह सुमेरु पर्वत मूल में एक हजार योजन प्रमाण वज्रमय, पृथ्वी तल से इकसठ हजार योजन प्रमाण उत्तम रत्नमय, आगे अडतीस हजार योजन प्रमाण सुवर्णमय है एव ऊपर की चूलिका नील मणि से बनी हुई है।

सुमेरु पर्वत की हानि वृद्धि का क्रम

मेरु का विस्तार भूमि के ऊपर भद्रशाल वन मे १०००० योजन प्रमाण है। यही विस्तार ९९००० योजन ऊपर जाकर क्रमश हीन होता हुआ १००० योजन मात्र रह गया है। अतएव 'भूमि में से मुख को कम करके शेष को ऊँचाई से भाजित करने पर हानि वृद्धि का प्रमाण होता है' इस नियम के अनुसार यहाँ हानि वृद्धि का प्रमाण इस प्रकार प्राप्त होता है—नीचे के प्रमाण को 'भूमि' एव ऊपर के प्रमाण को 'मुख' कहते है। यथा—१००००—१०००=९०००, ९०००—९९०००=$\frac{१}{११}$ योजन। मेरु के विस्तार में एक योजन की ऊँचाई पर भूमि की ओर से हानि और मुख की ओर से वृद्धि होती गयी है। यहाँ मेरु पर्वत के विस्तार मे मूलतः १ प्रदेश से लेकर ११ प्रदेशो पर १ प्रदेश की हानि हुई है। इसी प्रकार से मूलत· ११ अगुलो पर १ अगुल की, ११ हाथ पर हाथ की, ११ योजन पर १ योजन की हानि होती गयी है। एव ११००० योजन की ऊँचाई पर १००० योजन घटता है अत· ९९००० योजन की ऊँचाई पर अर्थात् पाडुक वन के पास १००० योजन मात्र रह जाता है। यथा—

चूकि ११००० योजन मे घटता है १००० योजन।
इसलिए १ ,, ,, ,, $\frac{१०००}{११०००}$
इसलिए ९९००० ,, ,, ,, $\frac{१०००}{११०००}\times ९९०००$
=९००० योजन।


पूर्व विदेह क्षेत्र
सुमेरु पर्वत

चूलिका का वर्णन

इस मेरु पर्वत की चूलिका की ऊंचाई का प्रमाण ४० योजन, नीचे पांडुक वन में चौड़ाई १२ योजन, मध्य में ८ योजन एवं शिखर के अग्रभाग में ४ योजन मात्र है। एक योजन २००० कोस का है और एक कोस में दो मील मानने से यह चूलिका का अग्र भाग ४ को ४००० हजार से गुणा करने पर १६००० मील प्रमाण है। यथा—४×४००० = १६,००० मील। इस पर्वत की परिधि क्रमशः नीचे से हरितालमयी, वैडूर्यमणिमयी, रत्नमयी, वज्रमयी, इसके ऊपर पद्ममयी और इसके भी ऊपर पद्मरागमयी है। मंदर पर्वत की इन ६ परिधियों में से प्रत्येक परिधि का प्रमाण १६५०० योजन मात्र है। इस पर्वत की सातवीं परिधि नाना प्रकार के वृक्ष समूहों से व्याप्त और बाहर से ग्यारह प्रकार है। ये ग्यारह भेद क्रमशः ये हैं—भद्रशाल वन में नाम से भद्रशाल, मानुषोत्तर, देवरमण, नागरमण और भूतरमण ये पांच वन हैं। नंदन वन में नंदन और उपनंदन वन, सौमनस में सौमनस और उपसौमनस वन, पांडुकवन में पांडुक और उपपांडुक वन हैं—सौमनस तथा नंदन वन मेरु पर्वत के सानु-कटनी प्रदेशों में और चौथा भद्रशाल वन भूमि पर स्थित है।

मेरु पर्वत के शिखर का विस्तार

शिखर का विस्तार १००० योजन और उसकी परिधि ३१६२ योजन से कुछ अधिक है। यहां पांडुक वन की कटनी ४९४ योजन है। अतः बीच में बचे १२ योजन, जो कि चूलिका की चौड़ाई है।

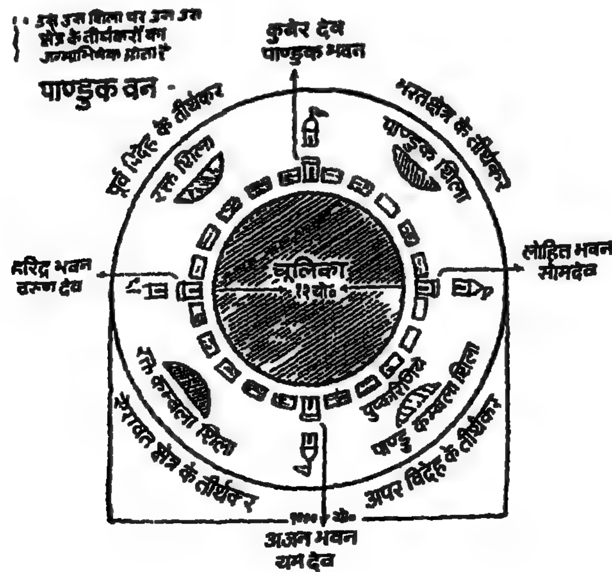
सुमेरु की कटनी के स्थान का प्रमाण

सम भूमितल में भद्रशाल वन के पास विस्तार १०,००० योजन प्रमाण है क्रम से घटते हुए नंदन वन के पास बाह्य भाग में ९९५४ $\frac{6}{11}$ योजन है। नंदन वन के अभ्यंतर भाग में ८९५४ $\frac{6}{11}$ योजन प्रमाण है

आगे क्रम से घटते हुए सौमनस वन के पास बाह्य भाग मे ४२७२ $\frac{८}{११}$ योजन एव उसी वन के अभ्यतर भाग में ३२७२ $\frac{८}{११}$ योजन है। आगे घटते-घटते पाडुक वन के बाह्य भाग मे १००० योजन एव अभ्यतर भाग में ४९४ योजन की कटनी के होने से १२ योजन मात्र रह गया है जो कि चूलिका का विस्तार मात्र है।

पांडुक वन का वर्णन

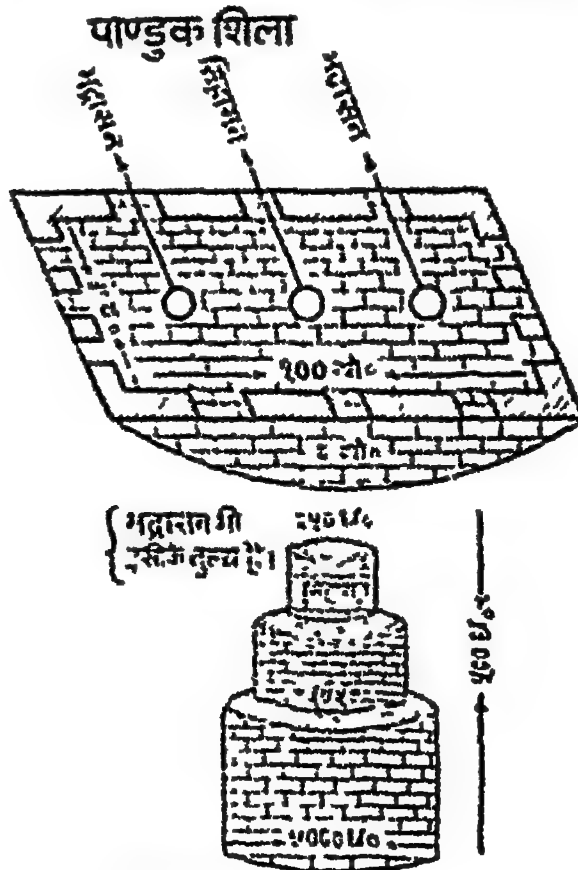
पाडुक वन में चारो ओर मार्ग। अट्टालिकाओ से विशाल और अनेक प्रकार की ध्वजा पताकाओ से सयुक्त ऐसी अतिरमणीय दिव्य तटवेदी है अर्थात् पाडुकवन के तटपर चारो तरफ परकोटे के समान वेष्टित किये हुये तटवेदी है उसके गोपुरो पर रत्नमय देवभवन है। उस वेदी के मध्य में पर्वत की चूलिका को चारो ओर से वेष्टित किये हुये पाडुक नामक वनखण्ड है, इन वनखडो में कपूंर, तमाल, ताल, कदली, लवग, दाडिम, पनस, सप्तच्छद, मल्लि, चपक, नारगी, मातुलिग, पुनाग, नाग, कुब्जक, अशोक आदि वृक्ष शोभायमान है।



इस पांडुकवन में चारों दिशाओं में चार चैत्यालय और चारों ही विदिशाओं में चार शिलायें स्थित हैं। उन शिलाओं के नाम क्रम से पांडुक-शिला, पांडुकम्बला, रक्ताशिला, और रक्तकम्बला हैं।

पांडुकशिला का वर्णन

यह पांडुकशिला अर्धचन्द्रमा के सदृश आकार वाली है। यह पूर्व-पश्चिम में १०० योजन लंबी, दक्षिण-उत्तर में ५० योजन चौड़ी है इसके बहुमध्य भाग में दोनों ओर से क्रमशः हानि होती गई है यह शिला ८ योजन ऊंची है ऊपर समवृत्त आकार है, वन वेदी से संयुक्त सुवर्णमयी है।



पांडुकशिला का प्रमाण

लंबाई	चौड़ाई	ऊंचाई
१०० यो =४००००० मील,	५० यो =२००००० मील,	८ यो. =३२००० मी०

सिंहासन आदि का वर्णन

उस पाण्डुकशिला के मध्य में तत्कालीन सूर्य मण्डल के सदृश प्रकाशमान उन्नत सिंहासन स्थित है। उसके दोनों तरफ दिव्यरत्नों से रचित दो भद्रासन हैं। एक सिंहासन, दो भद्रासन इन तीनों की ऊंचाई पृथक्-पृथक् ५०० धनुष है। मूल में विस्तार ५०० धनुष एवं ऊपर विस्तार २५० धनुष है। ये सिंहासन चमर, छत्र, चामर, घंटिकाओं से शोभित एवं पूर्वाभिमुख स्थित हैं।

सौधर्म इन्द्र भरत क्षेत्र में उत्पन्न हुये तीर्थंकरों को बड़े वैभव के साथ लाकर मध्यम सिंहासन पर विराजमान करके १००८ कलशों से महान् अभिषेक करते हैं।

अन्य तीन शिलाओं का वर्णन

पाण्डुक वन में आग्नेय दिशा में उत्तर-दक्षिण दीर्घ और पूर्व-पश्चिम में विस्तीर्ण रजतमयी 'पाण्डुकम्बला' शिला है उसका सारा वर्णन पाण्डुक शिला के समान है। उस शिला पर सौधर्म इन्द्र पश्चिम विदेह के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं।

नैऋत्य दिशा में 'रक्तशिला' नामक सुवर्णमयी शिला है, जो पूर्व-पश्चिम में दीर्घ और दक्षिण उत्तर में विस्तृत है इसकी भी ऊंचाई आदि पाण्डुकशिला के सदृश है। यहां पर इन्द्र ऐरावत क्षेत्र में उत्पन्न हुये तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं।

वायव्य दिशा में उत्तर-दक्षिण दीर्घ और पूर्व-पश्चिम विस्तीर्ण 'रक्त कंबला' नामक लाल वर्ण वाली शिला है, इसका वर्णन भी पूर्ववत् है। इस शिला पर इद्र पूर्व विदेह के तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं।

पांडुक वन में स्थित लोकपाल के देवों के भवनों का वर्णन

पाडुक वन मे चूलिका के पास पूर्वदिशा मे ३० कोश प्रमाण विस्तार से सहित "लोहित नामक" गोलाकार प्रासाद है यह भवन अनेक प्रकार के उत्तम रत्नो से खचित, दिव्य धूप आदि से व्याप्त रमणीय शय्या आदि से सुशोभित पूर्वमुख वाला है इस भवन के मध्य मे विचित्र रत्नो से

निर्मित एक क्रीडापर्वत है इस पर्वत के ऊपर पूर्व दिशा का स्वामी, सौधर्म इन्द्र का 'सोम' नामक लोकपाल क्रीडा करता है।

इसी प्रकार पाडुक वन मे चूलिका के पास दक्षिण दिशा की ओर 'अजन' नामक भवन है इसका विस्तार आदि वर्णन पूर्वोक्त के सदृश है। इस अजन भवन के मध्य मे अरिष्ट नामक विमान का प्रभु 'यम' नामक लोकपाल निवास करता है।

इसी प्रकार पाडुकवन मे पश्चिम दिशा की ओर पूर्व भवन के समान विस्तार आदि से सहित 'हारिद्र' नामक प्रासाद है। इस भवन मे 'जलप्रभ' विमान का स्वामी वरुण' नामक लोकपाल रहता है।

इसी प्रकार पाडुक वन मे उत्तर दिशा की ओर पूर्वोक्त भवन के सदृश 'पाडुक' नामक प्रासाद है इस भवन मे वल्गुविमान का स्वामी 'कुबेर' नामक लोकपाल क्रीडा करता है।

लोकपालों का परिवार एवं देवियां आदि

इन चारो ही लोकपालो के परिवार देव छ· लाख छ्यासठ हजार छ सौ छ्यासठ प्रमाण है एव चारो मे एक-एक की देवागनायें साढे तीन करोड प्रमाण है जो कि कल्पवासिनी है।

सोम लोकपाल के वाहन, वस्त्र, विमान आदि अत्यत लाल वर्ण के होते है।

यम लोकपाल के वस्त्रादि अत्यत काले, वरुण के वस्त्रादि सुवर्ण वर्ण के एव कुबेर के वाहन आदि अत्यत धवल होते है।

पांडुकवन के चैत्यालयों का वर्णन

इस वन के मध्य मे चूलिका से पूर्व की ओर सौ कोस प्रमाण-उत्तर-दक्षिण दीर्घ, पचास कोस प्रमाण पूर्व-पश्चिम विस्तार वाला, पचहत्तर कोस ऊचा, अर्धकोस नीव सहित अनादि अनिधन जिनेन्द्र प्रासाद है। यह जिन भवन पूर्वाभिमुख है। इसके प्रमुख द्वार की ऊचाई १६ कोस एव विस्तार ८ कोस प्रमाण है। इस मदिर मे उत्तर-दक्षिण

भाग मे दो क्षुद्रद्वार है जो प्रमुख द्वार की अपेक्षा आधे प्रमाण वाले हैं। ये तीनो ही द्वार दिव्यतोरण स्तभो से सयुक्त है। यह जिनभवन कुद पुष्प सदृश धवल मणियो से निर्मित, अधकार को नष्ट करने वाला "त्रिभुवन तिलक" इस नाम से प्रसिद्ध है। इसके कपाट कर्केतन आदि मणियों से निर्मित्त वज्रमयी है।

इसी प्रकार से दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा मे भी इसी वर्णन से युक्त 'जिन भवन' हैं।

ये जिन भवन मोतियो की माला तथा चामरो से युक्त, उत्तम रत्नों से सहित बहुत प्रकार के चदोवो से सयुक्त है। वसतिका मे गर्भगृह के भीतर दो योजन ऊंचा, एक योजन विस्तार वाला और चार योजन लम्बाई से सयुक्त 'देवच्छद' है। यह देवच्छद लटकती हुई पुष्प मालाओ से सहित चित्र-विचित्र मणियो से निर्मित, नाना प्रकार के चवर व घटाओ से रमणीय गोशीर, मलयचदन एव कालागरु धूप की गध से व्याप्त, झारी कलश, दर्पण व नाना प्रकार की ध्वजा पताकाओ से सुशोभित, दे दीप्यमान उत्तम रत्नदीपको से युक्त है। जिनेन्द्र भवन के मध्य भाग मे पादपीठो से सहित स्फटिक मणिमय एक सौ आठ उन्नत सिहासन हैं। उन सिहासनो के ऊपर पाच सौ धनुष प्रमाण ऊँची एक सौ आठ, अनादि अनिधन जिन प्रतिमाये विराजमान है। ये जिनेन्द्र प्रतिमाये इन्द्र नीलमणि व मरकत मणिमय, कुतल तथा भ्रकुटियो के अग्रभाग से शोभा को प्रदान करने वाली, स्फटिकमणि और इन्द्र नीलमणि से निर्मित धवल व कृष्ण नेत्रयुगल से सहित, वज्रमय दन्तपक्ति की प्रभा से सयुक्त पल्लव के सदृश अधरोष्ठ से सुशोभित, हीरे से निर्मित उत्तम नखो से विभूषित, कमल के समान लाल हाथ-पैरो से विशिष्ट, एक हजार आठ व्यजन समूह से सहित और बत्तीस लक्षणो से युक्त है।

सहस्रो जिह्वाओ से युक्त हजारो कोडाकोडी धरणेन्द्र मिलकर भी उन प्रतिमाओ के वर्णन करने मे समर्थ नही है पुन. हम जैसे मनुष्यो की तो शक्ति ही क्या है ? सब जिनेन्द्र प्रतिमाओ मे से प्रत्येक प्रतिमा के समीप

हाथ मे उत्तम चवरो को लिये हुये चौसठ देवयुगलों की प्रतिमाये शोभायमान है। तीन छत्रादि से सहित, पल्यकासन से समन्वित और समचतुरस्र आकार वाली वे जिनेन्द्र प्रतिमाये जयवत है। जिनके चरणयुगलो को विद्याधर और देवेन्द्र भक्ति से नमस्कार करते है, उन जिन प्रतिमाओ को मैं भक्ति से नमस्कार करता हू। घटा प्रभृति वे सब उपकरण तथा दिव्य मगल द्रव्य पृथक्-पृथक् जिन प्रतिमाओ के पास में सुशोभित होते है। भृ गार, कलश, दर्पण, चवर, ध्वजा, बीजना, छत्र, और सुप्रतिष्ठ ये आठ मगल द्रव्य है। इनमे से प्रत्येक वहा एक सौ आठ होते है। प्रत्येक प्रतिमा के आजू-बाजू उत्तम रत्नादिको से रचित श्री देवी, श्रुतदेवी तथा सर्वाण्ह व सनत्कुमार यक्षों की मूर्तिया रहती है। देवच्छद के सन्मुख नाना प्रकार के रत्न और पुष्पो की मालाये प्रकाशमान, किरण समूह से सहित लटकती हुई शोभायमान है।

सुवर्ण एव रजत से निर्मित और उत्तम रत्नसमूहो से खचित बत्तीस हजार प्रमाण विशाल पूर्ण कलश सुशोभित है। कर्पूर, अगरू और चदनादि से उत्पन्न हुई धूप की गध से व्याप्त, सुवर्ण एव चादी से निर्मित चौबीस हजार धूपघट है। जिनभवन के सन्मुख मुख्य द्वार के दोनो पार्श्वभागो मे पृथक्-पृथक् चार हजार रत्नमालाये लटकती है। इनके भी बीच मे किरणो से सहित बारह हजार अकृत्रिम सुवर्ण मालाये लटकती हैं। द्वार की अग्रभूमियो मे आठ-आठ हजार धूपघट और धूप घटो के आगे आठ-आठ हजार सुवर्ण मालाये है। जिनभवन के उत्तर-दक्षिण के क्षुद्रद्वारो मे पृथक्-पृथक् इससे आधी रत्नमालाये, स्वर्णमालाये तथा धूपघट आदि हैं अर्थात् मुख्य द्वार का जो वर्णन है सभी विषय मे उससे आधी व्यवस्था इन दोनो द्वारोकी है। इस जिन भवन के पृष्ठ भाग में दरवाजा नही हैं एव चौबीस हजार कनक मालाये और इनके बीच में आठ हजार रत्नमालाये है।

इस जिनेन्द्र भवन के अग्रभाग मे सोलह कोस ऊचा, सौ कोस लबा और पचास कोस प्रमाण विस्तार से युक्त रमणीय 'मुखमडप'

है। वह मुखमडप उत्तम रत्न समूहों से निर्मित, फहराती हुई ध्वजा पताकाओ से सहित, निरूपम है। मुखमडप के आगे परमरमणीय अवलोकन मडप है जो सोलह कोस से अधिक ऊचा सौ कोस विस्तृत और सौ कोस लवा है। उसके आगे अपने योग्य ऊचाई से युक्त अस्सी कोस विस्तृत एव लवा अधिष्ठान स्थित है। उसके बहुमध्य भाग मे उत्तम रत्नो से रचित 'सभापुर' है जिसकी ऊचाई सोलह कोस से अधिक और लबाई व विस्तार चौसठ कोस प्रमाण है। सभापुर में सिंहासन, भद्रासन और वेत्रासन आदि आसन उत्तम रत्नो से निर्मित एव परम रमणीय हैं। इस सभापुर के आगे चालीस कोस ऊचा और नाना प्रकार के रत्नो से निर्मित पीठ है। पीठ के चारो ओर उत्तम गोपुरो से सयुक्त बारह वेदिया पृथ्वीतल पर और इतनी ही पीठ के ऊपर हैं। पीठ के ऊपर बीचोबीच मे समवृत्त 'रत्न स्तूप' स्थित है जो क्रम से चौसठ कोस प्रमाण विस्तार व ऊचाई से सहित है। इसके भी आगे छत्र से सहित, देदीप्यमान मणि किरणो से विभूषित और जिन व सिद्ध प्रतिमाओ से परिपूर्ण अनादि-निधन सुवर्णमय स्तूप है। इसके भी आगे समान विस्तार आदि से सहित आठ स्तूप है। इन स्तूपो के आगे सुवर्णमय दिव्य पीठ स्थित है। इस पीठ का विस्तार व लबाई दो सौ पचास योजन प्रमाण है। पीठ के चारो ओर उत्तम गोपुरो से युक्त बारह वेदिया भूमि तल पर और बारह ही पीठ के ऊपर है।

चैत्य वृक्ष का वर्णन

पीठ के उपरिम भाग पर सोलह कोस प्रमाण ऊचा, दिव्य व उत्तम तेज को धारण करने वाला 'सिद्धार्थनामक चैत्य वृक्ष' है। चैत्य वृक्ष के स्कंध की ऊचाई चार कोस बाहल्य एक कोस एव शाखाओ की लम्बाई व अंतराल बारह कोस प्रमाण है। पीठ के ऊपर इसी प्रमाण को धारण करने वाले "एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस" इसके परिवार वृक्ष हैं। ये वृक्ष विविध प्रकार के उत्तम रत्नो से निर्मित शाखाओ, मरकत-

मणिपत्तो, पद्मरागमणिमय फलो और सुवर्ण एव चादी से निर्मित पुष्पो से सदैव सयुक्त रहते है। ये सब उत्तम दिव्य वृक्ष अनादि निधन और पृथ्वी रूप होते हुये जीवो की उत्पत्ति और विनाश के स्वय कारण होते हैं। इन वृक्षो मे प्रत्येक वृक्ष के चारो ओर विविध प्रकार के रत्नो से रचित चार-चार जिन और सिद्धो की प्रतिमाये विराजमान है। ये प्रतिमाये सदा जयवत होवे।

इन चैत्य वृक्षो के आगे सुवर्णमय दिव्य पीठ है। पीठ के चारो ओर भूमितल पर मार्ग व अट्टालिकाओ, गोपुर द्वारो और तोरणो से विचित्र बारह वेदिया हैं। पीठ के ऊपर मणिसमूह से खचित और अनेक प्रकार के चमर व घटाओ से युक्त चार योजन ऊचें सुवर्णमय 'खभे' है। सब खभो के ऊपर अनेक प्रकार के वर्णों से रमणीय और शिखर रूप तीन छत्रो से सुशोभित 'महेन्द्र' नामक महाध्वजाये हैं। महाध्वजाओ के आगे मगर आदि जलजतुओ से रहित जलवाली, कमल, उत्पल व कुमुदो से व्याप्त चार वापिकाये है। वेदिकादि से सहित वापिकाये प्रत्येक पचास कोस प्रमाण विस्तृत, सौ कोस लबी, और दस कोस गहरी है। वापियो के मध्य मे रत्नकिरणो से प्रकाशमान एक 'जिनेन्द्र भवन' स्थित है। अनतर वापियो के आगे पूर्व, दक्षिण, उत्तर भागो मे देवो के रत्नमय 'क्रीडाभवन' है। विविधवर्णो से युक्त वे भवन पचास कोस ऊचे, पच्चीस कोस विस्तृत और लम्बे हैं। तथा विचित्र वर्णन से युक्त धूपघट आदि से सहित है। इन भवनो के आगे इतने ही प्रमाण से युक्त, फहराती हुई ध्वजा पताकाओ से सहित प्रकाशमान उत्तम रत्न किरणो से सुशोभित 'दो प्रसाद' हैं। इसके आगे सौ कोस ऊचे, पचास कोस लबे, चौडे, दिव्य रत्नो से निर्मित 'प्रासाद' है। प्रमुख द्वार के आगे जो मुखमडप आदि कहे गये है वे आधे प्रमाणो से सहित दक्षिण-उत्तर के क्षुद्र द्वारो मे भी है।

मंदिर के चारों तरफ ध्वजपंक्ति, चैत्य वृक्ष व मानस्तंभों का वर्णन

इसके आगे मार्ग, अट्टालिकाओ और गोपुर द्वारो से सहित सुवर्णमय वेदी इन सबको वेष्टित करके स्थित है। इस वेदी के आगे चारो

दिशाओ मे सुवर्ण एव रत्नमय उत्तम खभो से सहित दश प्रकार की श्रेष्ठ-ध्वजपक्तिया स्थित है। सिह, हाथी, बैल, गरुड़, मोर, सूर्य, हस, कमल और चक्र इन दश चिन्हो से युक्त ध्वजाओ मे से प्रत्येक एक सौ आठ और इतनी ही क्षुद्रध्वजाये है। प्रकाशमान रत्नकिरणो से सयुक्त, चार गोपुर द्वारो से रमणीय, सुवर्णमय उत्तम वेदी इनको वेष्टित करके स्थित है। ये वेदी दो कोस ऊची, पाच सौ धनुष चौडी, फहराती हुई ध्वजा पताकाओ से सहित, स्फटिक मणिमय उत्तम भित्तियो से सयुक्त है। इसके आगे जिन भवनो के चारो ओर तीनो लोको को आश्चर्य उत्पन्न करने वाले दश प्रकार के "कल्पवृक्ष" है। सब प्रकार के कल्पवृक्ष गोमेदमणिमय स्कध से सहित, सुवर्णमय कुसुमसमूह से रमणीय, मरकतमणिमय पत्तो को धारण करने वाले, मूगा, नीलमणि एव पद्मराग मणिमय फलो से युक्त, अकृत्रिम और अनादि-निधन है। इनके मूल मे चारो ओर चार 'जिनेन्द्र प्रतिमाये' विराज-मान है।

उन स्फटिक मणिमयविथियो के मध्य मे से प्रत्येक वीथी (गली) के प्रति वैडूर्य मणिमय मानस्तभ सुशोभित है। चार वेदी द्वार और तोरणो से सयुक्त ये मानस्तभ ऊपर चवर, घटा, किकिणी और ध्वजा इत्यादि से सयुक्त होते हुए शोभायमान होते है। इन मानस्तभो के नीचे और ऊपर चारो दिशाओ मे विराजमान, उत्तमरत्नो से निर्मित, जिनेन्द्र प्रतिमाये जयवत होवे।

मार्ग व अट्टालिकाओ से युक्त, विविध ध्वजा पताकाओ से सुशोभित, श्रेष्ठ रत्न समूहो से निर्मित 'कोट' इस कल्पमही को वेष्टित करके स्थित है। इस प्रकार से जिनभवन का यह सक्षिप्त वर्णन तिलोय-पण्णत्ति' ग्रन्थ के आधार से किया गया है। ऐसे ही चार दिशा सबधी चार जिनभवनो मे स्थित सपूर्ण जिन प्रतिमाओ को मन, वचन, काय से नमस्कार होवे।

यहा तक पाडुकवन का सक्षिप्त वर्णन हुआ।

सौमनस वन का वर्णन

पाडुक वन के नीचे छत्तीस हजार योजन जाकर सौमनस नामक वन मेरू को वेष्टित करके स्थित है। यह सौमनस वन पाच सौ योजन, विस्तृत, सुवर्णमय वेदिकाओं से वेष्टित चार गोपुरो से युक्त और क्षुद्रद्वारो से रमणीय है। इस वन मे नागकेसर, तमाल, हिंताल, कदली, वकुल, लवली, लवग, चपक और पनस आदि वृक्षो से व्याप्त, सुरकोयलो के मधुर शब्दो से मुखरित, मोर आदि पक्षियों से रमणीय, विद्याधर व देवयुगलो से संकीर्ण और विविध प्रकार की वापियो से युक्त है।

इस वन के भीतर सुमेरू के पास पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशाओ मे क्रम से वज्र, वज्रप्रभ, सुवर्ण और सुवर्णप्रभ नामक चार 'पुर' है ये पुर पाडुकवन के पुरो की अपेक्षा दुगुने विस्तार आदि से सहित, उत्तम रत्नो से रचित, कालागरु की सुगधि से व्याप्त है। इन पुरो के मध्य मे सौधर्म इन्द्र के सोम, यम, वरुण और कुवेर लोकपाल पूर्वोक्त वैभव से युक्त होकर क्रीडा करते है।

पुष्करिणी एवं सौधर्म इन्द्र के भवनों का वर्णन

उस वन की आग्नेय दिशा में उत्पलगुल्मा, नलिना, उत्पला और उत्पलोज्ज्वला ये चार 'पुष्करिणी' है। ये पुष्करिणी पचीस योजन लवी, साढे वारह योजन विस्तृत और पाच योजन गहरी है। ये जलचर जीवो से रहित, स्वच्छ जलभरी, उत्तम वेदी व तोरणो से वेष्टित, कीचड़ से रहित व हानि वृद्धि से हीन है।

पुष्करिणियो के वीच मे एक सौ पच्चीस कोस ऊचा, इससे आधे प्रमाण विस्तृत सौधर्म इन्द्र का अनुपम 'विहार प्रासाद' है। भवन के मध्य मे अतिरमणीय सौधर्म इन्द्र का सिहासन और इसके चारो ओर चार सिंहासन लोकपालो के है। सौधर्म इन्द्र के आसन से दक्षिण भाग मे सुवर्ण से निर्मित, मणिसमूह से खचित प्रतीन्द्र का सिहासन विराजमान है। सिंहासन के आगे आठ अग्र महिपियो के सिंहासन होते है इसके अतिरिक्त



इस वन की पुष्करिणी में इन्द्र सभा की रचना
(ह-पु। ५।३३८-३४०)

बत्तीस हजार प्रवर पीठ जानना चाहिये। सिंहासन के पास वायव्य और ईशान दिशा मे चौरासी लाख सामानिक देवो के उत्तम आसन है। उस सिंहासन की आग्नेयदिशा मे सुवर्ण से रचित, रत्नो से खचित बारह लाख प्रथम पारिषद् देवो के आसन है। दक्षिण दिशा भाग मे मध्यम पारिषद देवो के चौदह लाख, नैऋत्य दिशा मे बाह्य पारिषद् देवो के सोलह लाख प्रमाण आसन है। उसी दिशा मे त्रायस्त्रिश देवो के तेतीस आसन है। सिंहासन

के पश्चिम भाग मे महत्तरो के छह और महत्तरी का एक इस प्रकार सात आसन है। सिंहासन के चारो तरफ अगरक्षक देवो के चौरासी हजार आसन है। सौधर्म इन्द्र पूर्वाभिमुख सिहासन पर बैठ करके विविध प्रकार के विनोद से युक्त होता हुआ सेवार्थ आये हुये देवो की ओर देखता है।

सौमनसवन के भीतर नैऋत्य दिशा मे भृ गा, भृ गनिभा, कज्जला, कज्जलप्रभा ये चार वापिकाये पूर्वोक्त वापिकाओ के समान है। इन चार वापिकाओ के मध्य मे स्थित भवनो मे चवर छत्रादि से सहित सौधर्म इन्द्र भक्ति से समीप मे आये हुये देवो को आदर से देखता है।

पुष्करिणी एवं ईशान इन्द्र के भवनों का वर्णन

वायव्य दिशा मे श्री भद्रा, श्री काता, श्री महिता और श्री निलया ये चार पुष्करिणी पूर्वोक्त वर्णन से युक्त है। इनके मध्य के प्रासादो पर चवर छत्रादि से युक्त पूर्वोक्त वैभव से युक्त ईशान इद्र विनोद से क्रीडा करता है।

ईशान दिशा मे नलिना, नलिनगुल्मा, कुमुदा और कुमुदप्रभा ये चार वापिकाये है और उनके मध्य मे प्रासाद है। उस उत्तम भवन मे ईशान इद्र-सुख से क्रीडा करता है। आग्नेय एव नैऋत्य दिशा की वापियो के भवनो में सौधर्म इद्र एव वायव्य और ईशान दिशा की पुष्करिणियो के भवनो मे ईशान इन्द्र का प्रभुत्व समझना चाहिये।

सौमनस वन के जिनमंदिर

सौमनस वन की चारो ही दिशाओ मे चार जिनभवन स्थित है जिनका सारा वर्णन पूर्व में कहे गये जिन भवनो के सदृश ही है। अतर केवल इतना ही है कि ये भवन पाडुकवन के जिन भवनो के विस्तार, ऊचाई, लबाई आदि प्रमाण से दूने प्रमाण वाले है।

प्रत्येक जिन मदिर सबधी कोटो के बाहर दोनो पार्श्व भागो मे जो दो-दो कूट स्थित है उनके नदन, मदर, निषध, हिमवन् आदि उत्तम-उत्तम

नाम है। इन पर स्थित, भवन, दिक्कुमारिकायें एवं अन्य एक बलभद्र कूट आदि का वर्णन तिलोयपण्णत्ति मे देख लेना चाहिये।

नंदन वन का वर्णन

६२५०० योजन प्रमाण सौमनस वन के नीचे जाकर 'नदन' नामक वन है। यह वन ५०० योजन प्रमाण विस्तृत, सुवर्णमय वेदिकाओं से वेष्टित तथा क्षुद्रद्वारों के साथ-साथ चार तोरण द्वारो से संयुक्त है। नदन वन के भीतर सुमेरु के पास में पूर्व आदि दिशाओ में मान, चारण, गधर्व और चित्र नामक चार भवन है। पूर्व के समान वर्णन से संयुक्त ये नदनभवन विस्तार व लबाई में सौमनस वन से दुगुणे है। इन भवनो मे उतनी ही देवियो से युक्त होकर विविध प्रकार की क्रीडाओ को करने वाले सौधर्म इद्र के सोम, यम आदि लोकपाल क्रीडा करते है।

नदन वन के भीतर ईशान दिशा मे 'बलभद्र' नामक कूट है इस कूट की लबाई, ऊचाई आदि सौमनस वन सबधी 'बलभद्र' कूट के सदृश है।

जिन भवन, कूट, वापी, प्रासाद, देवताओ के नाम, विन्यास, और सौधर्म व ईशानेन्द्र की दिशाओ का विभाग इत्यादि सब सौमनस वन के समान ही इस नदन में है। अतर केवल इतना ही है कि नदन वन के भवन, कूट आदि के विस्तार आदि प्रमाण सौमनस से दूने-दूने हैं। इस प्रकार से सक्षेप से नदन वन का वर्णन हुआ।

भद्रसाल वन का वर्णन

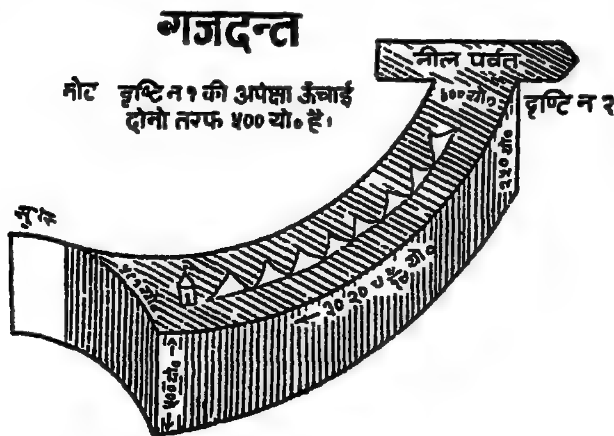
नदन वन के नीचे पाच सौ योजन प्रमाण जाकर श्री भद्रसाल वन है। इस वन का विस्तार क्रम से पूर्व व पश्चिम में २२००० योजन है तथा दक्षिण-उत्तर मे २५० योजन प्रमाण है। इस वन मे मेरु पर्वत के पास पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा मे एक-एक उत्तम जिन भवन है। इन जिन भवनो का विस्तार ५० योजन, लबाई १०० योजन एव ऊचाई ७५ योजन प्रमाण है। इन जिन भवनो का विशेष वर्णन पांडुक वन के जिन भवनो के सदृश समझना चाहिये। इस भद्रसालवन के चारो ओर उत्तम

तोरणो से शोभित श्रेष्ठ द्वार समूहो से रमणीय, अट्टालिकादि से सहित सुवर्णमय वेदी है, इस वेदी को ऊंचाई चारो तरफ एक योजन और विस्तार एक हजार धनुष प्रमाण है।

श्रीखण्ड, अगरु, केशर, अशोक, कर्पूर, तिलक, कदली, अतिमुक्त, मालती और हारिद्र प्रभृति वृक्षो से व्याप्त, पुष्करिणियो से रमणीय, उत्तम सरोवर व भवनो के समूह से सहित यह भद्रसाल वन कूटो और जिनपुरो से सुशोभित है। मोर, शुक, कोयल, सारस और हस इन पक्षियो के मधुर शब्दो से व्याप्त तथा विविध प्रकार के फल-फूलो से भरित वह भद्रसाल वन सुरम्य है।

गजदत पर्वत का वर्णन

मेरु पर्वत को विदिशाओ में हाथी दात के सदृश, अनादि निधन महारमणीय गजदत नाम से प्रसिद्ध चार पर्वत है। तिरछे रूप से आयत वे चारो महाशैल नील पर्वत, निषध पर्वत और मदरशैल से सलग्न है। उनमें से प्रत्येक पर्वत उत्तर-दक्षिण भाग में मदर पर्वत के मध्य देश मे एक-एक



प्रदेश से उससे सलग्न है। सुन्दर कल्पवृक्षो की शोभा से सयुक्त ये गजदत पर्वत, सर्वत्र ५०० योजन प्रमाण विस्तार वाले हैं। इनकी ऊचाई मेरु पर्वत के पास ५०० योजन एव निषध नील पर्वत के पास ४०० योजन

प्रमाण है निषध-नील पर्वत से मेरुपर्वत पर्यंत प्रत्येक के प्रदेश वृद्धि होती गई है। गजदत के विस्तार से रहित भद्रसाल वन के विस्तार को दुगुना करके उसमे मेरुपर्वत के विस्तार को मिला देने पर दोनो पर्वतो के मध्य मे जीवा प्रमाण ५३००० योजन होता है।

[(२२०००−५००)×२ +१००००=५३०००]

मेरु पर्वत के ईशान कोण मे माल्यवान् पर्वत है आग्नेय मे सौमनस्य, नैऋत मे विद्युत्प्रभ और वायव्य मे गधमादन पर्वत है। क्रम से माल्यवान् वैडूर्य मणिमय है, सौमनस्य रजतमय है, विद्युत्प्रभ तपनीय सुवर्णमय काति वाला एव गधमादन पर्वत सुवर्णमय वर्ण सहित है। इन चारो ही पर्वतो की लबाई का प्रमाण ३०२०९$\frac{६}{१९}$ योजन है। गजदत पर्वतो की ऊचाई मेरु पर्वत के पास मे ५०० योजन एव क्रम से हीन होते-होते निषध-नील पर्वत के समीप ४०० योजन मात्र रह गई है। इस ऊचाई के अनुसार ही उन पर स्थित कूटो की ऊचाई का हिसाब है। इन पर्वतो पर मेरु के समीप जो कूट है, उनका नाम सिद्धायतनकूट है। वे १२५ योजन प्रमाण है। अतिम कूट १०० योजन प्रमाण है, मध्य के कूट हीनाधिक प्रमाण वाले है। अर्थात्, प्रत्येक पर्वतो की ऊचाई के चतुर्थ भाग प्रमाण उनकी नीव रहती है और कूट भी चतुर्थभाग प्रमाण रहते है।

सिद्ध, माल्यवान्, उत्तरकुरु, कच्छ, सागर, रजत, पूर्णभद्र, सीता और हरिसह ये नौ कूट माल्यवान् गजदत पर स्थित है। सिद्ध, सौमनस, देवकुरु, मगल, विमल, काचन, और वशिष्ट ये सात कूट सौमनस पर्वत पर स्थित है। सिद्ध, विद्युत्प्रभ, देवकुरु, पद्म, तपन, स्वस्तिक, शतज्वल, सीतोदा और हरिसम ये नौ कूट विद्युत्प्रभ पर्वत पर स्थित है। सिद्धायतन, गधमादन, उत्तरकुरु, गधमालिनी, लोहिताक्ष, स्फटिक और आनद ये सात कूट गध-मादन पर्वत पर स्थित है। चारो पर्वतो के प्रथम कूट १२५ योजन और अतिम कूट १०० यो० प्रमाण वाले है शेष कूटो का प्रमाण सिद्धकूट से हीन होता गया है। इन पर्वतो के प्रथम कूटो पर पाडुकवन सबधी जिन भवन के सदृश विस्तार, ऊचाई-लबाई वाले जिन भवन है। शेष कूटो पर व्यतर देव

और देवियो के सुवर्णमय प्रसाद स्थित है। माल्यवान् और विद्युत्प्रभ पर्वत की लवाई मे ९ का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना प्रत्येक कूटों का अतराल है यथा—३३५६ $\frac{१८}{[illegible]}$ योजन।

सौमनस और गधमादन पर्वत को लवाई मे ७ का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना प्रत्येक कूटो के अतराल का प्रमाण है। यह प्रमाण ४३१५ $\frac{६}{७}$ [illegible] योजन है। सोता नदी को निकलने के लिये माल्यवान् पर्वत में एक गुफा है एव सीतोदा नदो के निकलने के लिये विद्युत्प्रभ पर्वत मे एक गुफा है ये गुफायें पर्वत के विस्तार के समान ५०० योजन लबी है दोनों पार्श्व-भागो मे अपने योग्य ऊचाई और विस्तार से सहित, प्रकाशमान उत्तम रत्न किरणो से सयुक्त, अकृत्रिम, अनुपम द्वारो से सहित हैं।

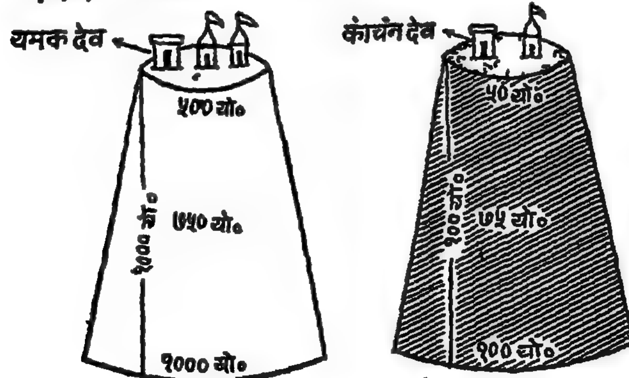
सीतोदानदी का वर्णन

निषध पर्वत के तिगिञ्छद्रह के उत्तर द्वार से सीतोदा महानदी निकलती है यह नदी उत्तर मुख होकर ७४२१ योजन से कुछ अधिक निषधपर्वत के ऊपर जाती है। पश्चात् पर्वत से नीचे सोतोदा कुण्ड मे गिरकर उसके उत्तर तोरण द्वार से निकल कर उत्तर मार्ग से मेरु पर्वत पर्यंत जाती है। पुन मेरु पर्वत से दो कोस इधर ही रहकर यह नदी पश्चिम को ओर मुड जाती है अनतर दो कोस अंतर से सहित होकर यह नदी कुटिल रूप से विद्युत्प्रभ पर्वत को गुफा के उत्तर मुख से भद्रसालवन मे प्रवेश करती है। मेरु के मध्यभाग को अपना मध्यप्रणिधि करके वह नदी पश्चिम मुख से विदेह क्षेत्र के वहुमध्य में होकर जाती है। देवकुरु में उत्पन्न हुई नदिया चोरासी हजार (८४०००) हैं पश्चिम विदेह में उत्पन्न हुई सपूर्ण नदिया चार लाख अडतालीस हजार अड़तीस हैं जो कि सीतोदा नदी में प्रवेश करती हैं। यह सीतोदा नदी इन परिवार नदियों से सहित होती हुई जवूद्वीप की जगती के विलद्वार में से लवण समुद्र में प्रवेश करती है। दो तट वेदियो और उपवन खंडो से मनोहर सीतोदा नदी का विस्तार आदि हरिकान्ता नदी से दूना है।

निषधपर्वत के उत्तर मे एक हजार योजन जाकर सीतोदा नदी के दोनो किनारो पर यमक शैल स्थित हैं जो कि नदी के पूर्व मे यमकूट एव पश्चिम मे मेघकूट नाम वाले हैं। इन पर्वतो का अतराल ५०० योजन है। प्रत्येक पर्वत की ऊचाई २००० योजन और मूल मे विस्तार १००० योजन है, मध्यविस्तार ७०० योजन एव उपरिम विस्तार ५०० योजन मात्र है। इनके मध्य मे १२५ कोस विस्तृत, २५० कोस ऊचा दिव्य प्रासाद है। उत्तम ध्वजा, तोरण आदि से सहित रत्नो से निर्मित, उपवनखड, पुष्क-रिणी, वापिकाओ से रमणीय इन प्रासादो में पर्वत सदृश नाम वाले व्यतर देव निवास करते है प्रत्येक देव १० धनुष ऊचे, एक पल्य प्रमाण आयुवाले, अनेक देवागनाओं से एव सामानिक पारिषद् आदि देव परिवार से सहित हैं। इन यमक और मेघ देवों के भवनो मे पाडुकवन के जिनभवन सदृश एक-एक उत्तम जिनभवन है।

सीतोदा नदी के अंतर्गत पांच सरोवरों का वर्णन

यमक और मेघगिरी से आगे ५०० योजन जाकर पाच द्रह है इनमे प्रत्येक के बीच ५०० योजन का अतराल है। ये प्रत्येक द्रह १००० योजन



प्रमाण उत्तर-दक्षिण लबे, ५०० योजन चौडे और १० योजन गहरे हैं। इन पाच सरोवरो के नाम क्रम से निषध, देवकुरु, सूर, सुलस और विद्युत्

है। इन पांचो सरोवरो के बहुमध्य भाग मे से सीतोदा नदी चली जाती है। द्रहो के मध्य मे कमल पुष्पो के दिव्य भवनो में अपने-अपने द्रह के नाम वाले नागकुमार देवो के आवास है। इन द्रहो मे प्रत्येक मे एक लाख चालीस हजार एक सौ सोलह कमल है उन सभी कमलो पर नागकुमार देव एव उनके परिवार देव निवास करते है सभी कमल भवनो मे एक-एक अकृत्रिम जिन मदिर है।

कांचन शैलों का वर्णन

प्रत्येक सरोवर के पूर्व और पश्चिम दिग्भाग में १०० योजन ऊचे दस-दस काचन पर्वत है। ये पर्वत मूल में १०० योजन, मध्य में ७५ योजन ए शिखरतल मे ५० योजन प्रमाण है। ये काचन पर्वत मूल में व ऊपर चार तोरण वेदियो, वन-उपवनो और पुष्करिणियो से रमणीय है। इन पर मध्य के प्रसाद मे काचन नामक देवो के निवास है।

विद्युत् सरोवर से उत्तर की ओर २०९२$\frac{2}{19}$ योजन जाकर एक योजन ऊची अर्धकोस विस्तृत पूर्व-पश्चिम भाग में गजदत पर्वतों से सलग्न दिव्यवेदी है। यह वेदी मार्ग, अट्टालिका, तोरण द्वार एवं द्वारो के उपरिम भागो मे जिनभवनो से परिपूर्ण है।

आठ दिग्गज पर्वतों का वर्णन

भद्रसालवन के भीतर सीतोदा नदी के पूर्व-पश्चिम भाग में स्वस्तिक और अजन नामक पर्वत है। ये दोनो दिग्गज पर्वत मेरु पर्वत के दक्षिण में है। सीतोदा महानदी के दक्षिण तट पर कुमुद और उत्तर तट पर पलास नामक दो पर्वत है। ये दोनो पर्वत मेरु के पश्चिम में है। ऐसे ही सीता नदी के उत्तर किनारे पर पद्म कूट और दक्षिण किनारे पर नीलवान् कूट हैं। ये दोनो कूट मेरु के पूर्व में है। सीता नदी के पश्चिम तट पर अवतस कूट और पूर्व तट पर रोचन नामक कूट है। ये दोनो कूट मेरु के उत्तर में है। भद्रसाल वन में स्थित इन आठ दिग्गजेन्द्रो का प्रमाण काचन पर्वतो के समान है उनके ऊपर दिग्गजेन्द्र देव निवास करते है।

पश्चिम भाग मे निषध व नील पर्वत की उपवन वेदी से सलग्न सुवर्णमय भद्रसालवन वेदी है। वेदी की लबाई ३३६८४$\frac{४}{१९}$ योजन प्रमाण है।

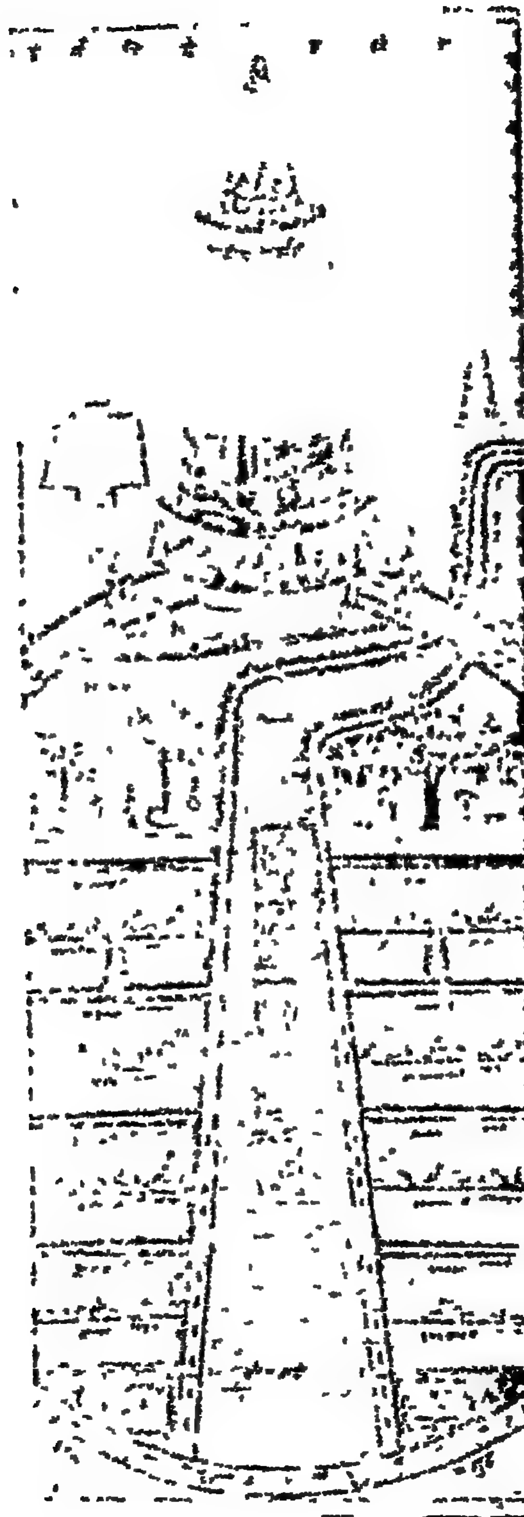
सीता नदी का वर्णन

नील पर्वत के केसरी नामक सरोवर के दक्षिण द्वार से सीता नामक उत्तम नदी निकलती है। यह भी सीतोदा के समान ही सीता कुण्ड मे गिरकर दक्षिण मुख होती हुई दो कोस प्रमाण से मेरु पर्वत को छोडकर पूर्व की ओर मुड़ जाती है और माल्यवत गजदत पर्वत की दक्षिण मुख वाली गुफा में प्रवेश करके गुफा से बाहर निकलकर कुटिल रूप से मेरु पर्वत के मध्य भाग तक जाती है। उस मेरु के मध्य भाग को अपना मध्य प्रदेश प्रणिधि करके यह सीता नदी पूर्व विदेह के ठीक बीच से पूर्व की ओर जाती है। अनतर जबूद्वीप की जगती के बिलद्वार मे से जाकर परिवार नदियो से युक्त होती हुई लवण समुद्र मे प्रवेश करती है। सीता नदी का विस्तार एव वन उपवन आदि वर्णन सीतोदा के सदृश है।

नील पर्वत के दक्षिण मे १००० योजन जाकर सीता के दोनो पार्श्व भागो मे दो यमक गिरि स्थित है। सीता के पूर्व मे चित्रकूट और पश्चिम मे विचित्रनाम का कूट है। इनका वर्णन यमक और मेघगिरि के सदृश है।

सीता के पांच द्रहों का वर्णन

यमक पर्वतो के आगे ५०० योजन जाकर पाच द्रह है। प्रत्येक द्रह पाच सौ योजन के अतराल से है। इनके नाम नील, उत्तरकुरु, चन्द्र, ऐरावत और माल्यवान् है। ये द्रह सीतोदा के द्रह सदृश है। अतिम द्रह से २०९२$\frac{२}{१९}$ योजन दक्षिण भाग में उत्तम वेदी है। यह वेदी पूर्व-पश्चिम में गजदत पर्वतो से सलग्न, एक योजन ऊची, $\frac{१}{२}$ योजन विस्तृत, प्रचुर मार्ग,



सुमेरु पर्वत
की पूर्व दिशा
के विदेह के
१६ क्षेत्र एवं
मध्य की
सीता नदी
का दृश्य

तोरण द्वार आदि रचनाओ एव द्वार के उपरिम भाग मे स्थित जिन भवनो से सहित है।

कितने ही आचार्य तथा त्रिलोक सार के कर्ता श्री नेमिचद्राचार्य मेरु-पर्वत के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर ऐसी प्रत्येक दिशा मे सीता तथा सीतोदा नदी के मध्य पाच-पाच सरोवरो को स्वीकार करते है। उनके उपदेश से एक-एक सरोवर के दोनो किनारो मे से प्रत्येक किनारे पर पाच-पाच काचन शैल स्थित है। त्रिलोकसार मे इन सरोवरो की चौडाई सीता, सीतोदा नदी की चौडाई के समान मानी है। लोक विभाग मे कहा है कि इन विशाल सरोवरो के तट रत्नो से विचित्र है, इनका मूल भाग वज्रमय है। उनके भीतर पद्म भवनो मे नागकुमारिया रहती है। जल से पद्म की ऊचाई आधा योजन है। वह एक योजन ऊचा और उतना ही विस्तृत है उसकी कर्णिका का विस्तार एक कोस और ऊचाई भी एक कोस है।

देवकुरु का वर्णन

मदर पर्वत के दक्षिण भाग मे स्थित भद्रसाल वन वेदी से दक्षिण मे, निषध से उत्तर, विद्युत्प्रभ के पूर्व और सौमनस के पश्चिम भाग मे सीतोदा के पूर्व-पश्चिम किनारो पर 'देवकुरु' स्थित है। निषध पर्वत की वन वेदी के पास मे उसकी पूर्व-पश्चिम लबाई ५३००० योजन प्रमाण कही गई है। मेरु की दक्षिण दिशा मे श्री भद्रसाल वेदी के पास उस क्षेत्र की लबाई ८४३४ योजन प्रमाण है। इस क्षेत्र का विस्तार उत्तर-दक्षिण मे ११५९२ $\frac{२}{१९}$ योजन प्रमाण है। दोनो गजदतो के समीप मे इसका विस्तार वक्ररूप से २५९८१ योजन प्रमाण है।

इस देवकुरु मे शाश्वत रूप से उत्तम भोग भूमि की व्यवस्था पाई जाती है। यहा की भूमि धूलि, कण्टक, हिम आदि से रहित है। यहा पर विकलत्रय जीव नही होते है। यहाँ पर युगल रूप से उत्पन्न हुये स्त्री पुरुष चौथे दिन बेर के प्रमाण आहर ग्रहण करते है। स्त्री-पुरुषो के शरीर की

देवकुरु व उत्तर कुरु

ऊचाई तीन कोस तथा आयु तीन पल्य प्रमाण होती है उत्तम सहनन से युक्त इन मनुष्यो के मल, मूत्र नही होता है।

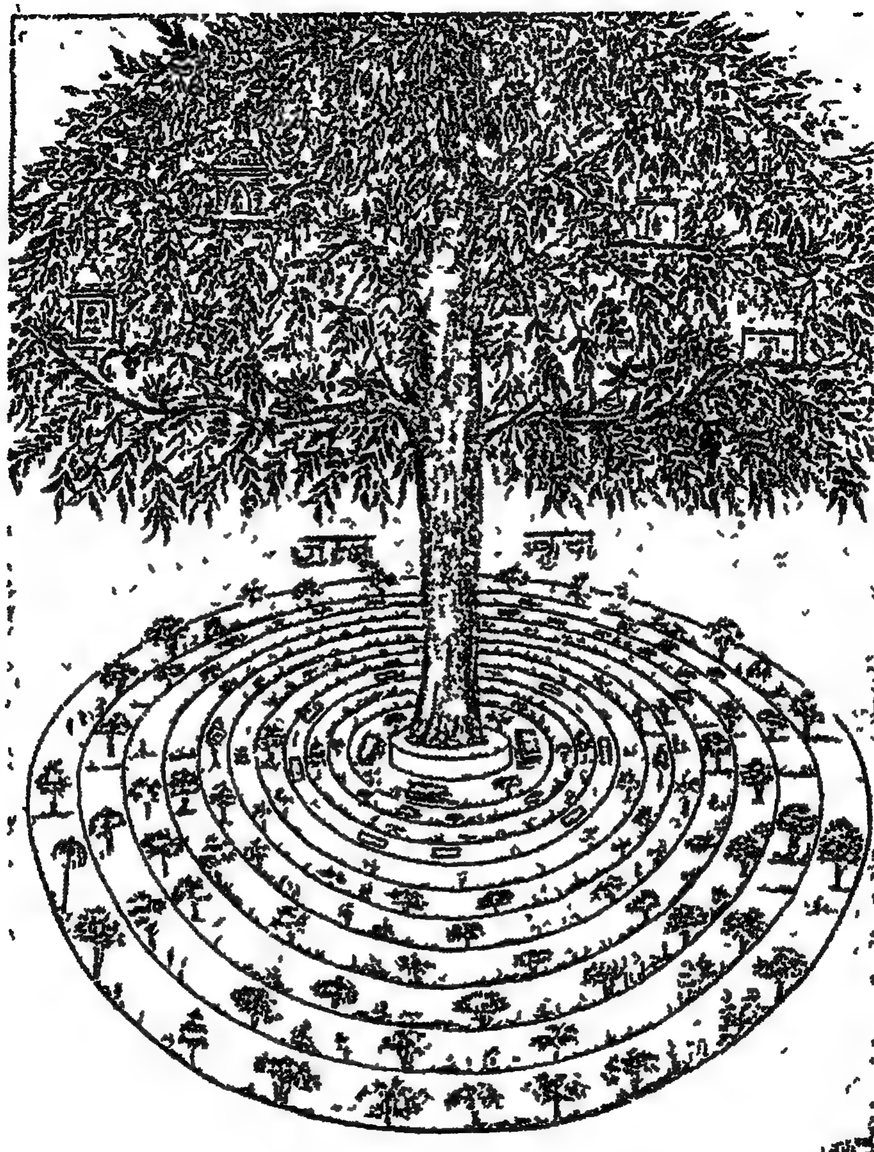
वहा पर दस प्रकार के उत्तम कल्पवृक्ष होते है जो इच्छित फल को दिया करते है। पानाग, तूर्यांग, भूषणाग, वस्त्राग, भोजनांग, आलयाग, दीपाग, भाजनांग, मालाग और ज्योतिरग ऐसे कल्प वृक्षों के दस भेद है। ये कल्प वृक्ष यथा नाम वाले फलो को प्रदान करते हैं। पानाग वृक्ष बत्तीस प्रकार के पेय द्रव्य को प्रदान करते हैं। तूर्यांग वीणा आदि वाद्यो को देते है। भूषणाग ककण, हार आदि, वस्त्राग उत्तम वस्त्रो को, भोजनाग अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थो को, आलयाग दिव्य भवनो को, दीपाग जलते हुये दीपको को, भाजनाग झारी, कलश आदि को देते है। मालाग वृक्ष पुष्पो की मालाओ को देते है और ज्योतिरग वृक्ष करोडो सूर्यों से अधिक कातिशाली चन्द्र-सूर्य की कान्ति का संहरण करते है। ये कल्प वृक्ष पृथ्वी कायिक होते हुये जीवो के पुण्य कर्म के फल को देते है। वहा के भोग भूमिया मनुष्य अकाल मरण से रहित होते हुये आयु पर्यंत उत्तम सुखो का उपभोग करते है। ये चक्रवर्ती की अपेक्षा भी अनत गुणे सुखो का अनुभव करते है।

शाल्मली वृक्ष का वर्णन

देवकुरु के भीतर निषधपर्वत के उत्तर पार्श्व भाग मे विद्युत्प्रभ पर्वत से पूर्व दिशा मे, सीतोदा नदी की पश्चिम दिशा मे और सुमेरु पर्वत के नैऋत्य भाग में रमणीय रजतमय शाल्मलि वृक्ष का स्थल बतलाया गया है। इस स्थल का विस्तार आदि वर्णन आगे कहे हुये 'जबूवृक्ष' के सदृश समझना चाहिये। इसकी दक्षिण शाखा पर जिन भवन है।

उत्तर कुरु का वर्णन

मदर पर्वत के उत्तर, नील पर्वत के दक्षिण, माल्यवान् गजदत के पश्चिम और गधमादन के पूर्व मे सीता नदी के दोनो किनारो पर 'भोग भूमि'


जम्बू वृक्ष

इस प्रकार से विख्यात रमणीय उत्तरकुरु नामक क्षेत्र है। इसका संपूर्ण वर्णन देवकुरु के वर्णन के समान है।

जंबूवृक्ष का वर्णन

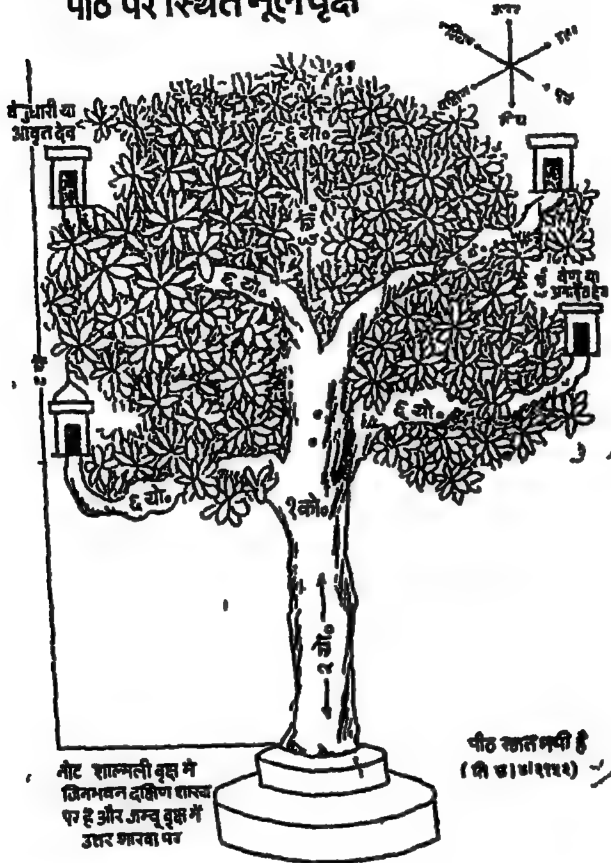
मेरु पर्वत के ईशान दिशा भाग मे, नीलगिरि के दक्षिण पार्श्व भाग मे, माल्यवत के पश्चिम भाग मे, एव सीता नदी के पूर्व तट पर उत्तम पीठ से सहित सुवर्णमय जंबूवृक्ष का स्थल है।

इस स्थल का विस्तार नीचे पाच सौ योजन और परिधि १५८१ योजन से कुछ अधिक है इसकी मध्यम ऊचाई का प्रमाण ८ योजन एव अन्त मे मोटाई दो कोस मात्र है। उत्तम वृक्षो से व्याप्त तीन वन इस स्थल को वेष्टित करके स्थित है स्थल के ऊपर चारो ओर द्वारो के उपरिम भाग में स्थित जिनेद्र भवनो से परिपूर्ण सुवर्णमय वेदिका स्थित है जो कि अर्ध योजन ऊची एव १/१६ योजन मात्र विस्तृत है। इस वेदी के मध्य भाग मे आठ योजन ऊंचा, मूल मे १२ तथा ऊपर ४ योजन प्रमाण विस्तृत समवृत्त रजतमय पीठ है। इस पीठ के वहु मध्य भाग मे पाद पीठ सहित उत्कृष्ट रत्नो से खचित जंबूवृक्ष स्थित है। यह वृक्ष उत्सेध योजन से आठ योजन ऊचा है। उसकी वज्रमय जड़ दो कोस मात्र है। इस वृक्ष का स्कध एक कोस मोटा एव दो योजन ऊचा है और हरित, मणिमय स्थिर है। इस वृक्ष की चारो दिशाओ में चार महाशाखाये है इनमे से प्रत्येक शाखा छह योजन लंबी और इतने मात्र अतर से सहित है। शाखाओ मे मरकत, वैडूर्य, कर्केतन, सुवर्ण और मूगे से निर्मित विविध प्रकार के पत्ते है एव पच वर्ण रत्नो से निर्मित अनुपम रूप वाले अकुर, फल एव पुष्प शोभायमान होते हैं। यह वृक्ष अनादिनिधन पृथ्वी कायिक हैं और चामर किकणी आदि से शोभित है।

उसकी उत्तर दिशागत शाखा के ऊपर उत्तम जिन भवन तथा अन्य तीन शाखाओ के ऊपर आदर अनादर नामक व्यतर देवो के भवन है। जिन

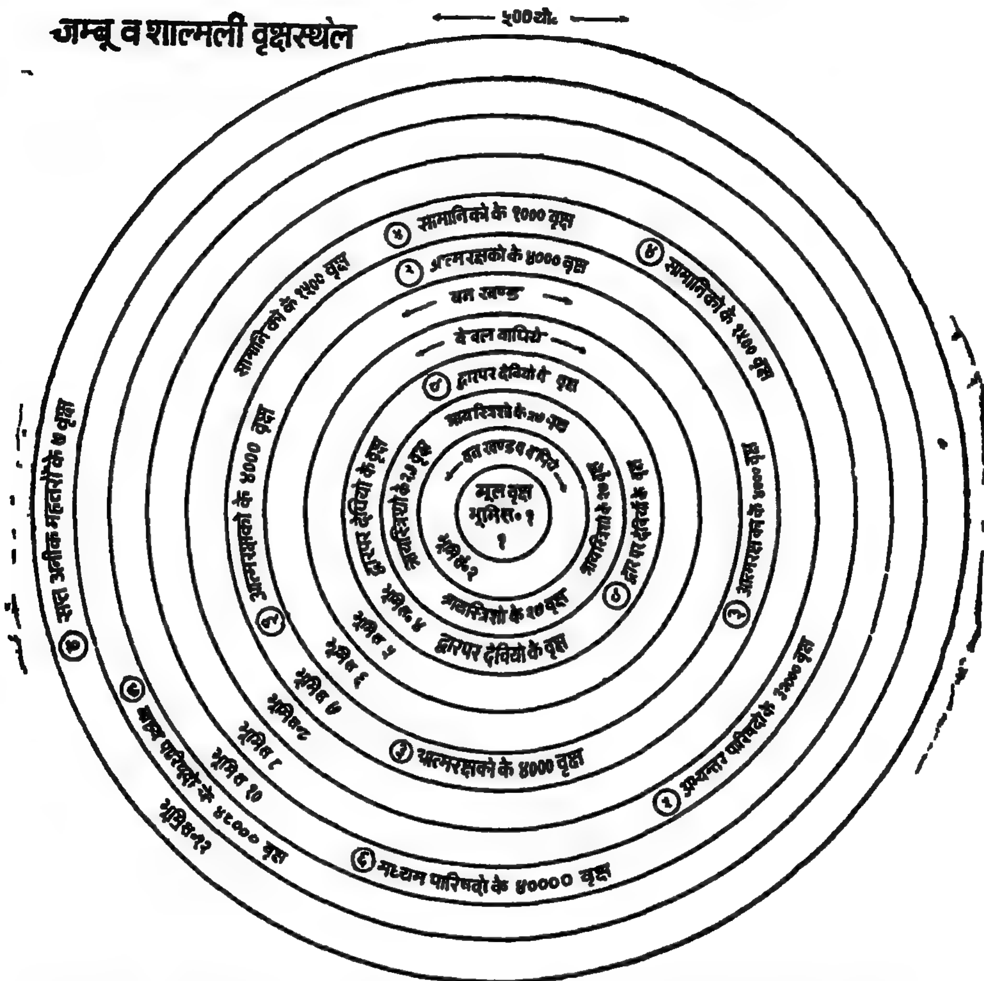
मदिर का वर्णन पाडुकवन सबधी जिन भवन सदृश है। एव देवों के भवन एक कोस लबे अर्ध कोस विस्तृत पोन कोस ऊंचे है। ये रत्नमय प्रासाद अनेक वैभव से युक्त है इनमे रहने वाले देव दस धनुष ऊचे व एक पल्य प्रमाण आयु से सहित होते हुये अनुपम दिव्य सुखो का उपभोग करते है।

पीठ पर स्थित मूल वृक्ष



इस वृक्ष के चारो तरफ चार गोपुरो से युक्त उत्तम रत्नो से सुशोभित बारह दिव्य वेदिया है। ये वेदिया उत्सेध कोस से दो कोस मात्र ऊंची और पाच सौ धनुष प्रमाण विस्तृत हैं। उपर्युक्त बारह पद्म वेदिकाओ मे बाह्य वेदिका की ओर से प्रारभ करके प्रथम और द्वितीय अतराल मे शून्य हैं अर्थात् उपवनखड, वापी, पुष्करिणी, पुष्पलता, सारस आदि से मनोरम है, किंतु इनमे जबू वृक्ष के परिवार वृक्ष नही है। तृतीय अतराल मे भूमि के

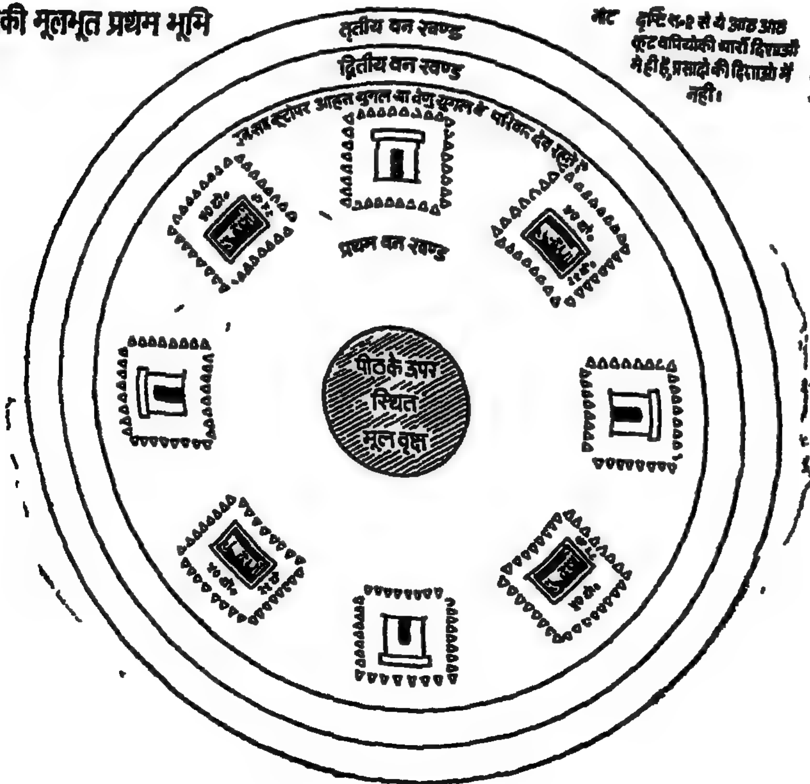
चारो ओर एक सौ आठ जंबू वृक्ष है। चतुर्थ अन्तराल मे पूर्व दिशा मे देवियो के चार वृक्ष, पचम अन्तराल मे वन व चतुष्कोण गोल आदि



वापिया, छठे अन्तराल मे शून्य है। सातवे अन्तराल मे चारो दिशाओ में से प्रत्येक दिशा मे तनुरक्षक देवों के सुन्दर चार-चार हजार वृक्ष (सोलह हजार) है। आठवे अन्तराल मे ईशान, उत्तर और वायव्य दिशाओं में सामानिक देवो के सब मिलकर चार हजार वृक्ष हैं। नवमें अन्तराल मे आग्नेय दिशा मे अभ्यतर पारिषद देवो के बत्तीस हजार वृक्ष है। दसवे में दक्षिण भाग में पारिषद के चालीस हजार वृक्ष एव ग्यारहवे अन्तराल में

नैऋत्य दिशा मे बाह्य पारिषद देवो के अडतालीस हजार वृक्ष है। बारहवीं भूमि मे पश्चिम दिशा की ओर सात अनीको के अधिपति देवो के सात ही वृक्ष है। रमणीय अकृत्रिम ये सब जबू वृक्ष के १४०१२० प्रमाण है।

इस जबू वृक्ष स्थल के चारो ओर विविध फल-फूलो से व्याप्त तीन वन खड है। प्रथम वन खड मे चारो दिशाओ मे चार प्रासाद है। इन प्रत्येक भवनों की विदिशाओ मे दस योजन गहरी चार-चार पुष्करिणी है इन पुष्करिणियो का विस्तार २५ योजन एव लम्बाई ५० योजन है। इनमे मणिमय सोपान है, इनका जल स्वच्छ है एव जल जतुओ से रहित है। पुष्करिणियो के चारो ओर पृथक्-पृथक् आठ कूट है इन पर स्थित प्रासादो पर आदर अनादर देवो के परिवार देव रहते है इस प्रकार से जबू



वृक्ष का वर्णन हुआ। इसमे अनादिनिधन जामुन फल जैसे फल लटक रहे हैं अतः इसका 'जबू' यह नाम सार्थक है। इनसभी जबू वृक्षो पर प्रत्येक पर एक-एक जिन भवन स्थित हैं।

शाल्मली वृक्ष का वर्णन

देवकुरु क्षेत्र के भीतर निपध पर्वत के उत्तर पार्श्वभाग मे विद्युत्प्रभ पर्वत से पूर्व दिशा मे, सीतोदा नदी की पश्चिम दिशा मे और मदरगिरि के नैऋत्य भाग मे रमणीय रजतमय शाल्मली वृक्षो का स्थल है। इस स्थल, पीठ, वेदिका आदि का वर्णन जंबू वृक्ष के वर्णन के समान है। इस मुख्य शाल्मली वृक्ष की दक्षिण शाखा पर जिन भवन स्थित है एव तीनों शाखाओं के ऊपर स्थित प्रासादो पर वेणु और वेणुधारी देव रहते हैं। इनके परिवार वृक्ष भी एक लाख चालिस हजार एक सौ उन्नीस प्रमाण हैं। ये देव सम्यग्दर्शन से शुद्ध और सम्यग्दृष्टियो से प्रेम करनें वाले है। प्रत्येक की आयु एक पल्य एव शरीर की ऊंचाई दस धनुष है।

इन शाल्मली वृक्षो के भी प्रत्येक भवनो में जिन भवन स्थित है।

पूर्व विदेह, अपरविदेह का वर्णन

मदर पर्वत के पूर्व भाग मे पूर्व विदेह नामक सोलह क्षेत्र एव पश्चिम भाग मे पश्चिम विदेह नामक सोलह क्षेत्र स्थित है। सीता नदी के दोनों पार्श्व भागो मे चार-चार वक्षार पर्वत और तीन-तीन विभग नदियो से सीमित आठ-आठ क्षेत्र है। सीतोदा के दोनो पार्श्व भागो मे चार-चार वक्षार पर्वत और तीन-तीन विभग नदियो से सीमित आठ-आठ क्षेत्र है। दोनो ही विदेहो मे एक-एक को व्यवहित करके वक्षारगिरि और विभग नदिया स्थित है।

ये क्षेत्र सीता नदी के उत्तर किनारे के भद्रसाल वेदो से पूर्व और नीलपर्वत से दक्षिण भाग मे प्रदक्षिण रूप से स्थित हैं। उनके नाम क्रम से

कच्छा, सुकच्छा, महाकच्छा, कच्छकावती, आवर्ता, लागलावती, पुष्कला और पुष्कलावती है। वत्सा, सुवत्सा, महावत्सा, वत्सकावती, रम्या, सुरम्यका, रमणीया, मगलावती ये आठ क्षेत्र सीता नदी के दक्षिण और निषध पर्वत के उत्तर मे कहे गये हे। पद्मा, सुपद्मा, महापद्मा, पद्मकावती, शखा, नलिना, कुमुदा, सरिता ये आठ क्षेत्र निषध से उत्तर एव सीतोदा के दक्षिण भाग मे स्थित है। वप्रा, सुवप्रा, महावप्रा, वप्रकावती, गधा, सुगधा, गधिला और गध मालिनी ये आठ क्षेत्र सीतोदा के उत्तर एव नील पर्वत के दक्षिण मे स्थित है। इन क्षेत्रो का पूर्वापर विस्तार २२१२ ७/८ योजन प्रमाण है एव लम्बाई १६५९२ २/१९ योजन प्रमाण हे।

वक्षार पर्वतों का वर्णन

चित्रकूट, पद्मकूट नलिनकूट व एक शैल ये चार वक्षार सीता महा नदी और नील पर्वत के बीच मे लम्बायमान हैं। त्रिकूट, वैश्रवण, अजन और आत्माजन ये चार पर्वत सीता नदी और निषध के बीच में है। श्रद्धा-वान, विजटावान, आशीविष और सुखावह ये चार पर्वत सीतोदा नदी और निषध पर्वत के आश्रित होकर पश्चिम विदेह मे स्थित हे। चन्द्रमाल, सूर्यमाल, नागमाल, एव देवमाल ये चार वक्षार नील पर्वत और सीतोदा के मध्य मे हैं। इन पर्वतो की ऊचाई नदी तट पर पाच सौ योजन प्रमाण है एव निषध, नील पर्वत के पास चार सौ योजन है। इन पर्वतो के दोनो पार्श्व भागो में पर्वत के समान लम्बे अर्घ योजन विस्तृत दिव्य वन खड है। ये पर्वत सुवर्णमय वर्ण वाले हैं। इनमें से प्रत्येक पर्वत का विस्तार सर्वत्र पांच सौ योजन है एव इनको लम्बाई १६५९२ २/१९ योजन है। इनमे से प्रत्येक पर्वत पर चार-चार कूट है। पर्वत की तरफ वाले कूटो पर दिक्कन्याये निवास करती हैं तथा जो कूट नदी को तरफ है उन पर जिनभवन स्थित है। मध्य कूटो पर व्यतर देवो के क्रीडा ग्रह हैं।

विभंग नदियों का वर्णन

ग्राहवती, ह्रदवती व पंकवती ये तीन विभग नदियां नील पर्वत से

निकल कर सीता महानदी को प्राप्त हुई है इनका अवस्थान वक्षारो के मध्य मे है। पूर्व की ओर से निषध पर्वत से निकल कर तप्त जला, मत्त-जला, उन्मत्तजला नदियाँ सीता नदी मे प्रविष्ट हुई हैं। ये छह विभग नदी पूर्व विदेह मे है।

क्षीरोदा, सीतोदा एव स्रोतोवाहिनी ये तीन विभग नदिया निषध पर्वत से निकलकर सीतोदा महानदी मे प्रविष्ट होती है।गंधमालिनि, फेंनमालिनि व ऊर्मिमालिनि ये तीन विभग नदिया पश्चिम की ओर से नील पर्वत से निकलकर अपर विदेहो मे होती हुई सीतोदा नदी को प्राप्त हुई हैं। इन बारह विभग नदियो का वर्णन रोहित नदी के समान है इनमे से प्रत्येक की परिवार नदिया अट्ठाइस हजार प्रमाण है। ये नदिया स्वर्णमय सोपानो से सहित, सुगधित जल से परिपूर्ण उपवन, वेदी, तोरणो से सयुक्त, लहरों से चचल, तोरण द्वारो के उपरिम भाग मे स्थित जिनभवनो से युक्त, शोभित होती है। सब विभग नदियो का विस्तार अपने-अपने कुण्ड के पास उत्पत्ति स्थान में पचास कोस और प्रवेश स्थान में पाच सौ कोस प्रमाण है।

देवारण्य-भूतारण्य वनों का वर्णन

पूर्व विदेह के अन्त मे जम्बूद्वीप की जगती के पास सीता नदी के दोनों किनारो पर रमणीय देवारण्य वन स्थित है। अपर विदेह के अन्त में जम्बूद्वीप की जगती के पास सीतोदा नदी के दोनो किनारो पर भूतारण्य वन हैं।

देवारण्य और भूतारण्य का विस्तार पृथक्-पृथक् २९२२ योजन प्रमाण है। इस देवारण्य वन में सुवर्ण, रत्न, चादी से निर्मित वेदी, तोरण, ध्वज, पताकादिकों से मडित विशाल प्रासाद है। इन प्रासादो मे उपपाद-शय्या, अभिषेक गृह, क्रीडनशाला, जिनभवन आदि विद्यमान है। यहा के प्रासादो से ईशानेन्द्र के परिवार देव बहुत प्रकार से क्रीडा करते रहते हैं, ऐसा ही सम्पूर्ण वर्णन भूतारण्य वन का भी समझना चाहिये।

बत्तीस विदेहों का स्पष्टीकरण

मेरुपर्वत से पूर्व दिशा मे पूर्व से पश्चिम को २२००० योजन विस्तार वाला वेदी सहित भद्रसाल वन है। उससे पूर्व दिशा मे कर्मभूमि नामक पूर्व विदेह है। वहां नील नामक कुलाचल से दक्षिण दिशा में और सीता नदी के उत्तर भाग में मेरु की प्रदक्षिणा रूप से जो ८ क्षेत्र हैं उनके विभागों का कथन करते है।

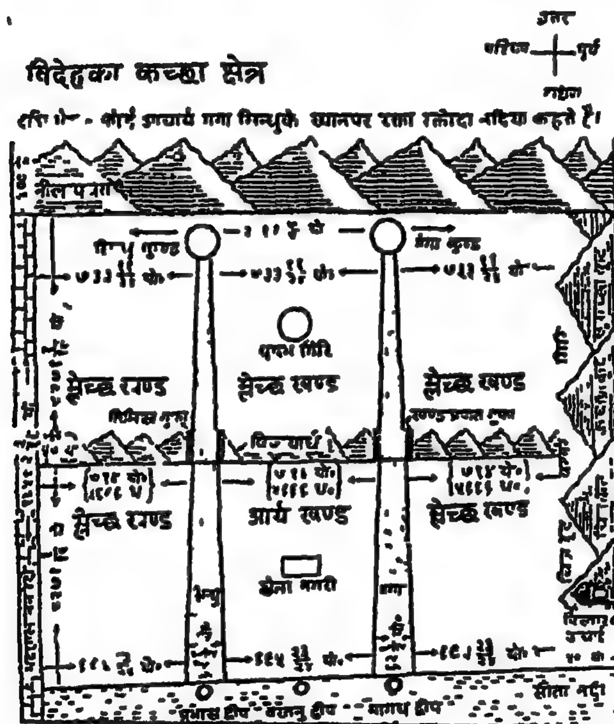
मेरु से पूर्व दिशा के भाग मे जो पूर्व भद्रसाल वन की वेदिका है उससे पूर्वदिशा भाग में प्रथम क्षेत्र है, उसके बाद दक्षिण से उत्तर तक लंबा वक्षार है, उसके बाद क्षेत्र है उसके आगे विभंगा नदी है उसके आगे क्षेत्र है, उस क्षेत्र के अनंतर वक्षार पर्वत है फिर क्षेत्र है, फिर विभंगा नदी है, उसके अनंतर क्षेत्र है, उसके पश्चात् वक्षार है, उसके आगे फिर विभंगा है, उसके आगे फिर क्षेत्र है, उसके आगे वक्षार फिर क्षेत्र है तदनंतर पूर्व समुद्र के पास जो देवारण्य वन है फिर उसकी वेदिका है। ऐसे नौ भित्तियो से आठ क्षेत्र हो जाते है जिनके नाम क्रम से कच्छा, सुकच्छा आदि है। ऐसे ही सीता नदी से दक्षिण में निषध से उत्तर मे आठ क्षेत्र है एवं सीतोदा के उत्तर दक्षिण मे आठ-आठ क्षेत्र है। ८+८+८+८=३२ क्षेत्र हो गये हैं।

बत्तीस विदेह के प्रत्येक के छह-छह खंड

प्रत्येक कच्छा आदि क्षेत्र में क्षेत्र विस्तार के सदृश लंबे विजयार्ध पर्वत हैं। अर्थात् २२१२$\frac{३}{१९}$ योजन लंबे और पचास योजन विस्तृत बत्तीस विजयार्ध है। इनमे से प्रत्येक के ऊपर उत्तर, दक्षिण दोनो श्रेणियो मे पचपन-पचपन विद्याधर नगरिया है जहा नित्य ही विद्याधर निवास करते है। प्रत्येक विजयार्ध पर भरत क्षेत्र के विजयार्ध के सदृश नौ-नौ कूट है। कच्छा देश के विजयार्ध मे सिद्धायतन, कच्छा, खंडप्रपात, पूर्णभद्र, विजयार्ध, माणि-भद्र, तिमिस्रगुह, कच्छा और वैश्रवण ये नौ कूटो के नाम है। प्रत्येक विजयार्ध के नौ कूटो के नामो मे दक्षिण-पूर्व का द्वितीय कूट अपने देश के

नाम को और उत्तर पूर्व का द्विचरम कूट भी उसी देश के नाम को धारण करता है। शेष सात कूट कच्छा देश मे कहे गये नामो से युक्त हैं।

प्रत्येक क्षेत्र में निषध पर्वत के उत्तर की ओर उपवन वेदी के उत्तर पार्श्व भाग में वेदी तोरण से सहित दो कुण्ड स्थित है इन कुण्डो के उत्तर तोरण द्वार से गगा, सिंधु नामक दो नदिया निकलती है जो कि वत्सा क्षेत्र मे जाती हुई विजयार्ध के गुफा द्वार से प्रविष्ट होकर दक्षिण गुफा द्वार से बाहर निकल कर पुनः वत्सा क्षेत्र में बहती हुई सीता नदी मे प्रविष्ट हो



जातो है। ऐसे हो आठो क्षत्रो मे समझना नील पर्वत से दक्षिण की ओर उपवन वेदो के दक्षिण पार्श्व भाग मे वेदी तोरण द्वारो से युक्त दो कुण्ड हैं इन कुण्डों के दक्षिण तोरण द्वार से गगा नदी के सदृश पृथक्-पृथक् रक्ता-रक्तोदा नदियां निकलती हैं जो कि कच्छा देश मे बहती हुई विजयार्ध की गुफा द्वार से निकलकर सीता नदी मे प्रविष्ट हो जाती है ऐसे ही आठो क्षेत्रों में समझना।

इसी प्रकार से पश्चिम विदेह मे निषध, नील पर्वत से गगा, सिधु और रक्ता-रक्तोदा नदियाँ निकलकर सीतोदा नदी में प्रविष्ट हुई हैं अतः सभी बत्तीस विदेहो के एक-एक विजयार्ध और दो-दो नदियो से छह-छह खंड हो गये हैं। इनमें से नदी के पास का एव दो नदियों के मध्य का खड 'आर्य खंड' कहलाता है शेष पाँच म्लेच्छ खड कहे जाते है।

इन गगा-सिधु और रक्ता-रक्तोदा की परिवार नदियाँ चौदह-चौदह हजार है एव इनका सारा वर्णन भरत क्षेत्र की गगा-सिधु के सदृश है अन्तर इतना ही है कि ये कुटिल रूप न होकर सीधी बहती है। पर्वत के निकट के तीन म्लेच्छ खण्ड मे से मध्य के म्लेच्छ खड के मध्य भाग में चक्रवर्ती के मान को मर्दन करने वाले अनेक चक्रवर्तियो के नामो से व्याप्त "वृषभ" नामक पर्वत है जो कि भरत क्षेत्र के वृषभाचल सदृश है।

प्रत्येक आर्यखड के मध्य मे एक-एक राजधानी है। क्षेमा, क्षेमपुरी, अरिष्टा, अरिष्टपुरि, खड्गा, मजूषा, ओषधि और पुण्डरीकिणी ये ८ राजधानिया सीता नदी के उत्तर तट पर स्थित है। सुसीमा, कुण्डला, अपराजिता, प्रभकरा, अकावती, पद्मावती, शुभा और रत्नसचया ये आठ नगरियाँ सीता नदी के दक्षिण तट पर है। अश्वपुरी, सिहपुरी, महापुरी, विजयापुरी, अरजा, विरजा, अशोका और वीतशोका ये ८ नगरिया सीतोदा के दक्षिण तट पर है। विजया, वैजयती, जयती, अपराजिता, चक्रा, खड्गा, अयोध्या और अवध्या ये ८ नगरियां सीतोदा के उत्तर तट पर है। ये नगरिया दक्षिण-उत्तर मे बारह योजन लबी और पूर्व-पश्चिम में नौ योजन विस्तीर्ण, सुवर्णमय प्राकार मे वेष्टित है। ये नगरियाँ एक हजार गोपुर द्वारो से पाचसौ अल्पद्वारो से तथा रत्नो से विचित्र कपाटो वाले सातसौ क्षुद्र द्वारो से युक्त है। इन में एक हजार चतुष्पथ, और बारह हजार रथ मार्ग है, ये अविनश्वर नगरिया अन्य किसी के द्वारा निर्मित नही है—अकृत्रिम है।

आर्य खण्ड का वर्णन:

कच्छा देश के अतर्गत आर्य खड मे 'क्षेमा' नामक नगरी है इस नगरी में चक्रवर्ती, तीर्थंकर, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव आदि महापुरुष उत्पन्न होते रहते हैं। अष्ट प्रातिहार्यो से सहित, चक्रवर्तियो से नमस्कृत तीर्थंकर देव के समवसरण, सप्तर्द्धि सपन्न गणधर सतत ही भव्यजीवो को मोक्ष का उपदेश देते रहते है, शरीर की अवगाहना पाच सौ धनुष है एव वहा के मनुष्यो की उत्कृष्ट आयु पूर्व कोटि प्रमाण है।

यहा विदेहो मे क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र ये तीन ही वर्ण होते है। परचक्र की नीति, अन्याय, अतिवृष्टि, अनावृष्टि से रहित इन देशो में शिव, ब्रह्मा, विष्णु, बुद्ध आदि के मदिर नही है।

विदेह क्षेत्र में कितनी चीजें हैं ?

विदेह क्षेत्र का विस्तार ३३६८४ $\frac{4}{19}$ योजन है। नीलपर्वत और मेरु के मध्य मे उत्तरकुरु है एव मेरु और निषध के मध्य में देवकुरु स्थित है। विदेह के विस्तार मे से मदरपर्वत के विस्तार को घटा कर आधा करने पर कुरुक्षेत्रो का विस्तार होता है। ३३६८४ $\frac{4}{19}$ —१००००—२= ११८४२ $\frac{2}{19}$ अर्थात् ग्यारह हजार आठ सौ व्यालीस योजन और एक योजन के उन्नीस भाग मे दो भाग प्रमाण है। कुरु क्षेत्र का वृत्त विस्तार ७११४३ $\frac{4}{19}$ तथा $\frac{1}{9 \times 19}$ इतना है। कुरुक्षेत्र की जीवा का प्रमाण ५३००० योजन है एव उसके धनुष का प्रमाण ६०४१८ $\frac{12}{19}$ योजन है।

मेरु की चारो ही विदिशाओ से सलग्न एव दोनो तरफ निषध-नील पर्वत से सलग्न चार गजदत है। देवकुरु के नैऋत्य कोण मे शाल्मलि वृक्ष एव उत्तर कुरु के ईशान मे जबूवृक्ष है। निषध पर्वत से सीतोदा एव नील से सीता नदी निकल कर पश्चिम-पूर्व विदेहो मे गई है। सीता सीतोदा के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण मे पाच-पाच सरोवर है। सीता सीतोदा के पूर्व-पश्चिम किनारो पर दो-दो यमकगिरि है। इन्ही सीता

सीतोदा की चारो दिशाओ मे दोनो किनारो पर एक-एक दिग्गज पर्वत होने से ८ दिग्गजेन्द्र पर्वत हैं। पूर्व पश्चिम विदेह मे सोलह वक्षार, बारह विभग नदिया, बत्तीस क्षेत्र, बत्तीस विजयार्ध, बत्तीस वृषभाचल एव बत्तीस राजधानिया हैं। दोनो तरफ दो-दो देवारण्य और भूतारण्य वन है। प्रत्येक क्षेत्र की गगा, सिधु एव रक्ता रक्तोदा ऐसी ६४ नदिया है। सीता सीतोदा की परिवार नदिया १६८००० है। विभगा मे प्रत्येक की परिवार नदिया २८००० है। गगा, सिंधु आदि मे प्रत्येक की परिवार नदियां १४००० है। गगा आदि के एव विभगा के उत्पत्ति स्थान के कुड १२+६४=७६ कुड है एव सीता सीतोदा के गिरने के स्थान मे दो कुण्ड है। पूर्व विदेह, के दक्षिण-उत्तर मे एव पश्चिम विदेह के दक्षिण-उत्तर मे सीमधर, युगमधर, बाहु, सुबाहु ऐसे चार तीर्थंकर सतत काल विद्यमान रहते है। इस प्रकार से अति सक्षेप में विदेह का वर्णन किया है।

नील पर्वत का वर्णन

दोनो विदेहो के उत्तर भाग मे निषध के समान नील पर्वत है। विशेष इतना है कि इस पर्वत पर स्थित कूटो, देव-देवियो, द्रहो के नाम अन्य हैं। सिद्ध, नील, पूर्व- विदेह, सीता, कीर्ति, नारो, अपरविदेह, रम्यक और अपदर्शन ऐसे नौ-कूट इस नील पर्वत पर है। इनमे से, प्रथम कूट पर सौमनस्थ जिनालय के सदृश जिन भवन है। शेषकूटो पर, व्यतर देवो के भवन हैं। सब व्यतर देव अपने अपने कूटो के नाम से सहित बहुत परिवार से युक्त, दश धनुष ऊचे, एक पल्य प्रमाण आयु वाले है।

केसरी सरोवर का वर्णन

नीलगिरि पर स्थित सरोवर 'केसरी' नाम वाला है जो तिगिन्छ के समान वर्णन से सहित है इस द्रह के मध्य मे रहने वाले कमल पर 'कीर्ति' देवी निवास करती है। इस देवी का सब परिवार धृतिदेवी के

सदृश है। यह देवी दश धनुष ऊंची और अनुपम लावण्य से परिपूर्ण है। यह ईशानेंद्र की देवी है।

रम्यक क्षेत्र का वर्णन

रम्यक क्षेत्र का वर्णन हरि क्षेत्र के सदृश अर्थात् मध्यम भोग भूमि रूप है। इसके बहुमध्य भाग मे पद्मनामक नाभिगिरि स्थित है। केसरी सरोवर के उत्तर द्वार से निकली हुई 'नरकाता' नदी उत्तर को ओर गमन करती हुई 'नरकात कुण्ड' में गिरकर उत्तर की ओर से निकलती है। पश्चात् यह नदी अर्धयोजन मात्र से नाभिगिरि को छोड़कर प्रदक्षिण क्रम से रम्यक क्षेत्र के मध्य से जाती हुई पश्चिम मुख होती हुई परिवार नदियो के साथ लवण समुद्र में प्रवेश करती है। अगले रुक्मि पर्वत के पुंडरीक द्रह के दक्षिण भाग से नारी नदी निकल कर नारी कुण्ड में गिर कर दक्षिण की ओर बहती हुई नाभिगिरि के पास से कुटिल रूप होती हुई पूर्व की तरफ मुडकर पूर्व समुद्र में प्रवेश कर जातो है।

रुक्मिपर्वत का वर्णन

रम्यक भोग भूमि के उत्तर भाग में रुक्मि पर्वत है। इसका सपूर्ण वर्णन महाहिमवान् के सदृश है। विशेष इतना है कि यहा उन कूट, द्रह, और देवियो के नाम भिन्न है। सिद्ध, रुक्मि, रम्यक, नरकांता, बुद्धि, रुप्य-कूला, हैरण्यवत और मणिकांचन ये आठ कूट रुक्मि पर्वत पर हैं। इनमे से प्रथम कूट पर जिन मदिर और शेष कूटो पर व्यतर देवों के प्रासाद है। ये देव अपने कूटो के नाम से विख्यात हैं। रुक्मि पर्वत के बहुमध्य में फूले हुये कमलों से सहित तिगिञ्छ द्रह के समान 'पुंडरीक' द्रह है। इस द्रह के मध्य कमल मे 'बुद्धि' देवी निवास करती है इसका परिवार कीर्ति देवी की अपेक्षा आधा अर्थात् २८०२३० सख्या प्रमाण है। यह भी ईशा-नेंद्र की देवी दश धनुष शरीरवाली, एव एकपल्य प्रमाण आयु वाली है। इस सरोवर के दक्षिण भाग से नारी नदी निकलकर रम्यक क्षेत्र मे गई है।

हैरण्यवंत क्षेत्र का वर्णन

यह हैरण्यवत क्षेत्र हैमवत के सदृश है इसमे जघन्य भोग भूमि की व्यवस्था है। यहा के भी द्रह, नाभिगिरि और नदियो के नाम भिन्न हैं। इस क्षेत्र के मध्य भाग में 'गधवान' नामक नाभिगिरि पर्वत है इसके ऊपर स्थित भवन में प्रभास नामक देव निवास करता है। पु डरीक सरोवर के उत्तर द्वार से रुप्यकूला नदी निकलकर 'रुप्यकूल' नामक कुण्ड में गिरती है। तत्पश्चात् वह इस कु ड के उत्तर द्वार से निकल कर उत्तर की ओर गमन करती हुई रोहित; नदीवत् नाभिगिरि की प्रदक्षिणा करके पश्चिम की ओर जाती है और परिवार नदियो से सयुक्त होती हुई लवण समुद्र मे प्रवेश कर जाती है। ऐसे ही शिखरी पर्वत के महापुण्रीक सरोवर के दक्षिण द्वार से सुवर्ण कूला नदी निकल कर सुवर्ण कूल कुण्ड मे गिरकर उसके दक्षिण तोरण द्वार से निकल कर दक्षिण मुखी होकर नाभिगिरि की प्रदक्षिणा करतो हुई हैरण्यवत क्षेत्र के अभ्यतर भाग मे से पूर्व दिशा की ओर जाकर जबूद्वीप सबंधो जगतो के बिल मे से पूर्व समुद्र मे प्रवेश करती है।

शिखरी पर्वत का वर्णन

इस क्षेत्र के उत्तर भाग में 'शिखरो' नामक अतिम कुल पर्वत है इसका वर्णन हिमवन् के सदृश है। विशेष यही है कि यहा कूट, द्रह, देव, देवी और नदियो के नाम भिन्न है। इस पर्वत पर प्रथम सिद्धकूट, शिखरी, हैरण्यवत, रसदेवी, रक्ता, लक्ष्मी, कांचन, रक्तवती, गधवती, ऐरावत और मणिकाचन ये ११ कूट है। इन ११ कूटो की ऊचाई पच्चीस योजन प्रमाण है। इनमे प्रथम कूट मे जिनेंद्र भवन, शेष कूटो पर कूटो के नाम वाले व्यतर देव देवियो के आवास है। इस शिखरी पर्वत के मध्य मे 'महापुडरीक' नामक दिव्य सरोवर है। इसके कमल भवन मे 'श्री' देवी के सदृश 'लक्ष्मी' देवी निवास करतो है वह ईशानेंद्र की देवो है। इस सरोवर के दक्षिण तोरण द्वार से निकलकर सुवर्णकूला नदी हैरण्यवत क्षेत्र मे चली गई है।

ऐरावत क्षेत्र का वर्णन

शिखरी पर्वत के उत्तर और जम्बूद्वीप की जगती के दक्षिण भाग में भरत क्षेत्र के सदृश ऐरावत क्षेत्र स्थित है। इस क्षेत्र के मध्य भाग में विजयार्ध पर्वत के ऊपर स्थित कूटो और नदियो के नाम भिन्न हैं। सिद्ध, ऐरावत, खण्डप्रपात, माणिभद्र, विजयार्ध, पूर्णभद्र, तिमिश्रगुह, ऐरावत और वैश्रवण ये नौ कूट यहाँ के विजयार्ध पर्वत पर है।

शिखरी पर्वत के ऊपर स्थित महापुण्डरीक द्रह के पूर्वद्वार से निकल कर 'रक्ता' नामक नदी रक्तकुण्ड मे गिरती है पुनः वह लवणसमुद्र मे प्रवेश करती है। उसी द्रह के पश्चिम तोरण द्वार से 'रक्तोदा' नदी निकलती है और रक्तोद कुण्ड मे गिरती है। पश्चात् वह कुण्ड से निकलकर पश्चिम मुख होती हुई अनेक नदियो से सहित होकर द्वीप की जगती के विल से लवणसमुद्र मे प्रवेश करती है। यहा ऐरावत क्षेत्र मे भी समुद्र की तरफ मध्य का आर्यखड है बाकी पाच म्लेच्छखड है उनमे भी मध्य के म्लेच्छखंड मे वृषभ पर्वत है। वहा के सभी चक्रवर्ती उस पर अपनी प्रशस्ति लिखते है। यहाँ ऐरावत के आर्यखड मे भी भरत के आर्य खड के समान छह कालो का परिवर्तन होता रहता है।

गंगा, रोहित्, हरित्, सीता, नारी, सुवर्णकूला और रक्ता ये सात नदिया पूर्वदिशा में जाती है। सिधु, रोहितास्या, हरिकान्ता, सीतोदा, नरकान्ता, रूप्यकूला और रक्तोदा ये सात नदिया पश्चिम समुद्र मे जाती है।

इस प्रकार सक्षेप से जबूद्वीप के क्षेत्र पर्वतो का वर्णन हुआ है। विशेष बात यह है कि भरत, हैमवत, हरि और विदेह का देवकुरु इनकी जैसी व्यवस्था है वैसी ही विदेह के उत्तर कुरु, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत क्षेत्रो की व्यवस्था है।

जंबूद्वीप की ३४ कर्मभूमि

भरत, ऐरावत और पूर्व विदेह, पश्चिम विदेह की ३२ ऐसी ३४ कर्मभूमियाँ है।

६ भोगभूमि

हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र में जघन्य भोगभूमि है। हरि और रम्यक क्षेत्र में मध्यम भोगभूमि है एव देवकुरु उत्तरकुरु मे उत्तम भोगभूमि है।

शाश्वत कर्मभूमि

बत्तीसो विदेहो मे हमेशा ही चतुर्थकालवत् रहता है यहा काल परिवर्तन नही होता। यहा के मनुष्यो की उत्कृष्ट आयु एक कोटिपूर्व एव शरीर की अवगाहना पाच सौ धनुष प्रमाण होती है। यहा के म्लेच्छखडों मे भी चतुर्थ काल ही रहता है।

षट्काल परिवर्तन

"भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्या" [तत्त्वार्थ सूत्र] इस सूत्र मे कहे गये अनुसार भरत और ऐरावत क्षेत्रो में ही उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के षट्कालो से मनुष्यो की आयु, अवगाहना आदि मे वृद्धि ह्रास होती रहती है। इन भरत ऐरावत क्षेत्रो के पाच-पाच म्लेच्छो मे ये काल परिवर्तन नही है केवल चतुर्थकाल के आदि से लेकर अंत तक ही परिवर्तन होता है और अंत से आदि तक चतुर्थ की आदि जैसा हो जाता है।

भरत क्षेत्र के आर्यखड मे अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी रूप काल की पर्यायें होती है। अवसर्पिणी काल मे मनुष्य एव तिर्यंचो की आयु, शरीर की ऊंचाई और विभूति इत्यादि सभी घटते रहते है एव उत्सर्पिणी मे बढ़ते रहते है।

जंबूद्वीपस्थ

नाम	ऊंचाई	विस्तार	वाण	उत्तर जीवा
१. क्षुद्र हिमवान्	१०० यो०	१०५२ $\frac{१२}{१९}$ यो०	१५७८ $\frac{१५}{१९}$ यो०	२४९३२ $\frac{१}{१९}$ यो०
२. महाहिमवान्	२०० ,,	४२१० $\frac{१०}{१९}$,,	७८९४ $\frac{१४}{१९}$,,	५३९३१ $\frac{६}{१९}$,,
३ निषध	४०० ,,	१६८४२ $\frac{२}{१९}$,,	३३१५७ $\frac{१७}{१९}$,,	९४१५६ $\frac{२}{१९}$,,
४. नील	४०० ,,	,,	,,	,,
५ रुक्मि	२०० ,,	४२१० $\frac{१०}{१९}$,,	७८९४ $\frac{१४}{१९}$,,	५३९३१ $\frac{६}{१९}$,,
६. शिखरी	१०० ,,	१०५२ $\frac{१२}{१९}$,,	१५७८ $\frac{१५}{१९}$,,	२४९३२ $\frac{१}{१९}$,,

जंबूद्वीपस्थ

नाम	विस्तार	वाण	उत्तर जीवा
१ भरत	५२६ $\frac{६}{१९}$ यो०	५२६ $\frac{६}{१९}$ यो०	१४४७१ $\frac{५}{१९}$ यो०
२ हैमवत	२१०५ $\frac{५}{१९}$,,	३६८४ $\frac{४}{१९}$,,	३६६७४ $\frac{१६}{१९}$,,
३ हरि	८४२१ $\frac{१}{१९}$,,	१६३१५ $\frac{५}{१९}$,,	७३९०१ $\frac{१७}{१९}$,,
४ विदेह	३३६८४ $\frac{४}{१९}$,,	५०००० ,,	१००००० ,,
५ रम्यक	८४२१ $\frac{१}{१९}$,,	१६३१५ $\frac{५}{१९}$,,	७३९०१ $\frac{१७}{१९}$,,
६ हैरण्यवत	२१०५ $\frac{५}{१९}$,,	३६८४ $\frac{४}{१९}$,,	३६६७४ $\frac{१६}{१९}$,,
७ ऐरावत	५२६ $\frac{६}{१९}$,,	५२६ $\frac{६}{१९}$,,	१४४७१ $\frac{५}{१९}$,,

छह कुल पर्वत

धनुषपृष्ठ	चूलिका	पार्श्वभुजा	द्रह	द्रह से निकली हुई नदिया	कूट संख्या
२५२३० ४/१९ यो०	५२३० ३/१९ ५/२ यो०	५३५० ३/१९ १/२ यो०	पद्म	१ गंगा २ सिंधु ३ रोहितास्या	११
५७२७३ १/१९ ०/२ ,,	८१२८ ५/१९ ,,	९२७६ १/१९ ६/२ ,,	महापद्म	१ रोहित २ हरिकान्ता	८
१२४३४६ २/१९ ,,	१०१२७ २/१९ ,,	२०१६५ ५/१९ ,,	तिगिन्छ	१ हरित २ सीतोदा	९
,,	,,	,,	केशरी	१ सीता २ नरकान्ता	९
५७२७३ १/१९ २/२ ,,	८१२८ ५/१९ ,,	९२७६ १/१९ ६/२ ,,	पुंडरीक	१ नारी २ रूप्यकूला	८
२५२३० ४/१९ ,,	५२३० ३/१९ ५/२ ,,	५३५० ३/१९ १/२ ,,	महापुंडरीक	१ सुवर्णकूला २ रक्ता ३ रक्तोदा	११

सात क्षेत्र

धनुषपृष्ठ	चूलिका	पार्श्वभुजा	काल भेद
१४५२८ ११/१९ यो०	१८७५ १३/३८ यो०	१८९२ १५/३८ यो०	सुषमासुषमादि ६
३८७४० १०/१९ ,,	६३७१ १५/३८ ,,	६७५५ ३/१० ,,	दुषमासुषमा
८४०१६ ४/१९ ,,	९९८५ १९/३८ ,,	१३३६१ ३/३८ ,,	सुषमा
१५८११३ ७/९ ,,	२९२१ ५८/१९ ,,	१६८८३ १७/३८ ,,	सुषमादुषमा
८४०१६ ४/१९ ,,	९९८५ ११/३८ ,,	१३३६१ ३/३८ ,,	सुषमा
३८७४० १०/१९ ,,	६३७१ १५/३८ ,,	६७५५ ३/१९ ,,	सुषमादुषमा
१४५२८ ११/१९ ,,	१८७५ १३/३८ ,,	१८९२ १५/३८ ,,	सुषमादुषमादि ६

दस कोड़ाकोडी सागर प्रमाण अवसर्पिणी और दस कोडाकोडी प्रमाण उत्सर्पिणी काल है। इन दोनो को मिलाने पर बीस कोडाकोडी सागरोपम का एक कल्पकाल होता है।

अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी मे से प्रत्येक के छह-छह भेद है। सुषमा-सुषमा, सुषमा, सुषमादुष्षमा, दुष्षमासुषमा, दुष्षमा और अतिदुष्षमा। इन छहो मे से प्रथम सुषमासुषमा चार कोडाकोडी सागर, सुषमा तीन कोडा-कोडी सागर, तीसरा काल दो कोडाकोडी सागर, चौथा ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोडाकोड़ी सागर, पचम दुष्षमाकाल इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण और छठा अतिदुष्षमा काल इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण है।

इनका परिवर्तन आरे के समान होता है अर्थात् प्रथम काल से छठे काल तक अवसर्पिणी पुन छठे काल से प्रथम काल तक उत्सर्पिणी चलती है।

प्रथमकाल का वर्णन

सुषमासुषमा नामक प्रथम काल में उत्तम भोग भूमि की व्यवस्था रहती है। इस काल मे वहाँ की भूमि रज, कण्टक, विकलत्रय से रहित होती है। वहाँ कल्हार, कमल आदि से मनोहर वापियाँ रत्नो की सीढियो से सहित रहती है। भोगभूमिजनो के सुन्दर भवन शय्या आसनो से रमणीय अनुपम है। वहां की पृथ्वी चार अगुल प्रमाण हरित घास से सहित पच वर्ण वाली मन नयनो को हरण करने वाली होती है वहा पर वापिका, कल्प-वृक्ष आदि से परिपूर्ण उन्नत पर्वत है वहा पर असज्ञी जीव नही है। परस्पर मे कलह विरोध, स्वामी भृत्य आदि भेद नही रहता है। ये युगलिया चौथे दिन बेर के बराबर आहार करते है यहा के स्त्री पुरुषो की ऊंचाई तीन कोस, आयु तीन पल्य प्रमाण होती है। प्रत्येक के पृष्ठ भाग मे दो सौ छप्पन हड्डियाँ होती है उत्तम सहनन, सस्थान से सहित मदकषायी, कवलाहार करते हुए भी मलमूत्र से रहित होते है। वहा के पानाग आदि दस प्रकार के कल्पवृक्ष उत्तम भोगोपभोग सामग्री को प्रदान करते रहते है। पानाग तूर्यांग, वस्त्राग, भषणाग, भोजनाग, आलयाग, दीपाग, भाजनाग, मालाग

और ज्योतिरंग जाति के कलवृक्ष अपने नामों के अनुसार ही फल देने वाले है। इन भोगभूमि के मनुष्यों का वल नौ हजार हाथी के प्रमाण होता है।

मिथ्यात्व से युक्त, मदकषायी दानादि में तत्पर मनुष्य और तिर्यंच भोग भूमि को प्राप्त करते है कदाचित् मनुष्य या तिर्यंच आयु का वध करके पुन: क्षायिक आदि सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाला मनुष्य इन भोगभूमियो मे जन्म ले लेता है।

भोगभूमि के मनुष्य और तिर्यचो मे आयु के नव मास शेष रहने पर उनकी माता को गर्भ रहता है और युगल वालक वालिका के जन्म लेते ही वे माता-पिता जभाई एव छीक से मरण को प्राप्त हो जाते हैं। मर कर के ये भोगभूमिज युगल भवनत्रिक से सौधर्म युगल तक देवगति मे जन्म ले लेते है। भोगभूमि के जन्मे वालयुगल अगूठा चूसने, वैठने, अस्थिर गमन करने, स्थिर गमन करने, कलागुणो की प्राप्ति, तारुण्य और सम्यक्त्व की योग्यता इनमे से प्रत्येक अवस्था मे क्रम से तीन-तीन दिन व्यतीत करते है अर्थात् २१ दिनो मे तरुण हो जाते हैं।

वहा के मनुष्य तिर्यंच मे कोई जाति स्मरण से कोई देवो से प्रतिबोधित होकर, कोई ऋद्धिधारी मुनियो के उपदेश से सम्यक्त्व को ग्रहण करते है। वे भोगभूमिज चौसठ कलाओ से सहित परस्पर के वैर विरोध से रहित मृदु मधुर भाषी होते हैं।

वहाँ के व्याघ्र आदि पशुगण मधुर कल्पवृक्षो के ही फलो का तृण, कद, अकुरादि का उपभोग करते है। मासाहारी नही है। यहा के जीव सुवर्ण की काति सदृश कान्ति वाले है काल के प्रारम्भ से अत तक यहा पर धीरे-धीरे आयु, शरीर की ऊचाई आदि मे ह्रास होने लगता है।

द्वितीयकाल का वर्णन

इस द्वितीय काल मे मध्यम भोग भूमि की व्यवस्था रहती है यहा के मनुष्यो की आयु दो पल्य और शरीर की अवगाहना दो कोस रहती है शरीर का वर्ण चन्द्रमा के सदृश धवल रहता है। इनके पृष्ठ भाग की

हड्डिया एक सौ अट्ठाईस रहती है उत्तम सस्थान एव संहनन से युक्त ये जीव तीन दिन मे बहेड़ा के समान आहार लेते है। इस काल के बाल युगल अगूठा आदि चूसने मे ५-५ दिन व्यतीत करते है अर्थात् ३५ दिनो मे तरुण होकर सम्यक्त्व ग्रहण के योग्य हो जाते है। वाकी वर्णन प्रथम कालवत् है। इसमे भी आयु बल आदि घटते जाते है।

तृतीय काल का वर्णन

ऊंचाई आदि घटते-घटते तृतीय काल प्रवेश करता है उस समय यहा पर जघन्य भोग भूमि की व्यवस्था रहती है। मनुष्यो के शरीर की ऊंचाई एक कोस, आयु एक पल्य है एव हड्डिया चौसठ होती है। इस काल में उत्तम सहनन आदि से युक्त मनुष्य एक दिन के अतराल से आवले के बराबर अमृतमय आहार लेते है। इस काल में उत्पन्न हुये बाल युगल अंगूठा चूसने मे सात दिन, बैठने मे सात दिन आदि से ४६ दिन मे सम्यक्त्व ग्रहण की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। इन भोग भूमियो मे शत्रु आदि की बाधाये, असि मषि आदि षट्कर्म, प्रचडशीत, उष्ण आदि बाधाये नही होती हैं। वहा के जीव सयम, देश संयम को ग्रहण नही कर सकते है।

कुलकरों की उत्पत्ति

इस तृतीय काल के अन्त में कुछ कम एक पल्योपम के आठवा भाग मात्र काल शेष रहता है तब 'प्रतिश्रुति' नामक प्रथम कुलकर जन्म लेता है। इसके शरीर का उत्सेध एक हजार आठ सौ धनुष, आयु पल्य के दसवे भाग प्रमाण, और देवी स्वयप्रभा नामक थी। उस समय समस्त भोग-भूमिज लोग चन्द्र और सूर्य के मण्डलो को देखकर ऐसा समझ कर डर गये कि "यह कोई आकस्मिक महा भयकर उत्पात हुआ है।"

तब प्रतिश्रुति नामक कुलकर ने उनको निर्भय करने के लिए बतलाया कि कालवश अब तेजांग जाति के कल्प-वृक्षो के किरण-समूह मद पड गये हैं इस कारण अब आकाश मे सूर्य-चन्द्र मण्डल प्रकट हुये हैं। इनकी

ओर से तुम लोगो को भय का कोई कारण नही है। आकाश मे यद्यपि इनका उदय और अस्त नित्य ही होता रहा है, किन्तु ज्योतिरग कल्पवृक्ष की किरणों से ये प्रकट नही दिखते थे। इस प्रकार के कुलकर के वचनों को सुनकर सभी जन निर्भय होकर उनकी पूजा स्तुति करते है।

इन प्रतिश्रुति कुलकर के क्रम से सन्मति, क्षेमकर, क्षेमंधर, सीमकर, सीमधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वी, अभिचन्द्र, चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित् और नाभिराय ये १४ कुलकर उत्पन्न हुये है जो कि क्रम से काल के वश से होने वाली एक-एक असुविधाओ को दूर करते रहे है। अतिम कुलकर श्री नाभिराय की पत्नी 'मरुदेवी' नाम की थी इनकी आयु एक पूर्व कोटि प्रमाण, शरीर उत्सेध पाच सौ धनुप एव वर्ण स्वर्ण के सदृश था।

उस समय बालकों का नाभिनाल अत्यत लम्बा होने लगा था इसलिए नाभिराय कुलकर उसके काटने का उपदेश देते हैं। इसके पहले आठवें मनु के समय माता-पिता पुत्र युगल को देखने लगते थे आगे सतान जीवित रहने पर उन्हे क्रीडा कराना, चुप करना आदि कार्य करने लगते थे। चौदहवे मनु के समय कल्पवृक्ष नष्ट हो गये तब प्रजाजन श्री नाभिराज कुलकर की शरण में आये और करुणापूर्वक नाभिराय ने आजीविका के लिये वनस्पति फल आदि खाने का उपदेश दिया।

प्रतिश्रुति को आदि लेकर नाभिराय पर्यंत ये चौदह मनु पूर्वभव में विदेह क्षेत्र के भीतर महाकुल में राजकुमार थे। वे सब सयम तप और ज्ञान से युक्त पात्रो के लिए दानादि देने में कुशल-अपने योग्य अनुष्ठान से सयुक्त, मार्दव आर्जव आदि गुणों से सहित होते हुये पूर्व में मिथ्यात्व सहित होने से मनुष्यायु का बध कर लिया, पश्चात् जिनेन्द्र भगवान के चरणो के समीप क्षायिक सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं।

अपने योग्य श्रुत को पढकर इन राजकुमारो में से कितने ही आयु के क्षीण होने पर अवधिज्ञान के साथ भोग भूमि मे मनुष्य होकर अवधि-

ज्ञान से और कितने ही जाति स्मरण से भोग भूमिज मनुष्यों को जीवन के उपाय बतलाते है इसलिये मुनीश्वरो के द्वारा ये 'मनु' कहे गये है ।

चतुर्थ काल का वर्णन

सुषमादुष्षमा नामक चतुर्थ काल मे चौरासी लाख पूर्व तीन वर्ष आठ मास और एक पक्ष शेष रहने पर भगवान ऋषभदेव का अवतार हुआ है और तृतीय काल मे तीन वर्ष आठ मास एक पक्ष के अवशिष्ट रहने पर ऋषभ देव सिद्ध पद को प्राप्त हुये है ।

त्रेसठ शलाका पुरुष

अब यहा से आगे पुण्योदय से भरत क्षेत्र मे मनुष्यो मे श्रेष्ठ और सपूर्ण लोक मे प्रसिद्ध त्रेसठ शलाका पुरुष उत्पन्न होने लगते हैं । चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नव बलभद्र, नव वासुदेव और नव प्रति वासुदेव ये त्रेसठ शलाका पुरुष है । नाभिराय के पुत्र श्री वृषभ देव प्रथम तीर्थंकर हुये है ऐसे ही महावीर पर्यंत चौबीस तीर्थंकर धर्म तीर्थ के प्रवर्तक है । भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्ति, कुथु, सुभौम, पद्म, हरिषेण, जयसेन और ब्रह्मदत्त ये बारह चक्रवर्ती हुये है ।

विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नदी, नन्दिमित्र, राम और पद्म ये नव बलभद्र हुये है। त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयभू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुडरीक, दत्त, लक्ष्मण और कृष्ण ये नव नारायण है । अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधुकैटभ, निशुभ, बलि, प्रहरण, रावण और जरासध ये नव प्रतिनारायण हैं । ये भरत क्षेत्र के तीर्थंकर पंच महा कल्याण से पृथ्वी तल पर विख्यात रहते हैं ।

इस हुडावसर्पिणी के निमित्त से नौ रुद्र एव नव नारद भी उत्पन्न होते हैं । इन सबका विस्तृत वर्णन तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ से देख लेना चाहिए ।

चौबीस तीर्थंकरो के समयो मे अनुपम आकृति के धारक बाहुबलि को प्रमुख करके चौबीस कामदेव होते है ।

तीर्थंकर उनके माता-पिता, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, प्रतिनारायण, रुद्र, नारद, कामदेव और कुलकर पुरुष यह सब भव्य होते है, नियम से सिद्ध पद को प्राप्त करते है। तीर्थंकर तो उसी भव से मोक्ष प्राप्त करते है अन्यो के लिए उसी भव का नियम नही है।

भगवान ऋषभ देव के मुक्त हो जाने के पश्चात् लाख करोड़ सागरों के बीतने पर अजितनाथ तीर्थंकर ने मोक्ष पद प्राप्त किया। भगवान् ऋषभ देव ने तीसरे काल मे ही मोक्ष प्राप्त किया है और भगवान् के समय तृतीय काल में ही कर्म भूमि की व्यवस्था हो गयी थी। यह बात केवल इस हुडावसर्पिणी के निमित्त से ही हुई है।

पंचम काल का वर्णन

चतुर्थ काल में तीन वर्ष, आठ मास, एक पक्ष अवशिष्ट रहने पर श्री वीर प्रभु सिद्ध पद को प्राप्त हुये है। अर्थात् वीर भगवान के निर्वाण होने के पश्चात् तीन वर्ष, आठ मास और एक पक्ष के व्यतीत हो जाने पर दुष्षमाकाल नामक पचम काल प्रवेश करता है। इस पचम काल के प्रवेश मे मनुष्यो की उत्कृष्ट आयु एक सौ बीस वर्ष, ऊचाई सात हाथ, और पृष्ठ भाग में हड्डिया चौबीस होती है। जिस दिन भगवान् महावीर स्वामी मुक्त हुये उसी दिन गौतम गणधर को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। गौतम स्वामी के मुक्त होने के बाद सुधर्म स्वामी, उनके बाद जबू स्वामी केवली हुये। ये सब चतुर्थ काल के ही जन्म लेने वाले है। जबू स्वामी के मोक्ष जाने के पश्चात् अन्य कोई मोक्ष नही गये।

अनतर ग्यारह अग चौदह पूर्व के पारगत श्रुतकेवली, कुछ-कुछ अगों के धारक, पुन. अगो के अश के धारक आचार्य परमेष्ठी होते रहे है। आज भी श्रमण परम्परा को अक्षुण्ण रखने वाले दिगवर मुनिराज विहार कर रहे है। इस दुष्षम काल में मनुष्यो की आयु, ऊचाई, धर्म आदि का ह्रास होता रहता है। आगे इस काल के अन्त में इक्कीसवा कल्की उत्पन्न होता

है उसके समय में 'वीरांगज' नामक एक मुनि, 'सर्वश्री' नामक आर्यिका, अग्निदत्त श्रावक और पगुश्री श्राविका होगी। एक दिन कल्की अपने मन्त्रियों से कहता है कि मन्त्रिवर ! ऐसा कोई पुरुष तो नही है जो मेरे वश में न हो। तव मत्री कहता है कि हे राजन् ! एक मुनि आपके वश में नही है। तब कल्की राजा की आज्ञा होती है कि तुम उस मुनि के आहार के प्रथम ग्रास को शुल्क के रूप मे ग्रहण करो। तत्पश्चात् कल्की की आज्ञा से प्रथम ग्रास के मागे जाने पर मुनीद्र तुरन्त उसे देकर और अतराय करके वापस चले आते हैं एव अवधि ज्ञान को भी प्राप्त हो जाते हैं उसी समय मुनिराज आर्यिका और श्रावक, श्राविका को वुलाकर प्रसन्नचित्त से कहते हैं कि अव दुष्षमा काल का अन्त आ चुका है, तुम्हारी और हमारी तीन दिन की आयु शेष है और यह अन्तिम कल्की हे।

तव वे चारो जन चार प्रकार के आहार और परिग्रहादि को जन्म-पर्यत छोडकर सन्यास को ग्रहण कर लेते है। वे सब कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष के अन्त मे—अमावस्या के दिन स्वातिनक्षत्र मे सूर्य के उदित रहने पर सन्यास को धारण करके समाधिमरण को प्राप्त कर लेते है। और सौधर्म स्वर्ग मे देव हो जाते है। उसी समय मध्यान्ह काल मे क्रोध से सहित कोई असुरकुमार जाति का उत्तम देव कल्की राजा को मार डालता है और सूर्यास्त समय अग्नि नष्ट हो जाती है। यह कल्की धर्मद्रोह से मरकर पहली नरक पृथ्वी मे चला जाता है।

छठे कला का वर्णन

इसके बाद तीन वर्ष आठ माह और एक पक्ष के बीत जाने पर महाविषम अतिदुष्षमा नामक छठा काल प्रविष्ट होता है। इस काल के प्रवेश मे शरीर की ऊचाई अथवा साढे तीन हाथ पृष्ठ भाग की हड्डिया बारह और उत्कृष्ट आयु बीस वर्ष प्रमाण होती है। उस काल मे सव मनुष्यों का आहार मूल, फल और मत्स्य आदि होते हैं। उस समय मनुष्यो को वस्त्र, वृक्ष, मकान आदि दिखाई नही देते है। अतः सभी मनुष्य नगे और

भवनों से रहित होकर वनो में घूमते हैं। उस समय के लोग सर्वांग धूम्रवर्ण, पशुवत आचरण करने वाले, क्रूर, वहिरे, अन्धे, काने, गूगे, दारिद्रय एवं क्रोध से परिपूर्ण, दीन, हुडक सस्थान युक्त, कुवड़े, वौने, व्याधि वेदना से विकल, लोभ मोहयुक्त, पापिष्ठ, स्वजन, पुत्रकलत्र से रहित, दुर्गंध युक्त होते हैं।

इस छठे काल मे ये जीव नरक तिर्यंच गति से आते हैं और नरक तिर्यंच गति में ही जाते हैं। दिन प्रतिदिन इन जीवो की आयु, वल, ऊचाई आदि हीन होते जाते हैं।

उनचास दिन कम इक्कीस हजार वर्षों के वीतने पर जतुओ को भय-दायक घोर प्रलय काल प्रवृत होता है। उस समय महागभीर एव भीषण संवर्तक वायु चलती है जो सात दिन तक वृक्ष पर्वत और शिला प्रभृति को चूर्ण करती है। इससे वहा के मनुष्य तिर्यंचो को महादु ख प्राप्त होता है तथा वे वस्त्र और स्थान की अभिलापा करते हुए वहुत प्रकार से विलाप करते हैं। इस समय पृथक्-पृथक् सख्यात व वहत्तर युगल गगा, सिंधु नदियो की वेदी और विजयार्ध वन के मध्य मे प्रवेश करते है। इसके अतिरिक्त देव और विद्याधर दयाद्र होकर मनुष्य और तिर्यंचो मे से सख्यात जीव राशि को उन प्रदेशो मे ले जाकर रखते है।

उस समय गम्भीर गर्जना से युक्त मेघ सात-सात दिन तक हिम आदि की वर्पा करते हैं क्रमश उनके नाम—वर्फ, क्षार जल, विपजल, धूम्र, धूलि, वज्र, और अग्नि है। इन वज्र, अग्नि आदि की वर्पा से इस भरत क्षेत्र के भीतरआर्य खड मे चित्रा पृथ्वी के ऊपर स्थित वृद्धिगत हुई एक योजन की भूमि जलकर नष्ट हो जाती है। अर्थात् यहां के आर्य खड की चित्रा पृथ्वी एक योजन तक ऊची उठ गई है वह जलकर खाक होकर शेष भूमियो के समान हो जाती है। इस छठे काल के अन्त के मनुष्यो की ऊचाई एक हाथ, आयु सोलह वर्ष प्रमाण रहती है। इस प्रकार इक्कीस हजार वर्ष का यह काल समाप्त हो जाता है।

उत्सर्पिणी का प्रथम काल

इसके पश्चात् उत्सर्पिणी इस नाम से विख्यात काल प्रवेश करता है। इसके छह भेदो मे से प्रथम अतिदुष्षमा, दुष्षमा, दुष्षमसुषमा, सुषमदुष्षमा, सुषमा और सुषमा, सुषमा काल क्रम से आते है। प्रथम अतिदुष्षमा काल छठे काल के सदृश छठा ही काल ही कहलाता है। उत्सर्पिणी काल के प्रारम्भ मे पुष्कर मेघ सात दिन तक सुखोत्पादक जल बरसाते है। जिससे वज्राग्नि से जली हुई पृथ्वी उत्तम हो जाती है। पुन. क्षीर और मेघ क्षीर जल बरसाते है, अमृत मेघ अमृत जल बरसाते है और रस मेघ दिव्यरस की वर्षा करते है विविध रसपूर्ण औषधियो से भरी हुई भूमि सुस्वाद परिणत हो जाती है। पश्चात् शीतल गंध को ग्रहण कर वे मनुष्य और तिर्यंच गुफाओ के बाहर निकल आते है। दिन प्रतिदिन उनकी आयु, अवगाहना बुद्धि, तेज, बाहुबल, क्षमा, धैर्य इत्यादि बढ़ते जाते है। इस प्रकार इक्कीस हजार वर्षो के बीत जाने पर भरत क्षेत्र मे अतिदुष्षमा नामक काल पूर्ण होता है।

द्वितीय काल

पुनः दुष्षमाकाल प्रवेश करता है। इस काल मे मनुष्य तिर्यंचो का आहार बीस हजार वर्ष तक पहले के समान रहता है। इस काल के प्रथम प्रवेश मे उत्कृष्ट आयु बीस वर्ष और ऊचाई तीन हाथ प्रमाण होती है। इस काल मे एक हजार वर्षो के शेष रहने पर भरत क्षेत्र मे चौदह कुलकरो की उत्पत्ति होने लगती है। उनमे कनक, कनकप्रभ आदि कुलकरो मे अन्तिम कुलकर पद्मपुगव नाम के होते है। इनमे से प्रथम कुलकर की ऊचाई चार हाथ और अन्तिम कुलकर की ऊचाई सात हाथ होती है। उस समय श्रेष्ठ औषधि, वनस्पति आदि के होते हुए भी अग्नि नही रहती है अतः मथ करके अग्नि उत्पन्न करो, अन्न पकाओ, आदि रूप से शिक्षा देते है। वे पुरुष अत्यन्त म्लेच्छ होते है। विशेष यह है कि पद्मपुगव कुलकर के समय से विवाह विधिया प्रचलित हो जाती है।

तृतीय काल

चतुर्थ काल के प्रवेश में ऊचाई सात हाथ और आयु एकसौ बीस वर्ष प्रमाण होती है। इस समय मनुष्य के पृष्ठ भाग की हड्डिया चौबीस होती है। तथा मनुष्य पाचवर्ण वाले शरीर से युक्त, मर्यादा, विनय लज्जा से सहित, सतुष्ट और सम्पन्न होते है। इस काल मे चौबीस तीर्थंकर होते है उनमे से अन्तिम कुलकर का पुत्र अन्तिम तीर्थंकर होता है उस समय से यहा विदेह क्षेत्र जैसी वृत्ति होने लगती है।

महापद्म सुरदेव से लेकर अनतवीर्य पर्यंत चौबीस तीर्थंकर होते है। इनमे से प्रथम तीर्थंकर की ऊचाई सात हाथ और आयु एक सौ सोल६ वर्ष प्रमाण होती है तथा अन्तिम तीर्थंकर की आयु एक पूर्वकोटि और ऊचाई पाच सौ धनुष प्रमाण होती है।

इस काल मे वारह चक्रवर्ती, नव बलभद्र, नव नारायण, नव प्रति नारायण उत्पन्न होते है। ये त्रेसठ शलाका पुरुष एक कोडा-कोडी सागरोपम प्रमाण इस तृतीय काल मे क्रम से उत्पन्न होते है। यह काल ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोडा-कोडी सागर प्रमाण है। इस काल के अन्त मे मनुष्यो की आयु एक पूर्व कोटि प्रमाण, ऊचाई पाच सौ पच्चीस धनुष और पृष्ठ भाग की हड्डिया चौसठ होती है इस समय नर नारी देव एव अप्सराओ के सदृश होते है।

चतुर्थ काल

इसके वाद सुषम दुष्षमा काल के प्रारम्भ मे मनुष्यों की आयु एक पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण होती है। उस समय उन मनुष्यो की ऊचाई पाच सौ धनुप प्रमाण होती है, पुन. क्रम से उत्तरोत्तर आयु और ऊचाई प्रत्येक काल के बल से वढती ही जाती है। इस समय यह पृथ्वी जघन्य भोग भूमि कही जाती है। इस काल के अन्त मे मनुष्यो की आयु एक पल्य प्रमाण होती है उस समय वे सब मनुष्य एक कोस ऊचे और प्रियगु जैसे वर्ण के होते है। उस समय मे यहा पर कल्पवृक्ष उत्पन्न होने लगते है।

पंचम काल

इसके बाद पाचवा सुषमा नामक काल प्रवेश करता है। इस काल के प्रथम प्रवेश मे मनुष्य तिर्यंचो की आयु आदि पूर्व के ही समान होती है परन्तु काल स्वभाव से उत्तरोत्तर बढती जाती हैं। उस समय के नर-नारी दो कोस ऊचे, पूर्ण चन्द्रमा के सदृश मुख वाले, बहुत विनय एव शील से सम्पन्न होते है एव मनुष्यो के पृष्ठ भाग की हड्डिया एक सौ अट्ठाईस है। इस समय यहा पर मध्यम भोग भूमि की व्यवस्था रहती है।

छठे काल का वर्णन

तदनन्तर सुषमसुषमा नाम छठा काल प्रविष्ठ होता है काल स्वभाव से मनुष्य तिर्यंचो की आयु, अवगाहना आदि आगे-आगे बढ़ती जाती हैं। उस समय यह पृथ्वी उत्तम भोग भूमि के नाम से प्रसिद्ध हो जाती है। उस काल के अन्त मे मनुष्यो की आयु तीन पल्य प्रमाण, और ऊचाई तीन कोस, प्रमाण है उस समय के मनुष्य सूर्य के समान स्वर्ण वर्ण वाले है। उन मनुष्यो की पृष्ठ भाग की हड्डियाँ दो सौ छप्पन होती है तथा वे बहुत परिवार की विक्रिया करने मे समर्थ ऐसी शक्तियो से सयुक्त होते है।

इस प्रकार से फिर नियम से वही अवसर्पिणी काल प्रवेश करता है। इस प्रकार आर्य खड मे छह काल प्रवर्तते रहते है।

भरत ऐरावत के म्लेच्छ खंडों की व्यवस्था

पाच म्लेच्छ खड और विद्याधर श्रेणियो मे अवसर्पिणी एव उत्सर्पिणी मे क्रम से चतुर्थ और तृतीय काल के प्रारम्भ से अत तक हानि व वृद्धि होती रहती है अर्थात् इन स्थानो मे अवसर्पिणी मे चतुर्थ काल के प्रारम्भ से अन्त तक हानि और उत्सर्पिणी काल मे तृतीय काल के प्रारम्भ से अन्त तक वृद्धि होती ही रहती है। यहा अन्य कालो की प्रवृत्ति नही होती हैं।

भरत और ऐरावत क्षेत्र मे अरहठ की घड़ी के समान अवसर्पिणी

ग्रौर उत्सर्पिणी काल अनंतानत होते है। असख्यात अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी की शलाकाओ के बीत जाने पर 'हुडावसर्पिणी नाम से प्रसिद्ध एक काल आता है जो कि आजकल चल रहा है। इस हुडावसर्पिणी काल के भीतर सुषम दुषमा काल की स्थिति में से कुछ काल के अवशिष्ट रहने पर भी वर्षा आदि पडने लगती है और विकलत्रय जीवो की उत्पत्ति होने लगती है। इसके अतिरिक्त इसी काल मे कल्प वृक्षो का अन्त और कर्मभूमि का व्यापार प्रारम्भ हो जाता है उस काल मे प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्र-वर्ती भी उत्पन्न हो जाते है। चक्रवर्ती का विजय भग और थोड़े से ही जीवो का मोक्ष गमन, चक्रवर्ती द्वारा की गयो द्विजो के वश की उत्पत्ति होती है। दुषमसुषमा काल में अट्ठावन ही शलाका पुरुष होते हैं और मध्य मे धर्म तीर्थं की व्युच्छित्ति भी होती है।

ग्यारह रुद्र और कलहप्रिय नौ नारद होते है तथा इसके अतिरिक्त सातवे तेइसवें और अतिम तीर्थंकर के ऊपर उपसर्ग भी होता है। तृतीय, चतुर्थ, पचम काल मे उत्तम धर्म को नष्ट करने वाले दुष्ट पापिष्ठ; कुदेव, कुलिगी भी दिखने लगते है। चाण्डाल. शबर, पुलिद, किरात इत्यादि जातियाँ उत्पन्न होती है तथा दुषमकाल मे ब्यालीस कल्की व उपकल्की होते है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूवृद्धि, भूकम्प, वज्राग्नि आदि विचित्र भेदों को लिये हुये नाना प्रकार के दोष इस हुडावसर्पिणी काल मे हुआ करते है।

जबू द्वीप की सभी चीजों का उपसंहार

जबू द्वीप मे तीन सौ ग्यारह पर्वत है जिनका स्पष्टीकरण—

सुमेरु	१
कुलाचल	६
यमक	४
काचनगिरि	२००
दिग्गज पर्वत	८
वक्षार पर्वत	१६

गजदत पर्वत	४
विजयार्ध	३४
वृषभाचल	३४
नाभिगिरि	४

१+६+४+२००+८+१६+४+३४+३४+४=३११

जंबूद्वीप में नब्बे कुंड है

गगा, सिन्धु आदि चौदह नदिया कुलाचल से जहा पर गिरती है वहा पर कु ड है अत. गगादि के कुंड १४, विभगा नदी जिनसे उत्पन्न होती है ऐसे उन निषध नील की तलहटी मे होने वाले कुण्ड १२, प्रत्येक विदेह मे गगा सिंधु और रक्ता रक्तोदा नदिया निषध नील की तलहटी के कुण्डो से निकली है ऐसी इन चौसठ नदियो के कुण्ड ६४ ये १४+१२+६४=९० कु ड हैं।

छब्बीस सरोवर

कुलाचलो पर पद्म, महापद्म आदि ६, सीता नदी के १०, और सीतोदा नदी के १०, ऐसे ६+१०+१०=२६ सरोवर है।

प्रमुख नदियां

गगा सिंधु आदि १४, विभगा नदी १२, विदेह की गगा सिंधु आदि ३२ एव रक्ता रक्तोदा ३२, १४+१२+६४=९० नदिया हैं।

परिवार नदियां

गगा सिन्धु, रक्ता रक्तोदा	१४००० × ४ = ५६०००
रोहित् रोहितास्या, सुवर्ण, रुप्यकूला,	२८००० × ४ = ११२०००
हरित् हरिकाता, नारी नरकाता	५६००० × ४ = २२४०००
सीता, सीतोदा	८४००० × २ = १६८०००
विभगा नदी १२ है उनकी परिवार नदी	२८००० × १२ = ३३६०००
गंगा, सिन्धु, रक्ता, रक्तोदा, ६४ हैं इनकी	१४००० × ६४ = ८९६०००

५६०००+११२०००+२२४०००+१६८०००+३३६०००+८९६०००= १७९२००० परिवार नदी है। इनमे मुख्य ९० नदी मिलाने से १७९,००० +९०=१७९२०९० नदियां जवूदीप में है।

जंबूद्वीप में वेदियां और उपवन खंड

जवूद्वीप मे तीन सौ ग्यारह पर्वत है उनकी उतनी ही मणिमयी वेदी है अर्थात् ६ कुलाचल, ३४ विजयार्ध १६ वक्षार और ४ गजदत। इन पर्वतों के दोनो पार्श्व भागो मे मणिमयी वेदी हैं बाकी के काचनगिरि, यमकगिरि आदि पर्वत गोल हं अत. इनके चारो तरफ वेदी हैं। छब्बीस सरोवर हैं उनकी उतनी ही मणिमयी वेदी है। नब्बे कुण्ड है उनकी उतनी ही मणिमयी वेदी हैं। जवूद्वीप की सभी नदिया १७९२०९० है इनके दोनो पार्श्वभागो मे वेदी होने से इन्हे दूना करने से ३५८४१८० वेदिया है। पर्वतो के मूल मे अर्थात् वेदी के अदर तलहटी मे वन खड हैं एव पर्वतो के शिखर पर वेदी से वेष्टित वन खड है। सरोवरो के कुण्डो के चारो तरफ वेदी से वेष्टित वन खड है। कुलाचल, विजयार्घ, वक्षार और गजदत इनकी लवाई का जितना प्रमाण है उतनी लवाई प्रमाण उपर्युक्त वेदी से वेष्टित $\frac{१}{२}$ योजन चौडे वन खंड है। नदियो के दोनो पार्श्व भाग मे नदी के दूने प्रमाण वनखड हैं। सर्वत्र वनखड की वेदी पाच सौ धनुष चौडी एवं दो कोस ऊची है। सर्वत्र वनखड $\frac{१}{२}$ योजन चौडे है। जैसे उद्यान के चारो तरफ विना कगूरे के भित्ति रहती है वैसे ही यहा वेदियो का आकार समझना।

सात क्षेत्र

भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये मुख्य सात क्षेत्र हैं। इनमे भरत का विस्तार ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन है आगे-आगे चौगुणे-चौगुणे है। विदेह से आगे की व्यवस्था दक्षिण के सदृश है। हैमवत हैरण्यवत मे जघन्य भोगभूमि, हरि, रम्यक मे मध्यम भोगभूमि एवं विदेह के देवकुरु उत्तरकुरु मे उत्तम भोगभूमि है। भरत ऐरावत और विदेह मे कर्म-

भूमि व्यवस्था है। विजयार्ध, गगा-सिन्धु और रक्तार-रक्तोदा के निमित्त से इनमें छह-छह खड हो गये है इनमे मध्य मे आर्य खड एव शेष पाच म्लेच्छ खड है।

बत्तीस विदेह

विदेह के बीचोबीच मे सुमेरु पर्वत है इसलिये पूर्व-पश्चिम विदेह से दो भेद हुये है क्योकि दक्षिण उत्तर मे देवकुरु-उत्तरकुरु है। एव नील निषध से सीता सीतोदा नदी ने निकलकर पूर्व पश्चिम मे विदेह के दो-दो टुकडे कर दिये। पुन सोलह वक्षार और १२ विभगा नदियो से इन ४ विदेह के ३२ टुकडे हो गये है। इन बत्तीसों मे बत्तीस आर्यखड हैं।

३४ कर्मभूमि

भरत, ऐरावत और विदेह के प्रत्येक के एक-एक आर्यखड है उन्ही मे कर्मभूमि की व्यवस्था है। अतः ३४ कर्मभूमि है।

६८ विद्याधर श्रेणियां

भरत ऐरावत और बत्तीस विदेह इनमे बीचोबीच में एक-एक विजयार्ध है उन विजयार्धो मे दक्षिण उत्तर दोनो तरफ विद्याधर श्रेणिया है। इनमे भरत क्षेत्र के विजयार्ध के दक्षिण में ५० नगरी एव उत्तर मे ६० नगरिया है ऐसे ही ऐरावत के विजयार्ध के दक्षिण मे ६० और उत्तर मे ५० नगरियां है। विदेह के विजयार्ध के दोनो तरफ ५५-५५ नगरिया है प्रत्येक विजयार्ध मे दो-दो श्रेणिया होने से ३४×२=६८ है।

१७० म्लेच्छ खंड

प्रत्येक ३४ कर्मभूमि क्षेत्र सबधी ५-५ म्लेच्छ खड होने से ३४×५=१७० म्लेच्छ खड है। इनमे जो मनुष्य है उनके आचार विचार क्षत्रियोचित है, किन्तु संस्कार और धर्म से रहित है और म्लेच्छखड मे जन्म लेने से क्षेत्र म्लेच्छ है इसलिये ये म्लेच्छ कहलाते है।

६ भोग भूमि

हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र में जघन्य भोगभूमि, हरि और रम्यक क्षेत्र में मध्यम भोगभूमि एव विदेह के देवकुरु उत्तरकुरु मे उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था है।

जंबूद्वीप के पर्वतों के कूट

जवूद्वीप मे ५६८ कूट माने गये है। हिमवान पर ११ कूट, महाहिमवान पर ८, निषध पर ९, ऐसे ही नील पर ९, रुक्मि पर ८, शिखरी पर ११ है। प्रत्येक विजयार्ध पर नौ-नौ कूट हैं, प्रत्येक वक्षार पर ४-४ कूट है। गजदत पर्वतो मे से दो पर ७-७ एव दो पर ९-९ हं। इत्यादि।

जंम्बूद्वीप के चैत्यालय

जवूद्वीप मे अठत्तर चैत्यालय है।

सुमेरु के	१६	
कुलाचल के	६	
विजयार्ध के	३४	१६+६+३४+१६+४+२=७८ है।
वक्षार के	१६	
गजदत के	४	
जवू, शाल्मलिवृक्ष के	२	

जंवूद्वीप मे दो वृक्ष

जवूद्वीप के देवकुरु मे आग्नेय दिशा मे शाल्मलि वृक्ष है एव उत्तरकुरु की ईशान दिशा मे जवू वृक्ष है। प्रत्येक के परिवार वृक्ष १४०१२० है। इन सवमे जिन भवन हैं। उन सव जिन प्रतिमाओ को हमारा नमस्कार होवे।

जंबूवृक्ष के परिवार वृक्ष

जवूवृक्ष को घेरे हुए १२ वेदिका हैं उनके अतराल मे जवू वृक्ष के परिवार वृक्ष हैं।

१ वेदिका मे	वन उपवन आदि
२ ,,	उपवन पुष्करिणी आदि

३ ,,	१०८ जवूवृक्ष
४ ,,	४ ,,
५ ,,	वापियाँ आदि
६ ,,	वन खंड
७ ,,	१६००० वृक्ष
८ ,,	४००० ,,
९ ,,	३२००० ,,
१० ,,	४०००० ,,
११ ,,	४८००० ,,
१२ ,,	७ ,,

१०८+४+१६०००+ ४०००+३२०००+४०००० ४८०००+७=१४०११९ +१=१४०१२० जवूवृक्ष इतने ही प्रमाण शाल्मलो वृक्ष है।

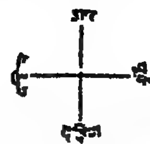
श्री देवी के परिवार कमल

श्री देवी	१	कमल
सामानिक देव	४०००	,,
आत्मरक्षक देव	१६०००	,,
अभ्यतर पारिषद	३२०००	,,
मध्य पारिषद	४००००	,,
बाह्य पारिषद	४८०००	,,
अनीक देव	७	,,
प्रतीहार आदिदेव	१०८	,,

४०००+१६०००+३२००० +४००००+४८०००+७ +१०८=१४०११५+१= १४०११६ कमल है। इनसे अतिरिक्त क्षुद्र कमल अनेको है।

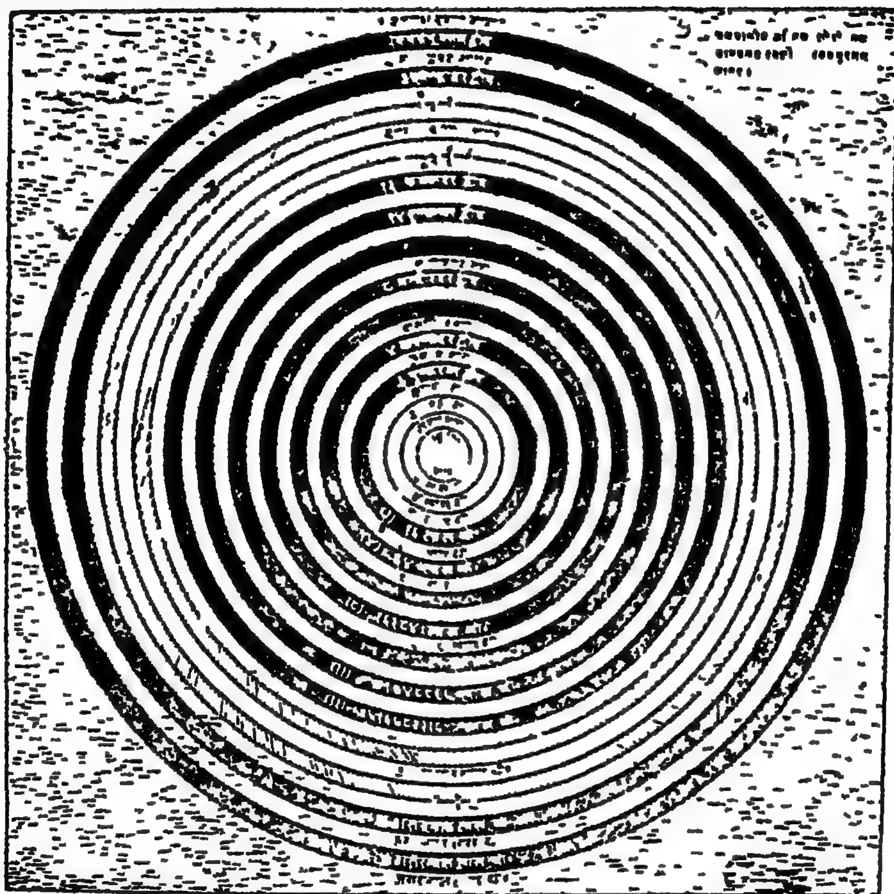
इन परिवार कमलों से दूने प्रमाण 'ह्री देवी' के परिवार कमल है। अर्थात् २८०२३० परिवार कमल ह्री देवी के परिवार हैं एव धृति देवी के इनसे दूने ५६०४६० परिवार कमल हैं। ऐसे कीर्ति के इतने ही है इनसे आधे बुद्धि के उनसे आधे लक्ष्मी के परिवार कमल हैं।

मध्य लोक सामान्य



द्वीप सागरो के नाम   दे.लोक /५//

सकेत यो० = योजन



नोट — त्रस नाली में ऊपर की ओर से देखने पर ऐसा दिखाई देता है।

लवण सागर

दृष्टि भेद सूर्य व चन्द्र द्वीपो को कोई आचार्य मानते है और कोई नही
नोट सागर के ऊपर आकाश मे [illegible] देवो की [illegible] है

क्रम	[illegible]		[illegible]	
	[illegible] यो०	[illegible] यो०	[illegible] यो०	[illegible] यो०
१	५००	[illegible]	[illegible]	[illegible]
२	[illegible]	[illegible]	[illegible]	५५०
३	६०	५५०	५००	६००
४	२५	५००	२५	५००

कुमानुष द्वीपोके अवस्थान क्रम —
दोनो तटोपर तटसे [illegible] अन्तराल छोड़कर चार चार द्वीप चारो दिशाओमे, चार चार विदिशाओमे, आठ आठ अन्तर दिशाओमे, और आठ आठ विजयार्धो तथा हिमवान व शिखरी पर्वतोके प्रणिधि भागोमे स्थित है।
विशेष दे० चित्र स० १२ तथा लोऊ/४१

लवण समुद्र का वर्णन

लवण समुद्र जबूद्वीप को चारो ओर से घेरे हुये खाई के सदृश गोल है इसका विस्तार दो लाख योजन प्रमाण है। एक नाव के ऊपर अधोमुखी दूसरी नाव के रखने से जैसा आकार होता है उसी प्रकार वह समुद्र चारो ओर आकाश मे मण्डलाकार से स्थित है। उस समुद्र का विस्तार ऊपर दस हजार योजन और चित्रापृथ्वी के समभाग मे दो लाख योजन है। समुद्र के नीचे दोनो तटो में से प्रत्येक तट से पचानवे हजार योजन प्रवेश करने पर दोनो ओर से एक हजार योजन की गहराई मे तल विस्तार दस हजार योजन मात्र है।

समभूमि से आकाश में इसकी जलशिखा है यह अमावस्या के दिन समभूमि से ११००० योजन प्रमाण ऊची रहती है। वह शुक्ल पक्ष मे प्रति-दिन क्रमश वृद्धि को प्राप्त होकर पूर्णिमा के दिन १६००० योजन प्रमाण ऊची हो जाती है। इस प्रकार जल के विस्तार में १६००० योजन की ऊचाई पर दोनो ओर समान रूप से १९०००० योजन की हानि हो गई है। यहाँ प्रतियोजन की ऊचाई पर होने वाली वृद्धि का प्रमाण ११$\frac{7}{8}$ योजन प्रमाण है।

गहराई की अपेक्षा रत्नवेदिका से ९५ प्रदेश आगे जाकर एक प्रदेश की गहराई है ऐसे ९५ अगुल जाकर १ अगुल, ९५ हाथ जाकर एक हाथ, ९५ कोस जाकर एक कोस एव ९५ योजन जाकर एक योजन की गहराई हो गई है। इसी प्रकार से ९५ हजार योजन जाकर १००० योजन की गहराई हो गई है। अर्थात् लवण समुद्र के सम जल भाग से समुद्र का जल १ योजन नीचे जाने पर एक तरफ से विस्तार मे ९५ योजन हानि रूप हुआ है। इसी क्रम से एक प्रदेश नीचे जाकर ९५ प्रदेशो की, १ अगुल नीचे जाकर ९५ अगुलो की, एक हाथ नीचे जाकर ९५ हाथों की भी हानि समझ लेना चाहिये।

अमावस्या के दिन उक्त जल शिखा की ऊचाई ११००० योजन होती है। पूर्णिमा के दिन वह उससे ५००० योजन बढ जाती है। अत: ५००० के १५वे भाग प्रमाण क्रमशः प्रतिदिन ऊचाई मे वृद्धि होती है।

$१६००० - \frac{११०००}{१५} = \frac{५०००}{१५}$, $५००० \div १५ = ३३३\frac{१}{३}$ योजन—तीन सौ तेतीस से कुछ अधिक प्रमाण प्रतिदिन वृद्धि होती है ।

समुद्र के मध्य में पाताल

लवण समुद्र के मध्य भाग मे चारो ओर उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य ऐसे १०८ पाताल है। ज्येष्ठ पाताल ४, मध्यम ४ और जघन्य १००० हैं। उत्कृष्ट पाताल चार दिशाओ मे ४ है मध्यम पाताल ४ विदिशाओं में ४ एवं उत्कृष्ट मध्यम के मध्य में ८ अन्तर दिशाओं मे १००० जघन्य पाताल हैं।

४ उत्कृष्ट पाताल

उस समुद्र के मध्य भाग मे पूर्वादि दिशाओ के क्रम से पाताल, कदम्बक, वडवामुख और यूपकेसर नामक चार पाताल है। इन पातालों का विस्तार मूल मे और मुख मे १०००० योजन प्रमाण है इनकी गहराई (ऊंचाई) और मध्यविस्तार मूल विस्तार से दस गुणा—१००००० योजन प्रमाण है। पातालो की वज्रमय भित्तिका ५०० योजन मोटी है। ये पाताल जिनेंद्र भगवान द्वारा अरजन–घट विशेष के समान कहे गये हैं। पाताल के उपरिम त्रिभाग मे सदा जल रहता है, उनके मूल के त्रिभाग मे घनीवायु और मध्य त्रिभाग मे क्रम से जल, वायु दोनो रहते है। सभी पातालों के पवन सर्वकाल शुक्ल पक्षो मे स्वभाव से बढते हैं एव कृष्ण पक्ष मे स्वभाव से घटते हैं। शुक्ल पक्ष में पूर्णिमा तक प्रतिदिन २२२२$\frac{२}{९}$ योजन पवन की वृद्धि हुआ करती है। पूर्णिमा के दिन पातालो के अपने अपने तीन भागों मे से नीचे के दो भागो में वायु और ऊपर के तृतीय भाग मे केवल जल रहता है। अमावस्या के दिन अपने अपने तीन भागो मे से क्रमशः ऊपर के दो भागो मे जल और नीचे के तीसरे भाग मे केवल वायु स्थित रहता है। पातालो के अन्त मे अपने अपने मुख विस्तार को ५ से गुणा करने पर जो प्राप्त हो, उतने प्रमाण आकाश मे अपने अपने पार्श्व भागो मे जलकण जाते है। 'तत्वार्थ राजवार्तिक' ग्रथ में जल वृद्धि का कारण किन्नरियों का नृत्य बतलाया है। यथा—'रत्नप्रभाखरपृथ्वी—भागसन्निवेशिभवनालय-वातकुमारतद्वनिताक्रीडा जनिता निलसक्षोभकृतपातालोन्मीलन निमीलन-हेतुकौ वायुतोयनिष्क्रमप्रवेशौ भवतः। तत्कृता दशयोजनसहस्रविस्तार-

मुखजलस्योपरि पंचाशद्योजनावधृता जलवृद्धिः। तत उभयत आरत्न-वेदिकाया. सर्वत्र द्विगव्यूतिप्रमाणा जलवृद्धिः। पातालोन्मीलन-वेगोपश मेन हानिः।

अर्थ—रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग मे रहने वाली वातकुमार देवियों की क्रीडा से क्षुब्ध वायु के कारण ५०० योजन जल की वृद्धि होती है अर्थात् वायु और जल का निष्क्रम और प्रवेश होता है। और दोनो तरफ रत्नवेदिका पर्यंत सर्वत्र दो गव्यूति प्रमाण जलवृद्धि होती है। पाताल के उन्मीलन के वेग की शाति से जल की हानि होतो है। इन पातालों का तीसरा भाग १००००० – ३ = ३३३३३$\frac{१}{३}$ योजन प्रमाण है।

ज्येष्ठ पाताल सीमत विल के उपरिम भाग से सलग्न है। अर्थात् ये पाताल ऊभी मृदंग के आकार गोल है, समभूमि से नीचे की गहराई का जो प्रमाण है वह इन पातालो की ऊंचाई है। यदि प्रश्न यह होवे कि १ लाख योजन तक इनकी गहराई समतल से नीचे कैसे होगी ? तो उसका समाधान यह है कि रत्नप्रभा पृथ्वी एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है, वहा खरभाग, पकभाग पर्यंत ये पाताल पहुचे हुए ऊडे (गहरे) है।

४ मध्यम पाताल

विदिशाओ में भी इनके समान चार पाताल है उनका मुख विस्तार और मूल विस्तार १००० योजन तथा मध्य में और ऊंचाई (गहराई) मे १०००० योजन है, इनकी वज्रमय भित्ति ५० योजन प्रमाण है। इन पातालो के उपरिम तृतीय भाग मे जल, नीचे के तृतीय भाग में वायु, मध्य के तृतीय भाग मे जल, वायु दोनो रहते है। पातालो की गहराई–ऊचाई १०००० योजन है १०००० – ३ = ३३३३$\frac{१}{३}$ पातालो का तृतीय भाग तीन हजार तीन सौ तेतीस से कुछ अधिक है। इनमे प्रतिदिन होनें वाली जल-वायु की हानि वृद्धि का प्रमाण २२२$\frac{२}{९}$ योजन प्रमाण है।

१००० जघन्य पाताल

उत्तम, मध्यम पातालो के मध्य मे आठ अतर दिशाओ में एक हजार जघन्य पाताल हैं। इनके विस्तार आदि का प्रमाण मध्यम पातालो की

अपेक्षा दसवे भाग मात्र है अर्थात् मुख और मूल मे ये पाताल १०० योजन है। मध्य में चौड़े और गहरे १००० हजार योजन प्रमाण हैं। इनमें भी उपरिम त्रिभाग मे जल, नीचे मे वायु और मध्य मे जलवायु दोनो हैं। इनका त्रिभाग३३३$\frac{1}{3}$ योजन है और प्रतिदिन जलवायु की हानि–वृद्धि २२$\frac{2}{9}$ योजन मात्र है।

नागकुमार देवों के १४२,००० नगर

लवण समुद्र के वाह्य भाग मे ७२००० वहत्तर हजार, शिखर पर २८००० और अभ्यन्तर भाग मे ४२००० नगर अवस्थित है। समुद्र के अभ्यन्तर भाग की वेला की रक्षा करने वाले वेलधर नागकुमार देवो के नगर ४२००० है। जल शिखा को धारण करने वाले नागकुमार देवो के २८००० नगर है एव समुद्र के वाह्य भाग की रक्षा करने वाले नागकुमार देवो के ७२००० नगर है।

ये नगर दोनो तटो से ७०० योजन जाकर तथा शिखर से ७००$\frac{1}{2}$ योजन जाकर आकाश तल मे स्थित है। इनका विस्तार १०००० योजन प्रमाण है। नगरियो के तट उ त्तम रत्नों से निर्मित समान गोल हैं। प्रत्येक नगरियों मे ध्वजाओ, तोरणो से सहित दिव्य तटवेदिया है। उन नगरियो मे उत्तम वैभव से सहित वेलधर और भुजग देवो के प्रासाद स्थित है। जिनमदिरो से रमणोय, वापिका उपवनो से सहित इन नगरियो का वर्णन वहुत ही सुन्दर है ये नगरिया अनादि निधन है।

उत्कृष्ट पाताल के आसपास के ८ पर्वत

समुद्र के दोनो किनारों मे ब्यालीस हजार योजन प्रमाण प्रवेश करके पातालो के पार्श्व भागो मे आठ पर्वत है। (ऊपर) तट से ४२००० योजन आगे समुद्र में जाकर 'पाताल' के पश्चिम दिशा में कौस्तुभ और पूर्व दिशा मे कौस्तुभास नाम के दो पर्वत हैं ये दोनो पर्वत रजतमय धवल, १००० योजन ऊचे अर्धघट के समान आकार वाले वज्रमय मूल भाग से सहित, नाना रत्नमय अग्रभाग से सुशोभित है। प्रत्येक पर्वत का तिरछा

विस्तार एक लाख सोलह हजार योजन है इस प्रकार से जगती से पर्वतों तक तथा पर्वतो का विस्तार मिलाकर दो लाख योजन होता है। पर्वत का विस्तार ११६००० । जगती से पर्वत का अतराल ४२०००+४२००० =८४००० । ११६०००+८४०००=२००००० ।

ये पर्वत मध्य मे रजतमय है इनके ऊपर इन्ही के नाम वाले कौस्तुभ कौस्तुभास देव रहते है। इनकी आयु, अवगाहना आदि विजय देव के समान है। कदबपाताल की उत्तर दिशा मे उदक नामक पर्वत और दक्षिण दिशा मे उदकाभास नामक पर्वत है ये दोनो पर्वत नीलमणि जैसे वर्ण वाले हैं। इन पर्वतो के ऊपर क्रम से शिव और शिवदेव निवास करते है। इनकी आयु आदि कौस्तुभ देव के समान है।

वडवामुख पाताल की पूर्व दिशा मे शख और पश्चिम दिशा मे महाशख नामक पर्वत है ये दोनो ही शख के समान वर्णवाले वाले है। इन पर उदक, उदकावास देव स्थित है, इनका वर्णन पूर्वोक्त सदृश हैं। यूपकेसरी के दक्षिण भाग मे दक नामक पर्वत और उत्तर भाग मे दकवास नामक पर्वत हैं ये दोनो पर्वत वैडूर्यमणिमय है इनके ऊपर क्रम से लोहित, लोहिताक देव रहते है।

८ सूर्य द्वीप हैं

जबूद्वीप की जगती से व्यालीस हजार योजन जाकर 'सूर्यद्वीप' नाम से प्रसिद्ध आठ द्वीप हैं। ये द्वीप पूर्व मे कहे हुए कौस्तुभ आदि पर्वतो के दोनो पार्श्व भागो मे स्थित होकर निकले हुये मणिमय दीपको से युक्त शोभायमान हैं। त्रिलोकसार मे १६ 'चन्द्र द्वीप' भी माने गये हैं। यथा— अभ्यन्तर तट और बाह्य तट दोनो तटो से ४२००० योजन छोडकर चारो विदिशाओ के दोनो पार्श्व भागो मे दो-दो, ऐसे आठ 'सूर्यद्वीप' है। और दिशा-विदिशा के बीच मे जो आठ अन्तर दिशायें है उनके दोनो पार्श्वभागो में दो-दो, ऐसे १६ 'चन्द्रद्वीप' नामक द्वीप है। ये सब द्वीप ४२००० योजन व्यास वाले और गोल आकार वाले है। यहा द्वीप से 'टापू' को समझना।

समुद्र में गौतम द्वीप का वर्णन

लवण समुद्र के अभ्यन्तर तट से १२००० योजन आगे जाकर १२००० योजन ऊचा, एव इतने ही प्रमाण व्यास वाला, गोलाकार, गौतम नामक द्वीप है जो कि समुद्र मे 'वायव्य' विदिशा मे है। ये उपर्युक्त सभी द्वीप वन, उपवन, वेदिकाओ से रम्य है और 'जिनमदिर' से सहित है। उन द्वीपो के स्वामी वेलधर जाति के नागकुमार देव है। वे अपने-अपने द्वीप के समान नाम के धारक है।

मागध द्वीप आदि का वर्णन

भरत क्षेत्र के पास समुद्र के दक्षिण तट से सख्यात योजन जाकर आगे मागध, वरतनु और प्रभास नाम के तीन द्वीप है। अर्थात् गगा नदी के तोरण द्वार से आगे कितने ही योजन प्रमाण समुद्र मे जाने पर 'मागध' द्वीप है। जबूद्वीप के दक्षिण वैजयत द्वार से कितने ही योजन समुद्र मे जाने पर 'वरतनु' द्वीप है एव सिंधु नदी के तोरण से कितने ही योजन जाकर 'प्रभास' द्वीप है। इन द्वीपो मे इन्ही नाम के देव रहते है। इन देवो को भरत क्षेत्र के चक्रवर्ती वश करते है।

ऐसे ही ऐरावत क्षेत्र के उत्तर भाग मे रक्तोदा नदी के पार्श्व भाग मे समुद्र के अन्दर 'मागध' द्वीप, अपराजित द्वार से आगे 'वरतनु' द्वीप एव रक्ता नदी के आगे कुछ दूर जाकर 'प्रभास' द्वीप है जो कि ऐरावत क्षेत्र के चक्रवर्तियो के द्वारा जीते जाते है।

४८ कुमानुष द्वीप

लवण समुद्र मे कुमानुषो के ४८ द्वीप है। इनमे से २४ द्वीप तो अभ्यन्तर भाग मे एव २४ द्वीप बाह्य भाग मे स्थित है। जबूद्वीप की जगती से ५०० योजन आगे जाकर ४ द्वीप चारो दिशाओ मे और इतने ही योजन जाकर चार द्वीप चारो विदिशाओ मे है। जबूद्वीप की जगती से ५५० योजन आगे जाकर दिशा, विदिशा की अन्तर दिशाओ मे ८ द्वीप है। हिमवन्, विजयार्ध पर्वत के दोनो किनारो मे जगती से ६०० योजन जाकर ४

द्वीप एव उत्तर मे शिखरी और और विजयार्ध के दोनो पार्श्व भागो से ६०० योजन अन्दर समुद्र मे जाकर ४ द्वीप हैं।

दिशागत द्वीप १०० योजन प्रमाण विस्तार वाले है ऐसे ही विदिशा गत द्वीप ५५ योजन विस्तृत, अन्तरदिशागत द्वीप ५० योजन विस्तृत एवं पर्वत के पार्श्वगत दीप २५ योजन विस्तृत हैं।

ये सव उत्तम द्वीप वनखड, तालावो से रमणीय, फलफूलो के भार मे सयुक्त तथा मधुर रस एवं जल से परिपूर्ण है। यहा कुभोग भूमि की व्यवस्था है यहा पर जन्म लेने वाले मनुष्य 'कुमानुप' कहलाते हैं और विकृत आकार वाले होते है। पूर्वादिक दिशाओ में स्थित चार द्वीपो के कुमानुप क्रम से एक जघा वाले, पूंछ वाले, सींग वाले और गूंगे होते हैं। आग्नेय आदि विदिशाओ के कुमानुप क्रमश: शष्कुलीकर्ण, कर्ण प्रावरण, लम्वकर्ण और शशकर्ण होते हैं। अन्तर दिशाओ मे स्थित आठ द्वीपो के वे कुमानुप क्रम से सिंह, अश्व, श्वान, महिप, वराह, शार्दूल, घूक और वदर के समान मुख वाले होते हैं। हिमवान् पर्वत के पूर्व पश्चिम किनारो मे क्रम से मत्स्य-मुख, कालमुख तथा दक्षिण विजयार्ध के किनारो मे मेपमुख, गोमुख कुमा-नुप होते हैं। शिखरी पर्वत के पूर्व पश्चिम किनारो पर क्रम से मेघमुख विद्युन्मुख तथा उत्तर विजयार्ध के किनारो पर आदर्श मुख हस्तिमुख कुमानुप होते हैं। इन सव मे से एकोरुक कुमानुप गुफाओ मे रहते है और मिष्ट मिट्टी को खाते हैं। शेप कुमानुप वृक्षो के नीचे रहकर फलफूलो से जीवन व्यतीत करते है।

इस प्रकार से दिशागत द्वीप ४, विदिशागत ४, अन्तरदिशागत ८, पर्वत तटगत ८। ४+४+८+८=२४ अंतर्द्वीप हुये हैं, ऐसे ही लवण-समुद्र के वाह्य भाग के भी २४ द्वीप मिलकर २४+२४=४८ अन्तर्द्वीप लवण समुद्र मे है।

कुभोग भूमि मे जन्म लेने के कारण

मिथ्यात्व मे रत, मन्दकषायी, मिथ्या देवो की भक्ति मे तत्पर, विषम पचाग्नि तप तपने वाले, सम्यक्त्व रत्न से रहित जीव मरकर कुमानुष होते

है।जो लोग तीव्र अभिमान से गर्वित होकर सम्यक्त्व और तप से युक्त साधुओ का किंचित् अपमान करते है, जो दिगबर साधु की निंदा करते है, ऋद्धि रस आदि गौरव से युक्त होकर दोषो की आलोचना गुरु के पास नही करते हैं, गुरुओ के साथ स्वाध्याय, वदना कर्म नही करते है, जो मुनि एकाकी विचरण करते है, क्रोध, कलह से सहित है, अरहत गुरु आदि की भक्ति से रहित चतुर्विध सघ मे वात्सल्य से रहित, मौन विना भोजन करने वाले, जो पाप में सलग्न है वे मृत्यु को प्राप्त होकर विषम परिपाक वाले, पाप कर्मों के फल से इन द्वीपो मे कुत्सित रूप से युक्त कुमानुष उत्पन्न होते हैं। त्रिलोकसार में भी यह कहा है—

> दुब्भावअसूचिसूदकपुप्फवई — जाइसकरादीहिं।
> कयदाणा वि कुवत्ते जीवा कुणरेसु जायते ।।९२४।।

अर्थ – खोटे भाव से सहित, अपवित्र, मृतादि के सूतक पातक, से सहित रजस्वला स्त्री के ससर्ग से सहित, जातिसकर आदि दोषो से दूपित मनुष्य जो दान करते है और जो कुपात्रो मे दान देते है ये जीव कुमानुप मे उत्पन्न होते है, क्योकि ये जीव मिथ्यात्व और पाप से सहित किंचित् पुण्य उपार्जन करते हैं। अत. कुत्सित भोग भूमि मे जन्म लेते है। इनकी आयु एक पल्य प्रमाण रहती है। एक कोस ऊचे शरीर वाले हैं। युगलिया होते है। मरकर नियम से भवनत्रिक देवो मे जन्म लेते है। कदाचित् सम्यक्त्व को प्राप्त करके ये कुमनुप्य सौधम युगल मे जन्म ले लेते है।

लवण समुद्र के दोनो ओर तट है लवण समुद्र मे ही पाताल है अन्य समुद्रो मे नही है। लवण समुद्र के जल की गहराई और ऊचाई मे हीनाधिकता है अन्य समुद्रो के जल मे नही है। सभी समुद्रो के जल की गहराई सर्वत्र हजार योजन है और ऊपर मे जल समतल प्रमाण है। लवण समुद्र का जल खारा है। लवण समुद्र मे जलचर जीव पाये जाते है लवण समुद्र के मत्स्य नदी गिरने के स्थान पर ९ योजन अवगाहना वाले एव मध्य मे १८ योजन प्रमाण है। इसमे कछुआ, शिशमार, मगर आदि जलजतु भरे है।

पद्म पुराण में रावण की लंका को लवण समुद्र में माना है अत. इस समुद्र मे और भी अनेको द्वीप हैं जैसा कि पद्म पुराण से स्पष्ट है यथा—

अस्त्यत्र लवणांभोधौ क्रूरग्राहसमाकुलै ।
प्रख्यातो राक्षसद्वीप. प्रभूताद्भुतासकुल. ॥१०६॥
शतानि सप्त.........१०७ से ११६ तक पद्म पु, ४८ पर्व ।

अर्थ—दुष्ट मगर-मच्छो से भरे हुये इस लवण समुद्र मे अनेक आश्चर्यकारी स्थानो से युक्त प्रसिद्ध 'राक्षसद्वीप' है ॥

जो सब ओर से सात योजन विस्तृत है तथा कुछ अधिक इक्कीस योजन उसकी परिधि है उसके बीच में सुमेरु पर्वत के समान त्रिकूट नाम का पर्वत है जो नौ योजन ऊ चा और ५० योजन चौडा है, सुवर्ण तथा नानाप्रकार की मणियो से दैदीप्यमान एव शिलाओं के समूह से व्याप्त है। राक्षसो के इन्द्र भीम ने मेघवाहन के लिये वह दिया था। तट पर उत्पन्न हुये नानाप्रकार के चित्र-विचित्र वृक्षो से सुशोभित उस त्रिकूटाचल के शिखर पर लका नाम की नगरी है जो मणि और रत्नो की किरणो तथा स्वर्ग के विमानो के समान मनोहर महलो एव क्रीडा आदि के योग्य सुन्दर प्रदेशो से अत्यत शोभायमान है। जो सब ओर से तीस योजन चौड़ी है तथा बहुत बडे प्राकार और परिखा से युक्त होने के कारण दूसरी पृथ्वी के समान जान पडती है।

लका के समीप मे और भी ऐसे स्वाभाविक प्रदेश है जो रत्न, मणि तथा स्वर्ण से निर्मित है। वे सब प्रदेश उत्तमोत्तम नगरो से युक्त हैं राक्षसों की क्रीडा भूमि हैं तथा महाभोगो से युक्त विद्याधरो से सहित है। सध्याकार, सुवेल, काञ्चन, ह्लादन, योधन, हस, हरिसागर और अर्द्धस्वर्ग आदि अन्य द्वीप भी वहा विद्यमान हैं जो समस्त ऋद्धियो तथा भोगा को देने वाले हैं, वन-उपवन आदि से विभूषित हैं तथा स्वर्ग प्रदेशो के समान जान पडते हैं।

छठे पर्व मे ६२ से ८२ तक वर्णन है—

इस लवण समुद्र में बहुत से द्वीप है- जहा कल्पवृक्षो के समान आकार वाले वृक्षो से दिशाये-व्याप्त हो रही है इन द्वीपो मे अनेको पर्वत है जो रत्नो से व्याप्त ऊचे-ऊचे शिखरो से सुशोभित है। राक्षसो के इन्द्र भीम, अतिभीम तथा उनके सिवाय अन्य देवो के द्वारा आपके वशजो के लिये ये सब द्वीप और पर्वत दिये गये है ऐसा पूर्व परपरा से सुनने मे आता है। उन द्वीपो में अनेक नगर है। उन नगरो के नाम—सध्याकार, मनोल्हाद, सुवेल, काचन, हरि, योधन, जलधिध्वान, हसद्वीप, भरक्षम अर्घस्वर्गोत्कट, आवर्त, विघट, रोधन, अमल, कात, स्फुटतट, रत्नद्वीप, तोयावली, सर, अलघन, नभोभानु और क्षेम इत्यादि सुन्दर-सुन्दर है।

यहा वायव्य दिशा मे समुद्र के बीच तीन सौ योजन विस्तार वाला, बडाभारी वानरद्वीप है। उसमे महा मनोहर हजारो अवातर द्वीप है। उस वानर द्वीप के मध्य मे रत्न सुवर्ण की लबी, चौडी शिलाओ से सुशोभित 'किष्कु' नाम का बड़ा भारी पर्वत है। जैसे यह त्रिकूटाचल है वैसे ही वह किष्कु पर्वत है इत्यादि। इस प्रकरण से यह ज्ञात होता है कि इस समुद्र मे और भी अनेक द्वीप विद्यमान है।

लवण समुद्र की जगती ८ योजन ऊची, मूल मे १२ योजन, मध्य में ८ एव ऊपर मे ४ योजन प्रमाण विस्तार वाली है। इसके ऊपर वेदिका, वन-खंड, देव नगर आदि का पूरा वर्णन जबूद्वीप की जगती के समान है। इस जगती के अभ्यतर भाग में शिलापट्ट और बाह्यभाग मे वन है। इस जगती की बाह्य परिधि का प्रमाण १५८११३९ योजन प्रमाण है। यदि जबूद्वीप प्रमाण १-१ लाख के खड किये जावें तो इस लवणसमुद्र के जबूद्वीप प्रमाण २४ खड हो जाते है।

धातकीखंड द्वीप का वर्णन

इस लवण समुद्र को चारो ओर से वेष्टित करके चारलाख योजन विस्तार से युक्त यह धातकीखडद्वीप मडलाकार से स्थित है। इस धातकीखड की बाह्य परिधि का प्रमाण ४११०९६१ योजन प्रमाण है। इस

धातकी खड द्वीप को चारो तरफ से दिव्य रत्नमय जगती वेष्टित करती है यह ८ योजन ऊ ची, १२ योजन चौडी, उपरिम भाग मे ४ योजन चौड़ी है इसका सारा वर्णन जबूद्वीप की जगती के सदृश है ।

इष्वाकार पर्वत

धातकीखंड द्वीप के दक्षिण और उत्तर भाग मे इसद्वीप को विभाजितकरने वाला दक्षिण उत्तर लबा एक-एक इष्वाकार पर्वत है, 'लवण और कालोदधि समुद्र से सलग्न ये पर्वत ४०० योजन ऊचे १००० योजन विस्तार वाले, ४००००० योजन लबे है एव अभ्यतर भाग मे अ कमुख तथा बाह्य भाग मे क्षुरप्र के आकार है । इनकी नीव १०० योजन प्रमाण है ये सुवर्ण मयवर्ण वाले है । उन पर्वतो के दोनो पार्श्व भागो में ५०० धनुष विस्तृत, २ कोस ऊ ची, फहराती हुआ ध्वजाओ से युक्त एक-एक तट वेदी है । उन वेदियो के दोनो पार्श्व भागो मे वेदी, तोरण, पुष्करिणी,, वापिकाओ से युक्त जिनेंद्र प्रासादो से रमणीय वनखड है । इन वनखडो मे देव मनुष्य के युगलो से सहित, तटवेदी तोरण आदि से युक्त, रत्नो से निर्मित दिव्य प्रासाद है इष्वाकार पर्वतो के ऊपर भी चारो ओर दिव्य तट वेदी, वन, और वनवेदी है ।

इन पर्वतो पर चार-चार उत्तम कूट हैं प्रथम कूट पर जिनभवन एवं शेषकूटो पर व्यंतरो के नगर है । दोनो इष्वाकार के मध्य मे दोनो तरफ एक-एक क्षेत्र होने से धातकीखड मे दो क्षेत्र हो गये है जिनका नाम है पूर्वधातकीखड़ एव पश्चिम धातकोखड । जबूद्वोप के क्षेत्र, पर्वत, कुण्ड, और नदियो से दूने-दूने क्षेत्र पर्वत आदि धातकीखड मे है ।

कुलपर्वत और क्षेत्रों का वर्णन

मेरु को छोडकर कुल पर्वत, विजयार्ध, नाभिगिरि आदि पर्वत जबूद्वीप की अपेक्षा दूने विस्तार से सहित हैं एव ऊ चाई और अवगाह समान है ।

यहा के कुलाचल मूल व उपरिम भाग मे समान विस्तार से सहित दोनो अंतिम भागो से लवणोदधि, कालोदधि से सलग्न है। ऐसे ही भरत ऐरावत के विजयार्ध भी दोनो तरफ से समुद्र को स्पर्शित करते हैं। ये सभी पर्वत अभ्यतर भाग में अकमुख एव बाह्य भाग मे क्षुरप्र जैसे आकार वाले है। दक्षिण इष्वाकार पर्वत के पार्श्व भागो मे दोनो तरफ दो भरत क्षेत्र एव उत्तर इष्वाकार के पार्श्व भागो मे दोनो तरफ दो ऐरावत क्षेत्र है। ये भरत आदि क्षेत्र चक्के के आरो के मध्य मे रहने वाले छिद्रो के समान है अतः ये 'अरविवर' सदृश है ये सब क्षेत्र अभ्यतर भाग मे अकमुख, बाह्य मे शक्तिमुख है इनकी पार्श्व भुजाये गाड़ी की उद्धि के समान है।

६ पर्वतो का विस्तार आदि

हिमवान पर्वत का विस्तार २१०५ $\frac{५}{१९}$ योजन, इससे चोगुणा, महाहिमवान का ८४२१ $\frac{१}{१९}$ एव निषध का ३३६८४ $\frac{४}{१९}$ योजन है इनकी ऊचाई क्रम से १००,२००,४००० योजन प्रमाण है एव इनके वर्ण जबूद्वीप के कुलाचल सदृश है।

७ क्षेत्रों का विस्तार

भरत क्षेत्र का अभ्यतर विस्तार ६६१४ $\frac{१२९}{२१२}$ मध्य. १२५८१ $\frac{३६}{२१२}$ बाह्य १८५४७ $\frac{१५५}{२१२}$ योजन है आगे विदेह क्षेत्र के क्षेत्रो का विस्तार इससे चौगुना होता गया है। उपर्युक्त पर्वतो पर पद्म, महापद्म आदि सरोवर है जो जबूद्वीप की अपेक्षा दूने विस्तार वाले है उनसे निकलने वाली चौदह नदिया इन सात क्षेत्रो मे उन्ही गगा सिन्धु आदि के नाम से बहने वाली हैं इन नदी, कुण्ड पद्म सरोवर आदि का विस्तार दूना-दूना है, किंतु अवगाह जबूद्वीप के तालाब आदि के समान है।

विजयार्धपर्वत, चैत्यवृक्ष, वृषभाचल, नाभिगिरि, यमकपर्वत, दिग्गज-पर्वत, काचनपर्वत, वक्षार, वेदिका आदि ये सब ऊचाई, विस्तार तथा अवगाह की अपेक्षा तीनो द्वीपो मे समान है सभी कुण्डो के चारो तरफ

$\frac{१}{२}$ योजन ऊ ची, ५००० धनुष विस्तृत रत्नमय तोरणो से सहित दिव्य वेदी-कायें हैं। इस द्वीप का शेष सभी वर्णन जवूद्वीप के समान है।

पूर्वधातकी खंड के विजयमेरु का वर्णन

यह मेरुपर्वत ८४००० योजन ऊचा है। इसकी जड़ एक हजार योजन है। मेरु का विस्तार तलभाग मे १०००० योजन एव पृथ्वी पृष्ठ पर ६४०० योजन है। इस मेरु का विस्तार शिखर तल पर १००० योजन मात्र है। इसकी चूलिका ४० योजन ऊ ची, नील मणिमय सुदर्शन मेरु सदृश है। सुदर्शन मेरु के सदृश इसमे भी भद्रसाल, नदन, सोमनस और पाडुक नामक चार वन है।

भद्रसाल वन से ५०० योजन ऊपर जाकर नदन वन है, नदन वन से ५५५०० योजद ऊपर जाकर सोमनस वन है, उसके ऊपर २८००० योजन जाकर पाडुकवन है। भद्रसाल वन की पूर्व-पश्चिम लवाई १०७८-७९ योजन है। इसका विस्तार १२२५ $\frac{७९}{८८}$ योजन प्रमाण है। वाकी वर्णन सुदर्शन मेरुवत् है।

गजदंत का वर्णन

अभ्यतर भाग मे चारो गजदतो की लवाई ३५६२२७ योजन है एव वाह्य भाग मे ५६९२५९ योजन है। ये पर्वत ५०० योजन विस्तृत है और मेरु के पास ५०० योजन ऊ चे तथा निषध, नील के पास ४०० योजन ऊ चे हैं। इनका वाकी वर्णन भी जवूद्वीप के गजदतवत् है।

धातकी वृक्ष

धातकी द्वीप के भीतर उत्तरकुरु देवकुरु क्षेत्रो मे 'धातकीवृक्ष' (आवले के वृक्ष) स्थित है, इसी कारण इस द्वोप का 'धातकी खड' यह सार्थक नाम है। उन धातकी वृक्षो पर सम्यक्त्वरत्न से सयुक्त उत्तम विभषणो से विभूषित 'प्रियदर्शन' और 'प्रभास' नामक दो अधिपति देव

निवास करते है। इन दोनो के परिवार देव आदर अनादर की अपेक्षा दुगुने प्रमाण हैं।

विदेह के वक्षार, विभंगा नदियां और क्षेत्रों का विस्तार

वक्षार पर्वत १००० योजन विस्तृत है। नदी के पास ५०० योजन एव निषध-नील के पास ४०० योजन ऊचे हैं। इन पर चार-चार कूट है। विभगा नदी २५० योजन विस्तृत है।

विदेह के प्रत्येक क्षेत्र का विस्तार ९६०३ $\frac{3}{8}$ योजन है।

देवारण्य भूतारण्य वनो का विस्तार ५८४४ योजन है कच्छादेश का तिर्यंग् विस्तार ५०९५७० [illegible] योजन प्रमाण है। भद्रसालवन के समीप मे पूर्व-पश्चिम विदेहो की लबाई, ५९०२४७ [illegible] योजन है। धातकीखड के भरत क्षेत्र का क्षेत्रफल-५०३२४३७५२६ [illegible] योजन है। यही सारी व्यवस्था पश्चिम धातकी खड की है वहा पर स्थित मेरु का नाम 'अचल' है और वह भी विजयमेरु के सदृश ८४००० योजन ऊचा है।

जंबूद्वीप के क्षेत्रफल के प्रमाण से धातकीखड का क्षेत्रफल विभाजित करने पर वह एक सौ चवालीस शलाका प्रमाण है अर्थात् जबूद्वीप के बराबर धातकीखड के १४४ टुकडे होते हैं। सपूर्ण नदी, पर्वत, क्षेत्र, कुड, सरोवर आदिको का शेष वर्णन जबूद्वीप के समान है। इस धातकी खड की बाह्य जगती के अभ्यतर भाग मे वन एव बाह्य भाग मे शिलापट्ट है।

कालोदधि समुद्र का वर्णन

इस धातकीखड द्वीप को चारों तरफ से वेष्टित करके ८ लाख योजन विस्तृत, मडलाकार रूप से कालोदधि नामक समुद्र है। टाकी से उकेरे हुये के समान आकार वाला यह समुद्र सर्वत्र १००० योजन गहरा, चित्रा पृथ्वी के उपरिम तलभाग के सदृश-समतल और पातालो से रहित है। इस समुद्र के भीतर दिशाओ, विदिशाओ, अन्तरदिशाओ और हिमवन्

शिखरी, विजयार्घ के किनारो पर पूर्वोक्त वर्णन से सहित ४८ अतर्द्वीप है। ये प्रत्यक द्वीप, तट वेदी. तोरण, पुष्करिणी आदि से रमणीय है उनमे रहने वाले मनुष्य कुभोगभूमिज कहलाते है और विकृत आकार के धारक हैं। लवण समुद्र की ४८ एव कालोदधि समुद्र को ४८ ऐसे ४८+४८=कुल छयानवे कुभोगभूमि है। कालोदधि के द्वीपो का अवगाह जल के भीतर १००० योजन मात्र है। इन द्वीपो में जो कुमानुप रहते हैं वे युगल रूप से उत्पन्न होकर ४६ दिन मे नवीन यौवन से सपन्न हो जाते हैं। इनके शरीर की ऊचाई १ कोस प्रमाण है, आयु १ पल्य प्रमाण है, ये आवले के बराबर भोजन एक दिन के अतर मे ग्रहण करते हैं। इनकी सारी व्यवस्था लवण समुद्र के कुमानुपों के समान है। इस कालोदधि की वाह्य परिधि ९१७०६०५ योजन है। इसी समुद्र के भीतर नदी प्रवेशस्थान मे जलचर जीव १८ योजन लबे ६ योजन विस्तृत एव ४½ योजन मोटे है। समुद्र के मध्य में स्थित मत्स्यों की लवाई ३६ योजन, चौडाई १८ योजन एव मोटाई ६ योजन है। शेपस्थानो में मगर, शिशुमार, कछुआ, मेंढक आदि जलचर जीव की अवगाहनासे युक्त हैं। इसकी वाह्यजगती का विस्तार जवूद्वीपजगतीवत् है एव उसके अभ्यतर भागमे शिलापट्ट और वाह्यभाग मे वनखड है।

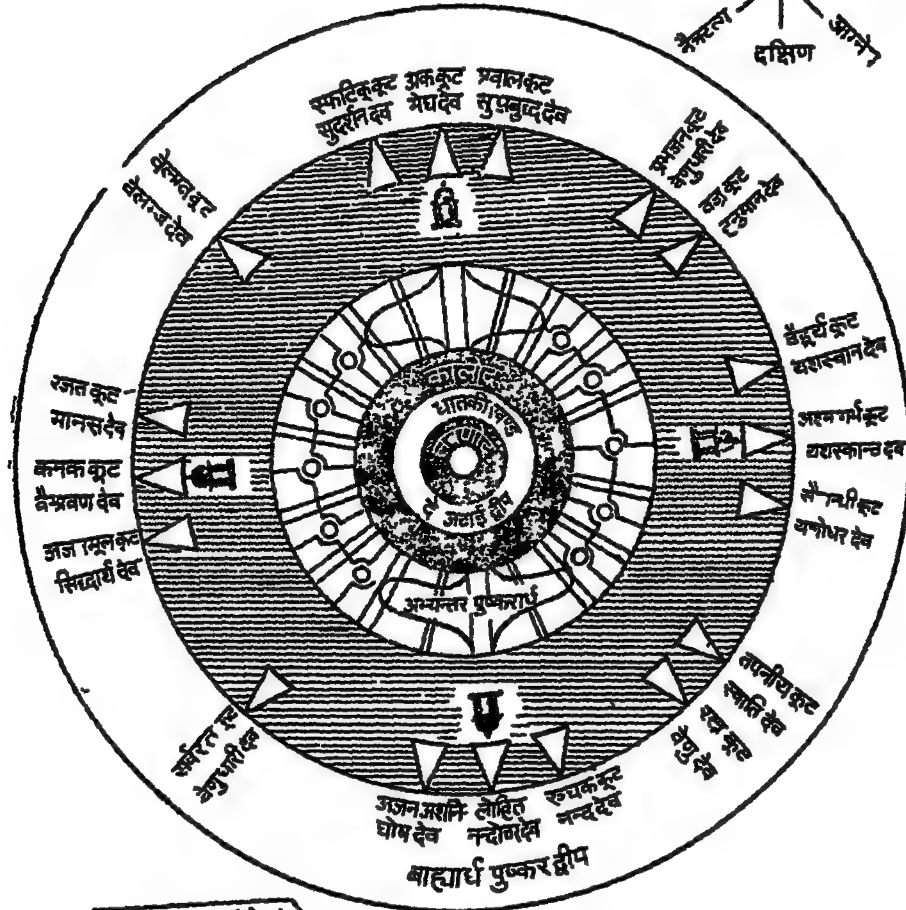
पुष्कर द्वीप एवं मानुषोत्तर पर्वत का वर्णन

इस कालोद समुद्र को वेष्ठित करके १६ लाख योजन विस्तृत पुष्कर द्वीप है। कालोद समुद्र की जगती से चारो ओर ८ लाख योजन जाकर मानुपोत्तर पर्वत उस द्वीप को सब तरफ से वेष्टित किये है। इस पर्वत की ऊचाई १७२१ योजन और नीव ४३० योजन १ कोस प्रमाण है। इस पर्वत का विस्तार मूल मे १०२२, मध्य में ७२३ तथा शिखर पर ४२४ योजन प्रमाण है। देव, विद्याधरो के मन को हरण करने वाला, अनादि निधन, सुवर्ण के सदृश यह मानुपोत्तर पर्वत अभ्यतर भाग मे टकोत्कीर्ण और बाह्य भाग मे क्रम से हीन है। इस पर्वत के चारो ओर

मानुषोत्तर पर्वत

दृष्टिभेद —२२ की बजाय २० कूट हैं। नैऋत्य व वायव्य दिशा वाले कूट नहीं है।





← ४२४ यो० →
← ७२३ यो० →
← १०२२ यो० →
१७२१ यो०
४३० यो० १ को०

अभ्यन्तर पुष्करार्ध की ओर

बाह्य पुष्करार्ध की ओर

नाभि गिरि

स्वाति देवका विहार स्थान

क्षेत्र, पर्वत	अभ्यंतर वि	मध्य वि	बाह्य वि	ऊँचाई	अवगाह	वर्ण	कूट	सरोवर	नदियां	विशेष
भरतक्षेत्र	६६११ [illegible],	१२५८१ [illegible],	१८५४७ [illegible]						गंगा, सिंधु	क्षेत्रों में
हिमवानपर्वत	२१०५ [illegible]			१००	२५	हेममय	११	पद्म	गंगा, सिंधु, रोहितास्या	नदियां बहती
हैमवतक्षेत्र	२६५५८ [illegible],	५०३२४ [illegible],	७४१६० [illegible]						रोहित, रोहितास्या	हैं।
महाहिमवान	८४२१ [illegible]			२००	५०	रजतमय	८	महापद्म	रोहित, हरिकांता	पर्वतों से
हरिक्षेत्र	१०५८३३ [illegible],	२०१२९८ [illegible],	२७६७६३ [illegible]						हरित, हरिकांता	नदियां
निषध	३३६८४ [illegible]			४००	१००	तप्तस्वर्णमय	९	तिगिंछ	हरित, सीतोदा	निकलती हैं।
विदेहक्षेत्र	४२३३३४ [illegible],	८०५१९४ [illegible],	११८७०५४ [illegible]						सीता, सीतोदा	
नील	३३६८४ [illegible]			४००	१००	वैडूर्यमणि	९	केसरी	सीता नरकांता	
रम्यक	१०५८३३ [illegible],	२०१२९८ [illegible],	२९६७६३ [illegible]						नारी, नरकांता	
रुक्मि	८४२१ [illegible]			२००	५०	रजतमय	८	पुंडरीक	नारी, रूप्यकूला	
हैरण्यवत	२६०५८ [illegible],	५०३२४ [illegible],	७४१६० [illegible]						सुवर्णकूला, रूप्यकूला	
शिखरी	२१०५ [illegible]			१००	२५	स्वर्णमय	११	महापुंडरीक	सुवर्णकूला, रक्ता, रक्तोदा	
ऐरावत	६६१४ [illegible],	१२५८१ [illegible],	१८५४७ [illegible]						रक्ता, रक्तोदा	



क्षेत्रो के बहुमध्यभाग में उनके पार्श्व भागो मे दिव्य रत्नमय चौदह गुफायें है । इस पर्वत के अभ्यतर एव बाह्य भाग मे चारो ओर दिव्य तट वेदी है जिसका उत्सेध ½ योजन एव विस्तार ५०० धनुप है । उसके अभ्यतर बाह्य भाग मे पूर्वोक्त वेदियो के समान ½ योजन प्रमाण वन खण्ड है। मानुषोत्तर पर्वत के ऊपर भी तटवेदी है उसके अभ्यतर भाग मे वनखड हैं। इस पर्वत की बाह्य परिधि १४२३६७१३ योजन से कुछ अधिक है।

इस मानुषोत्तर पर्वत पर २२ कूट है । पूर्वादि दिशाओ मे से प्रत्येक मे ३-३ कूट हैं। आग्नेय और ईशानदिशा मे २-२, वायव्य और नैऋत्य में १-१ कूट हैं, ऐसे १२+४+२=१८ कूट हैं। एव पूर्वादि दिशाओ में बतलाये गए कूटों की अग्रभूमियो में एक-एक सिद्धकूट है ये चार मिलकर १८+४=२२ कूट है। इन कूटों में प्रत्येक की ऊंचाई, मूल विस्तार पर्वत के चतुर्थ भाग है। ऊंचाई और मूलविस्तार ४३० योजन १ कोस, मध्य वि० ३२२ योजन, २¾ कोस, शिखर वि० २१५ योजन ½ कोस है। कूटो के मूल व शिखर पर मणिमय मन्दिरो से रमणीय, वेदी आदि से सुशोभित दिव्य वन खड है । मानुपोत्तर के चारो ओर सिद्ध कूटो पर निषध के जिनभवन सदृश चार जिनभवन स्थित है । शेष कूटो पर व्यतर देवो के दिव्य प्रासाद है।

पुष्करार्द्ध द्वीप का वर्णन

इस द्वीप में मानुषोत्तर पर्वत बीचो बीच मे वलयाकार सदृश है इससे पुष्कर द्वीप के दो भाग हो गए है । अत. मानुषोत्तर पर्वत के इधर के अर्ध भाग को पुष्करार्ध कहा गया है ।

इस पुष्करार्ध मे भी धातकी खड के सदृश दक्षिण-उत्तर भाग में दो इष्वाकार पर्वत है जो कि आयाम में दुगुने प्रमाण वाले हैं। इनसे विभक्त पूर्व पुष्करार्ध और पश्चिम पुष्करार्ध ऐसे दो भागो में धातकी खड के सदृश आरे के छिद्र के समान क्षेत्र हो गए है ।

धातकी खंड मे जितने कुंड, क्षेत्र, सरोवर, पर्वत, नदियां है उतने ही सब पुष्करार्द्ध द्वीप में हैं। हिमवान् पर्वत आदि का विस्तार जंबूद्वीप से चौगुना है। चार विजयार्ध, बारह कुल पर्वत, और ७ क्षेत्र एक तरफ से कालोदधि को और एक तरफ से मानुषोत्तर पर्वत को छूते हैं। ये कुल पर्वत, विजयार्ध अभ्यंतर भाग मे अंकमुख, और बाह्यभाग मे क्षुरप्रसदृश है। यहां जंबूवृक्ष शाल्मली वृक्ष की जगह पुष्कर वृक्ष हैं, सभी क्षेत्र, सरोवर पर्वत आदि के नाम जंबूद्वीप के समान हैं।

हिमवान् का विस्तार ४२१० $\frac{१०}{१९}$ योजन है आगे निषध तक चौगुना होता गया है। भरत क्षेत्र का अभ्यंतर विस्तार ४१५७९ $\frac{१७३}{२१२}$ योजन है आगे विदेह तक चौगुना-चौगुना कर लीजिये।

क्षेत्र पर्वत	अभ्यंतर वि०	क्षेत्र का बाह्य वि०	ऊंचाई
भरत	४१५७९ $\frac{१७३}{२१२}$	६५४४६ $\frac{१३}{२१२}$	
हिमवान्	४२१० $\frac{१०}{१९}$		१००
हैमवत	१६६३१९ $\frac{५६}{२१२}$	६५४४६ $\frac{१३}{२१२}$ ×४	
महाहिमवान्	१६८४२ $\frac{२}{१९}$		२००
हरि	६६५२७७ $\frac{१२}{२१२}$	६५४४६ $\frac{१३}{२१२}$ +८	
निषध	६७३६८ $\frac{८}{१९}$		४००
विदेह	२६६११०८ $\frac{४८}{२१२}$	६५४४६ $\frac{१३}{२१२}$ +१६	
नील	६७३६८ $\frac{८}{१९}$		४००
रम्यक	६६५२७७ $\frac{१२}{२१२}$	६५४४६ $\frac{१३}{२१२}$ +८	
रुक्मि	१६८४२ $\frac{२}{१९}$		२००
हैरण्यवत	१६६३१९ $\frac{५६}{२१२}$	६५४४६ $\frac{१३}{२१२}$ +४	
शिखरी	४२१० $\frac{१०}{१९}$		१००
ऐरावत	४१५७९ $\frac{१७३}{२१२}$	६५४४६ $\frac{१३}{२१२}$	

पुष्करार्ध द्वीप मे दो विजय मेरु के सदृश है उनके नाम मदर मेरु और विद्युन्माली मेरु है। भद्रसाल विदेह क्षेत्र वक्षार विभगानदी देवारण्य, पूर्व-पश्चिम विस्तृत है।

भद्रसाल का पूर्व-पश्चिम विस्तार—२१५७५८ योजन है। चौसठ विदेह क्षेत्रों में से एक का विस्तार—१९७९४ १/४ योजन है। प्रत्येक वक्षारो का विस्तार २००० योजन और विभगा का विस्तार ५०० योजन है। देवारण्य का विस्तार ११६८८ योजन है।

पुष्करार्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल ९३६०३४१८,७४०९८ योजन है इस क्षेत्रफल मे २१२ का भाग देने से जो लब्ध हो उतना पुष्करार्ध के भरतक्षेत्र का क्षेत्रफल है यथा—४२८१०३५१४४१ १५५/२१२ योजन है।

जबूद्वीप सबधी के क्षेत्रफल प्रमाण पुष्करार्ध द्वीप के क्षेत्रफल को करने पर ११८४ खड होते है अर्थात् पुष्करार्ध मे जबूद्वीप प्रमाण ११८४ खड हो जाते है। बाकी सभी व्यवस्था धातकी खडद्वीपवत् यहा की समझ लेना चाहिये।

मनुष्यों का अस्तित्व कहां तक है ?

जबूद्वीप, धातकी खड और अर्ध पुष्कर द्वीप ऐसे ढाई द्वीप और लवणसमुद्र, कालोद समुद्र इन दो समुद्रो के भीतर मानुषोत्तर पर्वत पर्यत ही मनुष्य पाये जाते है अतः इस ४५००००० प्रमाण व्यास वाले क्षेत्र को 'मानुष क्षेत्र' कहते हैं एव इस मानुषोत्तर पर्वत के आगे मनुष्य नही जा सकते है इसीलिये इसका नाम भी सार्थक है। मनुष्य क्षेत्र की परिधि १४२३०२४९ योजन से कुछ कम है। मनुष्य के ४ भेद है सामान्य, पर्याप्त, स्त्रीवेदी मनुष्य, अपर्याप्त मनुष्य। ये चारो प्रकार के मनुष्य इस 'मानुष-लोक' मे ही उत्पन्न होते है। पर्याप्त मनुष्य राशि का प्रमाण २९ अक प्रमाण है यथा—१९८०७०४०६२८५६६०८४३९८३८५९८७५८४ ऐसे २९ अक प्रमाण है।

स्त्रीवेदी मनुष्य की राशि भी २९ अक प्रमाण है। यथा—५९४२१-२२१८८५६९८२५३१९५१५७९६२७५२। [तिलोयप. पृ ५२४]

अतर्द्वीपज, कुभोगभूमिज मनुष्य सबसे थोडे हैं। इनसे सख्यात गुणे मनुष्य १० कुरु क्षेत्रो मे है। इनसे सख्यात गुणे हरिवर्ष और रम्यक क्षेत्रो में है। इनसे सख्यात गुणे हैरण्यवत, हैमवतक्षेत्रों में, इनसे सख्यात गुणे भरत, ऐरावत क्षेत्रो मे, और इनसे भी सख्यात गुणे मनुष्य विदेह क्षेत्रो में हैं।

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य इनसे असख्यात गुणे है। लब्ध्यपर्याप्तक से विशेष अधिक सामान्य मनुष्य राशि है। पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त के भेद से मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं। एक सौ सत्तर १७० आर्यखडों मे तीनो प्रकार के मनुष्य होते है, भोगभूमि, कुभोगभूमि और सभी म्लेच्छ खडो मे १७०×५=८५० अर्थात् ८५० म्लेच्छ खडो में भी लब्ध्य-पर्याप्त नही होते हैं।

जिन मनुष्यो की आहार शरीर आदि ६ पर्याप्तिया पूर्ण नही हुई है किन्तु होने वाली हैं वे निर्वृत्यपर्याप्त है, जिनकी पर्याप्तिया पूर्ण हो गई हैं वे पर्याप्त है। यह पर्याप्त अवस्था गर्भ में ही अतर्मुहूर्त में हो जाती है। जिनकी पर्याप्तिया पूर्ण नही होती हैं और नियम से मर जाते है ऐसे क्षुद्रभव धारण करने वाले जीव लब्ध्यपर्याप्तक हैं इनके मनुष्यगति, मनुष्य आयु कर्म का उदय है किन्तु ये अत्यन्त, दयनीय सम्मूर्च्छन होते हैं स्त्रियो की कुक्षि, कक्ष आदि मे जन्म लेते रहते और मरते रहते हैं।

भरत आदि क्षेत्रों में गुणस्थानों का वर्णन

भरत, ऐरावत, के ५-५ आर्यखडो मे जघन्य रूप से मिथ्यात्व गुण-स्थान और उत्कृष्ट रूप से कदाचित् चौदह गुणस्थान तक पाये जाते है। पाच विदेहो के १६० आर्य खडो मे जघन्य रूप से ६ गुणस्थान उत्कृष्ट रूप से १४ गुणस्थान पाये जाते है। सब भोगभूमिजो मे ४ गुणस्थान तक होते है। एव सभी म्लेच्छ खडो मे एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहता है।

विद्याधर श्रेणियों में देशसयत तक ५ गुणस्थान एव विद्याओ को छोड देने के वाद १४ गुणस्थान तक हो सकते है।

मनुष्यों को सुख कहां कहा पर है ?

मनुष्यो को १२६ भोगभूमियो में अर्थात् ३० भोगभूमि तथा ६६ कुभोगभूमि मे केवल सुख और कर्म भूमियो मे सुख, दुःख दोनो ही होते है।

मनुष्यगति में सम्यक्त्व के कारण

कितने ही मनुष्य उपदेश से, कितने ही स्वभाव से, कितने जाति स्मरण से, कितने ही जिनेंद्र भगवान् के कल्याणक आदि को देखने से, कितने ही जिनविंव दर्शन से सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं। कर्मभूमि मे मनुष्य देशव्रत, महाव्रत आदि ग्रहण करके सिद्धगति को भी प्राप्त कर लेते है।

	जंबूद्वीप में	धातकी खड में	पुष्करार्ध में	कुल जोड़
मेरु	१	२	२	५
कुलाचल	६	१२	१२	३०
भरत आदि क्षेत्र	७	१४	१४	३५
कर्म भूमि	३४	६८	६८	१७०
भोगभूमि	६	१२	१२	३०
कुरुक्षेत्र	२	४	४	१०
जबू आदि वृक्ष	२	४	४	१०
मुख्यनदीगगादि	१४	२८	२८	७०
विभगा	१२	२४	२४	६०
विदेहकीगंगादि	६४	१२८	१२८	३२०
विजयार्ध	३४	६८	६८	१७०
वृषभगिरि	३४	६८	६८	१७०
म्लेच्छखड	१७०	३४०	३४०	८५०
गजदत	४	८	८	२०
यमकगिरि	४	८	८	२०

दिग्गज पर्वत	८	१६	१६	४०
वक्षार पर्वत	१६	३२	३२	८०
नाभि गिरि	४	८	८	२०
कांचन गिरि	२००	४००	४००	१०००
सरोवर	२६	५२	५२	१३०
जिन भवन	७८	१५६	१५६	३९०
		इष्वाकार २	इष्वा. २	३९०+४=३९४

जितने क्षेत्र, नदी, पर्वत आदि जबूद्वीप में है। पूर्वधातकी खंड में उतने ही हैं एव पश्चिम घातकी खड मे भी उतने ही है अत. दुगुने हो गये है, ऐसे ही पूर्व पुष्करार्ध मे उतने तथा पश्चिम पुष्करार्ध मे उतने ही हैं ऐसे ढाई द्वीप के पाचो मेरु सबधी सभी क्षेत्र पर्वत आदि को ५ से गुणा कर देने से पचगुणी सख्या हो जाती है विशेषता इतनी है कि घातकी खड और पुष्करार्ध मे दो-दो इष्वाकार पर्वत हैं उन पर एक-एक जिन मदिर होने से ये ३९० जिन भवन में उन ४ जिनमदिर की सख्या मिला लीजिये तथा मानुषोत्तर पर्वत के ४ जिन भवनो की सख्या मिला लेने से ३९०+४ +४=३९८ जिनभवन हो जाते हैं। मनुष्य लोक के इन सभी जिन भवनों को हमारा वारवार नमस्कार होवे।

तिर्यक् लोक का वर्णन

मंदर पर्वत के मूल से १ लाख ४० योजन प्रमाण ऊचा (मोटा) एक राजु लवे, चौडे क्षेत्र मे तिर्यक् त्रसलोक स्थित है।

इस मध्यलोक मे पच्चीस कोडाकोडी उद्धारपल्य प्रमाण असख्यातो द्वीप समुद्र है। वे गोल है इनमे से पहला जवूद्वीप बीच मे है आगे-आगे एक दूसरे को वेष्टित करते हुए असख्यातो द्वीप समुद्रो के वाहर स्वयभूरमण समुद्र है। सभा समुद्र चित्रा पृथ्वी को खडित कर वज्रा पृथ्वी के ऊपर और सब द्वीप चित्रा पृथ्वी के ऊपर स्थित है।

प्रथम जंबूद्वीप उसके परे लवण समुद्र फिर धातकी खंड और उसको घेरकर कालोद समुद्र हैं आगे आगे के द्वीपो के नाम वाले ही समुद्र है। यथा—पुष्कर द्वीप, पुष्कर समुद्र, वारुणीवर द्वीप, वारुणीवर समुद्र, क्षीरवरद्वीप, क्षीरवर समुद्र, घृतवरद्वीप, घृतवर समुद्र, क्षौद्रवरद्वीप क्षौद्रवर समुद्र, नदीश्वर द्वीप, नदीश्वर समुद्र, अरुणवरद्वीप-समुद्र, अरुणाभास द्वीप-समुद्र, कुडलवरद्वीप-समुद्र, शखवरद्वीप-समुद्र, रुचकवरद्वीप-समुद्र, भुजगवर द्वीप-समुद्र, कुशवरद्वीप-समुद्र, क्रौंचवरद्वीप-समुद्र हैं। ये सोलह द्वीप एव सोलह समुद्र अभ्यतर भाग में हैं।

अत से प्रारम्भ करने पर स्वयभूरमण समुद्र, पश्चात स्वयभूरमण द्वीप आदि मे हैं ऐसे ही अहीन्द्रवर समुद्र, अहीन्द्रवर द्वीप, देववरद्वीप समुद्र -देववर द्वीप, यक्षवर समुद्र, यक्षवर द्वीप, भूतवर समुद्र, भूतवर द्वीप, नागवर समुद्र-द्वीप, वैडूर्य समुद्र-द्वीप वज्रवर समुद्र-द्वीप, काचनसमुद्र-द्वीप, रूप्यवर समुद्र-द्वीप, हिंगुलसमुद्र, हिंगुलद्वीप, अजनवर समुद्र-द्वीप, श्याम-समुद्र-द्वीप, सिंदूर समुद्र-द्वीप, हरिताल समुद्र-द्वीप, मनःशिल समुद्र-द्वीप ये सोलह समुद्र और सोलह द्वीप बाह्य भाग से अभ्यन्तर की तरफ है। इनके मध्य मे असख्यातों द्वीप-समुद्र हैं।

समुद्र के जल का स्वाद

लवण समुद्र का जल खारा है, वारुणीवर का जल मदिरा के समान क्षीरवर समुद्र का दुग्ध के समान एवं घृतवर समुद्र का जल घी के समान है। कालोदधि, पुष्कर समुद्र और स्वयंभूरमण समुद्र इन तीनो का जल सामान्य जल के सदृश है।

जलचर जीव कहाँ है ?

कर्मभूमि से सम्बद्ध लवण समुद्र, कालोद और अंतिम स्वयभूरमण समुद्र में ही जलचर जीव है। शेष समुद्रो मे नही हैं।

द्वीप, समुद्र के अधिपति व्यंतर देव

जवूद्वीप लवण समुद्र आदिको में से प्रत्येक के अधिपति दो-दो व्यतर देव है। जवूद्वीप के अधिपति 'आदर' अनादर देव है। लवण समुद्र के प्रभास, प्रियदर्शन, धातकी खड के प्रिय और दर्शन, कालोदधि के काल, महाकाल, पुष्करद्वीप के पद्म और पुण्डरीकदेव, मानुषोत्तर के चक्षु, सुचक्षु नामक दो देव, पुष्कर समुद्र के श्री प्रभ, श्रीधर देव अधिपति है ऐसे ही आगे के देवो के नाम अन्यत्र देख लेना चाहिये। ये देव अपने-अपने द्वीप समुद्रो के उपरिम भाग मे स्थित नगरो मे वहुत प्रकार के परिवार से युक्त होकर क्रीडा किया करते है। इनमे से प्रत्येक की आयु एक पल्य, ऊचाई दस धनुष प्रमाण है।

नंदीश्वर द्वीप

जवूद्वीप से आठवां द्वीप भुवन विख्यात नंदीश्वर समुद्र से वेष्टित 'नदीश्वर द्वीप' है। उस द्वीप का विस्तार १६३८४००००० एक सौ त्रेसठ करोड़ चौरासी लाख योजन है। इस द्वीप की वाह्य परिधि दो हजार वहत्तर करोड़ तेतीस लाख चौवन हजार एक सौ नव्वे योजन है—२०७२-३३५४१९० योजन है।

पूर्व दिशा के पर्वत

नदीश्वर द्वीप की पूर्व दिशा मे वहुमध्य भाग मे 'अजनगिरि' इस नाम से प्रसिद्ध, उत्तम इन्द्रनील मणिमय श्रेष्ठ पर्वत है यह पर्वत एक हजार योजन नीव से सहित, चौरासी हजार योजन ऊंचा, सर्वत्र चौरासी हजार योजन विस्तृत गोल है। उनके मूल व ऊपर भाग मे तटवेदिया व विचित्र वनखड है। इस पर्वत के चारो ओर चार दिशाओ में चार सरोवर है। जो कि प्रत्येक १००००० योजन विस्तार वाले चतुष्कोण हैं ये सरोवर एक हजार गहरे, टकोत्कीर्ण, जलचर जीवो से रहित स्वच्छ जल से पूर्ण, कमल कुवलय आदि की सुगधि से युक्त है। पूर्वादि दिशाओ के क्रम से नदा,

नदवती, नदोत्तरा, नंदिघोषा ये इन सरोवरों (वापियो) के नाम है। प्रत्येक वापी की चारो दिशाओ मे से प्रत्येक में क्रम से अशोकवन, सप्तच्छद, चपक और आम्रवन नाम से चार वन है। ये वन खड १००००० योजन लम्बे ५०००० योजन चौडे है। इनमे से प्रत्येक वन मे वन के नाम से सयुक्त चैत्यवृक्ष है।

वापियो के बहुमध्यभाग में ही दही के समान वर्ण वाले एक एक दधिमुख नामक उत्तम पर्वत है। प्रत्येक पर्वत की ऊचाई १०००० योजन एव विस्तार भी इतना ही है, ये पर्वत गोलाकार है इसकी नीव १००० योजन, वज्रमय है। इनके उपरिम तट मे तटवेदिया और विविध प्रकार के वन है। वापियो के दोनो बाह्य कोनो मे से प्रत्येक मे दधिमुखो के सदृश सुवर्णमय 'रतिकर' नामक दो-दो पर्वत है। प्रत्यक रतिकर पर्वत की ऊचाई और विस्तार १००० योजन है, नीव २५० योजन है।

तेरह जिन मंदिर

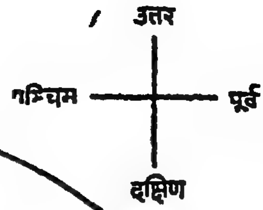
एक अजनगिरि, चार दधिमुख, आठ रतिकर इन तेरह पर्वतो के शिखर पर उत्तम रत्नमय एक-एक जिनेद्रभवन स्थित है। ये चैत्यालय १०० योजन लम्बे, ५० योजन चौडे, ७५ योजन ऊ चे है इनकी नीव ½ योजन मात्र है। ये उत्कृष्ट जिनभवनो का प्रमाण है। इसका मुख्य द्वार ८ योजन विस्तीर्ण १६ योजन ऊ चा है। इन जिन भवनो का समस्त वर्णन भद्रसाल वन के जिनभवन सदृश है।

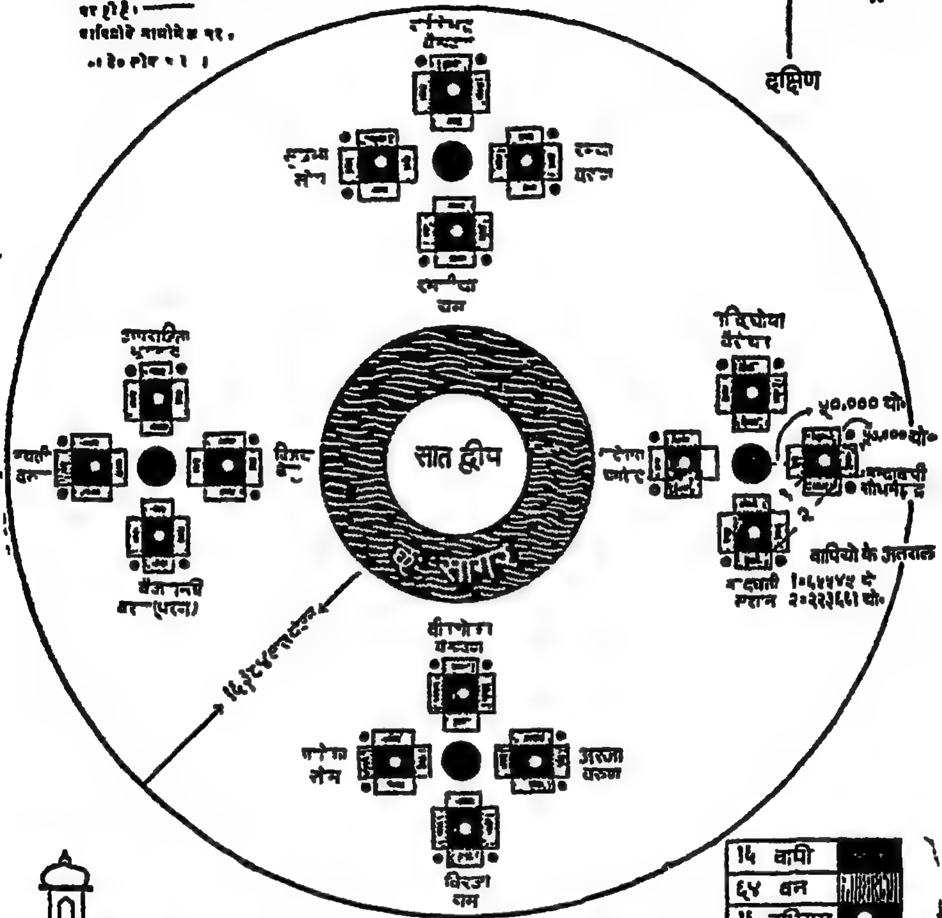
इन मदिरो मे देवतागण जल, गंध, अक्षत, पुष्प आदि द्रव्यो से बडी भक्ति से पूजा, अर्चा स्तुति आदि करते है।

दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशा के पर्वत

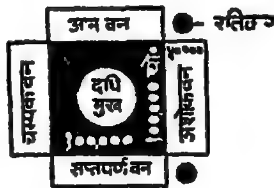
इस प्रकार पूर्व दिशा के सदृश ही तीनो दिशाओ मे 'अजन' पर्वत है उनके चारो दिशाओ की वापियो के नाम भिन्न-भिन्न हैं। दक्षिण अजन गिरि की पूर्वादि दिशाओ मे क्रम से अरजा, विरजा, अशोका, वीतशोका

नन्दीश्वर द्वीप









१६ वापी	
६४ वन	
१६ दधिमुख	
३२ रतिकर	
४ अंजन गिरि	
८ समुद्र	
७ द्वीप	
वन मे देवो के आवास	

वापिया है । पश्चिम अजनगिरि की चारो दिशाओं मे विजया, वैजयन्ती, जयती और अपराजिता वापिया है । उत्तर अंजनगिरि की चारो दिशाओ मे रम्या. रमणीया, सुप्रभा और सर्वतोभद्रा वापिया हैं । प्रत्येक वापी के चारो तरफ एक एक वन होने से १६ वापी के चौसठ वन हो गये है ।

इन अजनगिरियो के चौसठ वनो मे फहराती हुई ध्वजा-पताकाओ से सयुक्त उत्तमरत्न, सुवर्णमय एक-एक प्रासाद है । ये प्रासाद ६२ योजन ऊचे, ३१ योजन लम्बे-चौडे उत्तम वेदिका, तोरण द्वारो से सुशोभित हैं । इन प्रासादो मे बहुत प्रकार के व्यतरदेव क्रीडा करते हैं । चारो प्रकार के देव नदीश्वर द्वीप मे प्रतिवर्ष आषाढ, कार्तिक, फाल्गुन के आष्टान्हिक पर्व मे आते है । दिव्य विभूति से सहित सौधर्म इन्द्र हाथ मे नारियल को लेकर ऐरावत हाथी पर चढकर आता है । ईशान इन्द्र हाथी पर बैठकर सुपाडी के गुच्छे को हाथ मे लेकर आता है । सनत्कुमार इद्र सिंह पर चढकर आम्र फलो के गुच्छो को लेकर आता है, माहेन्द्र इद्र घोडे पर चढकर केले को लेकर आता है । आगे के देव कोई केतकी कोई कमल, सेवंती, पुष्पमाल, नीलकमल अनार फल आदि को लेकर आते है । ये चार प्रकार के देव नदीश्वर द्वीप के दिव्य जिनेन्द्र भवनो मे आकर नाना प्रकार की स्तुतियो से वाचालमुख होते हुये प्रदक्षिणाये करते है ।

नदीश्वरद्वीपस्थ जिनमदिरो की पूजा मे बहुत भक्ति से युक्त कल्पवासी देव पूर्वदिशा मे, भवनवासी दक्षिण मे, व्यन्तरवासी देव पश्चिम मे और ज्योतिषीदेव उत्तर मे अनेक स्तुतियो से युक्त अपने अपने वैभव के अनुसार दिव्य महापूजा करते है । अर्थात् दिन रात के चौबीस घटे मे ६-६ घटे तक पूजा करते है पुन: वे देव आगे-आगे के ६-६ घटो मे आगे-आगे की दिशाओ मे बढते जाते है अत २४ घटो मे वे देव चारो दिशाओ की पूजा कर लेते है । वहा नदीश्वर द्वीप में दिनरात का भेद नही है यह घटे के काल का हिसाब यही के अनुसार है । उसी बात को स्पष्ट करते हैं । ये देव भक्ति युक्त होकर अष्टमी से पूर्णिमा तक पूर्वाण्ह अपराण्ह, पूर्वरात्रि, अपररात्रि मे

दो-दो प्रहर तक उत्तम भक्तियुत प्रदक्षिण क्रम से जिनेंद्र भगवान की विविध प्रकार से पूजा करते है। सुगधितजल आदि से उन दिव्य प्रतिमाओ का अभिषेक आदि करते हैं। अष्टद्रव्य, वाद्य, नृत्य अनेक प्रकारो से जिन भगवान की उपासना करते है।

इस प्रकार से पूर्वादि चार दिशा सम्बन्धी १-१ अजनगिरि ४-४ दधिमुख ८-८ रतिकर ऐसे १३-१३ पर्वतो के १३-१३ जिन भवनो के जोड से वहा ५२ चैत्यालय शोभित है। उनमे स्थित सभी जिन प्रतिमाओ को नमस्कार होवे।

अरुणवर द्वीप समुद्र

नदीश्वर द्वीप के आगे अरुण नाम का द्वीप है उसको वेष्टित करके अरुणवर समुद्र स्थित है। अरुणवर समुद्र का विस्तार १३१०७२००००० योजन प्रमाण है। इस समुद्र के दूर ऊपर उठा हुआ अरिष्ट नाम का अधकार प्रथम चार स्वर्गो को आच्छादित करके पाचवे ब्रह्म स्वर्ग को प्राप्त हो गया है। मृदग के समान आकार वारी आठ कृष्णराजिया उसके बाह्य भाग मे सब ओर स्थित हैं। उस सघन अधकार मे अल्पर्द्धिक देव दिशा भेद को भूलकर चिरकाल तक भटक जाते हैं। वे यहा से दूसरे महर्द्धिक देवो के प्रभाव से निकल पाते है। अन्य प्रकार से नही निकल पाते हैं।

ग्यारहवां कुण्डलवर द्वीप

ग्यारहवा द्वीप 'कुडलवर' नाम से प्रसिद्ध है इसके मध्य भाग मे कुण्डल नामक पर्वत वलयाकार से स्थित है। इस पर्वत की ऊचाई ७५००० योजन और नीव १००० योजन है इसका मूल विस्तार १०२२० योजन, मध्य विस्तार ७२३० एव उपरिम विस्तार ४२४० योजन है। इस पर्वत का विस्तार मानुषोत्तर पर्वत से दस गुणा है। इसके ऊपर तथा तलभाग मे तटवेदी, वनखड मौजद हैं। इस पर २० कूट हैं।

पूर्वादि चार दिशाओ मे प्रत्येक मे चार चार कूट एव उनके अभ्यतर भाग मे एक एक सिद्धवर कूट है। प्रथम १६ कूटो के वज्र, वज्रप्रभ आदि

सुन्दर सुन्दर नाम है एव उन्ही नाम के धारक व्यन्तर देव इन पर रहते है। इन कूटो की ऊंचाई आदि का वर्णन नंदन के कूटो के समान है। चार सिद्ध कूटो पर चार जिन भवन है जो वर्णन मे निषधपर्वत के जिनभवन सदृश हैं।

तेरहवां रूचकवर द्वीप

तेरहवा द्वीप 'रूचकवर' नाम से प्रसिद्ध है। इसके मध्य भाग में सुवर्णमय रूचकवर पर्वत स्थित है। इस पर्वत का विस्तार सर्वत्र ८४००० योजन एव ऊचाई भी इतनी ही है इसकी नीव १००० योजनमात्र है। उस पर्वत के मूल व उपरिम भाग में वनवेदी आदि से विशेष रमणीय, तटवेदिया व उपवन स्थित है। इस पर्वत के ऊपर ४४ कूट है पूर्वदिशा मे कनक आदि उत्तम नाम वाले ८ कूट है ये कूट ५०० योजन ऊंचे, मूल मे ५०० योजन विस्तृत व ऊपर मे २५० योजन विस्तृत, वेदी, वनखडो से युक्त हैं। इन कूटों के ऊपर जिन भवनों से भूपित देवियो के भवन है उन पर क्रम से विजया, वैजयता, जयता, अपराजिता, नदा, नदवती, नदोत्तरा, और नदिषणा नामक दिक्कन्याये निवास करती है। पर्वत पर दक्षिण दिशा मे स्फटिक रजत आदि नाम वाले आठ कूटो पर इच्छा, समाहारा, सुप्रकोर्णा, यशोधरा, लक्ष्मी, शेषवती, चित्रगुप्ता और वसुन्धरा नाम की ८ दिक्कन्याये रहती है। पर्वत पर पश्चिम दिशा मे अमोघ, स्वस्तिक आदि नाम वाले ८ कूटो पर इला, सुरादेवी पृथ्वी, पद्मा, एकनासा, नवमी, सीता और भद्रा नाम की दिक्कन्याये रहती हैं। पर्वत के उत्तर मे विजय आदि ८ कूटो पर क्रम से अलभूषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीकिणी, वारुणी, आशा, सत्या ह्री और श्री नाम की दिक्कन्यायें रहती है। इनमे से पूर्व दिशा की ८ दिक्कन्यायें जिन भगवान के जन्म कल्याणक मे झारी को धारण करती है। दक्षिण दिशा गत दिक्कन्याये जिन जन्म कल्याणक मे दर्पण को धारण करती है। पश्चिम दिशा गत कन्याये जिन जन्म कल्याण मे जिन माता के ऊपर छत्रधारण

रुचकवर पर्वत व द्वीप

रुचकवर पर्वत व द्वीप

करती हैं। उत्तर दिशागत दिक्कन्यायें जिन जन्म कल्याणक में जिन माता पर चंवर ढोरती हैं।

ये सभी उपर्युक्त कूट वन वेदियों से रमणीय है। इन कूटों की वेदियों के अभ्यन्तर चार दिशाओं में पूर्वोक्त कूटों के सदृश चार महाकूट स्थित हैं। इन कूटों पर रहने वाली, सौदामिनी, कनका, शतह्रदा और कनकचित्रा देवियां जिन जन्म कल्याणक में दिशाओं को निर्मल किया करती हैं। इन कूटों के अभ्यंतर भाग में पूर्वोक्त कूटों के सदृश चार कूट है इन पर रहने वाली रूचका, रुचककीर्ति, रुचककांता और रुचक प्रभा दिक्कन्यायें जिन भगवान के जात कर्म को जानती हैं। इनमें से प्रत्येक की आयु एक पल्य है। उनके परिवार श्री देवी के समान हैं।

इन कूटों के अभ्यन्तर भाग में चारों दिशाओं में १-१ ऐसे चार सिद्ध कूट हैं इसमें पूर्वोक्त वर्णन से युक्त ४ जिन भवन है। यहां तक मध्य लोक के चैत्यालय माने जाते है।

मध्यलोक के ४५८ चैत्यालय

पूर्वोक्त मानुषोत्तर पर्वत तक मनुष्य लोक के चैत्यालय ३९८ है उनमें नंदीश्वर के ५२, कुंडलवर रूचकवर द्वीप के ४-४ मिला देने से ३९८+५२+४+४=४५८ चैत्यालय है उनमें विराजमान सभी जिन प्रतिमाओं को मेरा मन, वचन काय से बारबार नमस्कार होवे।

दूसरा जंबूद्वीप

इस जम्बूद्वीप के आगे संख्यात समुद्र व द्वीपों के बाद अतिशय रमणीय दूसरा जंबूद्वीप है। वहाँ पर वज्रापृथ्वी के ऊपर चित्रा के मध्य में पूर्वादिक दिशाओं में 'विजय' आदि देवों की दिव्य नगरियां है। ये नगरियां उत्सेध-योजन से बारह हजार योजन विस्तृत, जिन भवनों से सुन्दर, उपवन वेदियों से युक्त हैं। इनके प्राकार ३७½ योजन ऊंचे है इनका विस्तार में मूल १२½ यो० एवं ऊपर में ६¼ योजन मात्र है। इन नगरियों में मणिमय-तोरणों से युक्त २५ गोपुर द्वार है। इन नगरियों के भवनों की ६२ यो०

विस्तार ३१यो है। इन भवनो के मध्य मे १२०० यो प्रमाण विस्तृत १ कोस ऊचा राजागण है। इस राजागण के मध्य मे उत्तम प्रासाद है एव चारों दिशाओ मे ४ प्रासाद है। मध्य के प्रासाद पर विजय देव रहता है जो सदैव अपने परिवार देवो से युक्त होता हुआ सुखो का उपभोग करता है। शेष दक्षिण आदि दिशाओ में वैयजत जयत, अपराजित देव के ऐसे ही वैभव युक्त नगर है। जो कि जिन चैत्यालय से सपन्न है।

स्वयंभूरमण द्वीप

सब द्वीपो मे अंतिम द्वीप 'स्वयभूरमण' नाम वाला है इसके मध्य में मडलाकार स्वय प्रभ पर्वत स्थित है, यह पर्वत तटवेदी वन, उपवन से सहित रत्नो से देदीप्यमान है। मानुषोत्तर पर्वत, कुण्डलवर पर्वत, रुच-कवर पर्वत एव स्वयप्रभ पर्वत ये चारों पर्वत वर्तुलाकार-वलयाकार से अपने-अपने द्वीप के मध्य मे स्थित है।

तिर्यंचों की भोगभूमि-कर्मभूमि व्यवस्था

पुष्कर द्वीपस्थ मानुषोत्तर पर्वत से उधर अर्ध पुष्कर द्वीप से लेकर स्वयभूरमण द्वीपस्थ स्वयप्रभ पर्वत के इधर-इधर असख्यातो द्वीपो मे भोगभूमि व्यवस्था है यहा के तिर्यंच युगलिया उत्पन्न होते है। एक पल्य आयु से सहित ये भोगभूमिज तिर्यंच जघन्य भोगभूमि के सुखो का अनुभव करते है। स्वयप्रभ पर्वत से बाह्य अर्ध स्वयभूरमण द्वीप और स्वयभूरमण समुद्र मे तिर्यचो मे कर्मभूमि की व्यवस्था है। इन कर्म भूमिज जलचर, स्थलचर, नभचर आदि तिर्यचो मे सम्यक्त्व ग्रहण करने की एव अणुव्रत पालन करके देश सयत होने की योग्यता है। वहा पर कदाचित् किन्ही पचेंद्रिय तिर्यचो को जातिस्मरण से कदाचित् देवो के द्वारा धर्मोपदेश का लाभ मिलने से सम्यक्त्व हो जाता है कदाचित् देशव्रती भी बन जाते है। ऐसे सम्यक्त्वी और देशव्रती तिर्यंच वहा पर असख्यातो है। जो कि मर कर देवगति को प्राप्त कर लेते है। मध्य के असख्यातो द्वीपो

के भोगभूमिज तिर्यंच भी मर कर भवनत्रिक मे अथवा यदि सम्यक्त्व सहित है तो सौधर्म युगलस्वर्ग तक जन्म लेते है।

तिर्यंचों की आयु

शुद्ध पृथ्वी की उत्कृष्ट आयु १२००० वर्ष, खर पृथ्वी १००० वर्ष की, जलजीव की ७००० वर्ष, अग्निकायिक की ३ दिन, वायुकाय की ३००० वर्ष, वनस्पति की १०००० वर्ष है। दो इंद्रिय की उत्कृष्ट आयु १२ वर्ष, तीन इंद्रियो की ४६ दिन, चार इंद्रियो की ६ मास, पचेंद्रियो में सरीसृप की नौ पूर्वांग, पक्षियो की ७२००० वर्ष, सर्पों की ४२००० वर्ष, शेष तिर्यंचो की उत्कृष्ट आयु १ पूर्वकोटि प्रमाण है। यह उत्कृष्ट आयु पूर्व-पश्चिम विदेहो मे उत्पन्न हुये तिर्यंचो के तथा स्वयप्रभपर्वत से बाहर उत्पन्न हुये कर्मभूमि तिर्यंचो के सर्वकाल पाई जाती है। भरत ऐरावत क्षेत्र के भीतर चतुर्थ काल मे प्रारम्भिक प्रथम भाग में भी किन्ही तिर्यंचो के उत्कृष्ट आयु पाई जाती है।

एकेंद्रिय की जघन्य आयु उच्छवास के अठारवे भाग प्रमाण है। विकलेंद्रिय और पचेंद्रिय की जघन्य आयु इससे उत्तरोत्तर सख्यात गुणी है। जघन्य भोगभूमिज तिर्यंचो की जघन्य आयु एक समय अधिक १ पूर्वकोटि और उत्कृष्ट एक पल्य प्रमाण है। मध्यम भोग-भूमिजो की जघन्य आयु एक समय अधिक एक पल्य एव उत्कृष्ट दो पल्य है उत्कृष्ट भोग-भूमिजो की जघन्य एक समय अधिक दो पल्य एवं उत्कृष्ट आयु तीन पल्य प्रमाण है।

तिर्यंचों की उत्पत्ति-गुणस्थान आदि का वर्णन

तिर्यंचों की उत्पत्ति गर्भ और सम्मूर्छन जन्म से ही होती है। इनकी योनिया ६२ लाख प्रमाण है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, नित्य निगोद, इतर निगोद इन छहो की ७-७ लाख, वनस्पति की १० लाख, विकलत्रय की ६ लाख, पचेंद्रियो की ४ लाख इस प्रकार से ७×६=४२+१०+६+४ =६२ लाख हैं।

सभी भोग भूमिज तिर्यंचो मे केवल एक सुख ही होता है कर्मभूमिज तिर्यंचो के सुख दु:ख दोनो होते है। सञ्ज्ञी को छोडकर शेष—एकेंद्रिय से चार इंद्रिय तक एव असञ्ज्ञी पचेन्द्रियो को एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहता है। भरत ऐरावत के भीतर ५-५ आर्य खडो मे, पाच विदेहो के १६० आर्यखडो में, विद्याधर श्रेणियो में और स्वयप्रभ पर्वत के बाह्य भाग के तिर्यंचो मे 'देशविरत' तक पाच गुणस्थान हो सकते हैं। भोगभूमिज तिर्यंचो मे 'अविरत' नामक चार तक गुणस्थान ही होते है।

सम्यक्त्व के कारण

इन तिर्यंचो मे कितने ही तिर्यंच उपदेश श्रवण से, कितने ही स्वभाव से कितने ही जाति स्मरण से, आदि प्रथमोपमशम और वेदक सम्यक्त्व को ग्रहण कर लेते है।

कौन तिर्यंच कहां तक जन्म ले सकते हैं ?

पृथ्वी आदि पाच स्थावर, विकलत्रय, ये जीव कर्म भूमिज मनुष्य या तिर्यंचो मे उत्पन्न होते है। विशेष इतना है कि अग्निकायिक, वायु-कायिक जीव मरकर उसी भव से मनुष्य नही हो सकते है। असञ्ज्ञी पचेंद्रिय पर्यंत सभी जीव भोगभूमि में, नारकियों मे उत्पन्न नही होते हैं। विशेषता यह है कि असञ्ज्ञी पचेन्द्रिय जीव प्रथम नरक मे और भवनत्रिक मे जन्म ले सकते है।

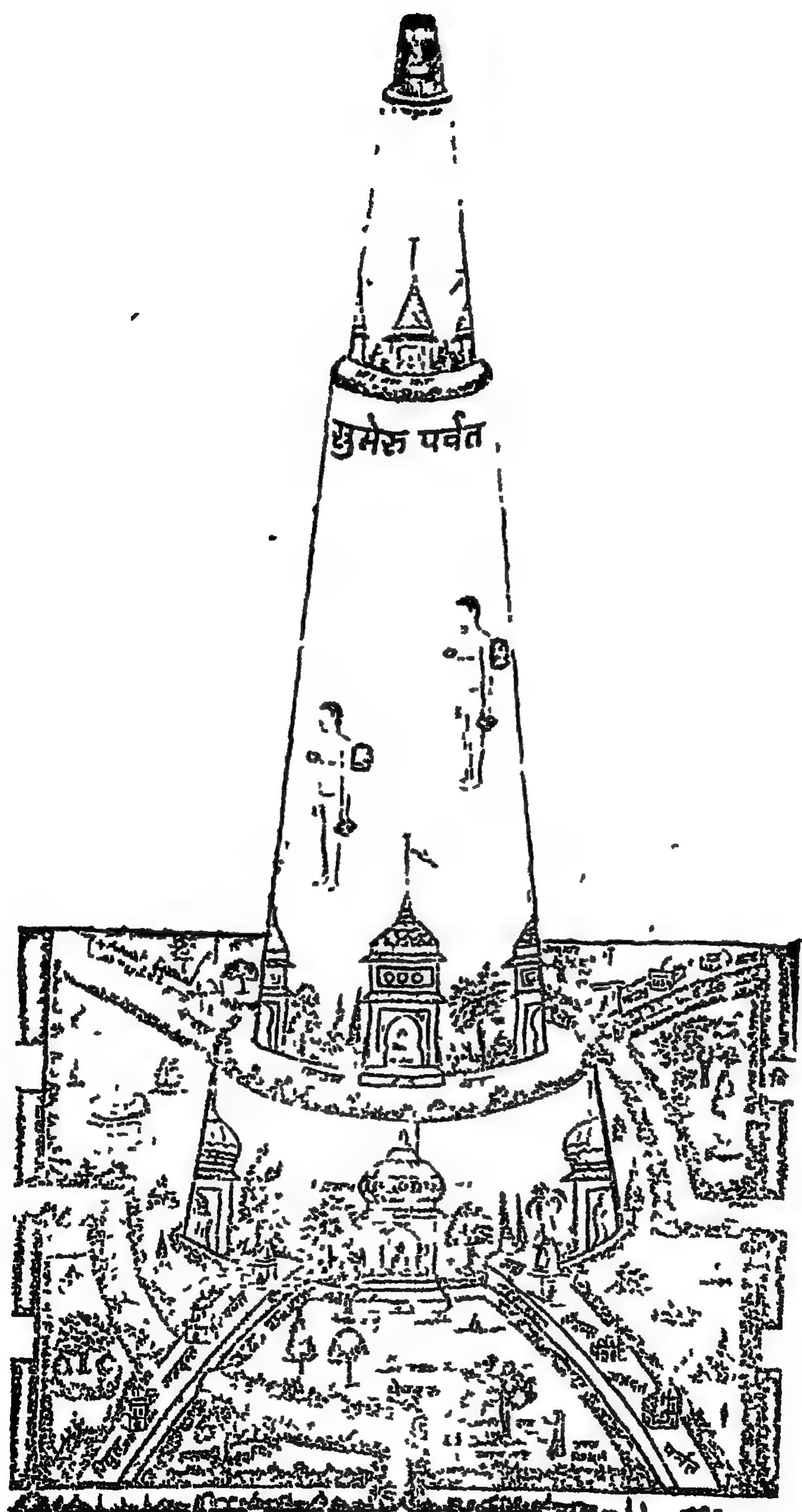
कर्म भूमिज पचेन्द्रिय सञ्ज्ञी तिर्यंच सम्यक्त्व व व्रतो के प्रभाव से मरकर बारहवे स्वर्ग तक चले जाते हैं। परन्तु भोगभूमिज तिर्यंच मरकर ईशान स्वर्ग तक ही उत्पन्न होते है। स्वर्ग, नरक और भोगभूमि मे विकलत्रय जीवो की उत्पत्ति नही होती।

एकेंद्रिय में कमल की अवगाहना कुछ अधिक १००० योजन, द्वीन्द्रिय शख की १२ योजन, तीन इन्द्रिय की ३ कोस की, चार इन्द्रिय की १ योजन और पचेन्द्रिय महामत्स्य की १ हजार योजन प्रमाण है, ये महामत्स्य आदि स्वयभूरमण समुद्र मे पाये जाते है।

एक राजु चौड़े, मोटे मध्यलोक के अन्तर्गत तिर्यंचो का वर्णन अति संक्षेप से हुआ है। □

ज्योतिर्वासी देव




सुमेरु पर्वत

ज्योतिर्लोक प्रकरण

ज्योतिष्क देवो के ५ भेद है—सूर्य, चंद्र, ग्रह नक्षत्र और तारा । इनके विमान चमकीले होने से इन्हें ज्योतिष्क देव कहते हैं । ये सभी विमान अर्ध गोलक के सदृश हैं तथा मणिमय तोरणों से अलकृत होते हुये निरन्तर देव देवियों से एवं जिन मन्दिरो से सुशोभित हैं । अपने को जो सूर्य, चन्द्र तारे आदि दिखाई देते हैं यह उनके विमानो का नीले वाला गोलाकार भाग है । जंबूद्वीप के सभी ज्योतिष्क देव मेरु पर्वत को ११२१ योजन छोड़-कर नित्य ही प्रदक्षिणा के क्रम से भ्रमण करते है ।

इन ज्योतिर्वासी देवों के विमान इस चित्रा पृथ्वी से ७९० योजन से प्रारम्भ होकर ९०० योजन की ऊँचाई तक—११० योजन में स्थित है ।

ज्योतिष्क देवों की पृथ्वी तल से ऊंचाई

विमानो के नाम	चित्रा पृ० से ऊंचाई-२ यो० में	मील में
इस पृथ्वी से तारे	७९०	३१६००००
सूर्य	८००	३२०००००
चन्द्र	८८०	३५२००००
नक्षत्र	८८४	३५३६०००
बुध	८८८	३५५२०००
शुक्र	८९१	३५६४०००
गुरु	८९४	३५७६०००
मंगल	८९७	३५८८०००
शनि	९००	३६०००००

सूर्य आदि के विमानों का प्रमाण

सूर्य का विमान ४८/६१ यो०, चन्द्र का ५६/६१ यो०, शुक्र का १ कोस, ताराओ के सबसे छोटे विमान १/४ यो० मात्र का है । इन सभी विमानों की मोटाई अपने विस्तार से आधी है । चन्द्र विमान के नीचे ४ प्रमाणागुल

जाकर राहु के विमान एवं सूर्य के नीचे केतु के विमान है। ये विमान अरिष्टमणि के काले है राहु, केतु के विमान ६-६ महिने मे पूर्णिमा एवं अमावस्या को क्रम से चन्द्र, सूर्य के विमानो को ढक देते है। इसे ही ग्रहण कहते है।

ज्योतिष्क देवों के बिम्बों का प्रमाण

बिम्ब के प्रमुख देव	योजन	मील से	किरणें
सूर्य	$\frac{४८}{६१}$	६१४७ $\frac{३३}{६१}$	१२०००
चन्द्र	$\frac{५६}{६१}$	३६७२ $\frac{८}{६१}$	१२००
शुक्र	१ को	१०००	२५००
बुध	कुछ कम $\frac{१}{२}$ को.	कुछ कम ५०० मी.	मंद किरणें
मंगल	"	"	"
शनि	"	"	"
गुरु	कुछ कम १ को.	कुछ कम १००० मी.	"
राहु	कुछ कम १ को.	" ४००० मी.	"
केतु	"	"	"
तारे	$\frac{१}{४}$	२५० मी.	"

ज्योतिष्क देवो के वाहन देव

इन सूर्य, चन्द्र के विमानो को अभियोग्य जाति के देव पूर्वादि दिशा मे सिंह, हाथी, बैल और घोडे के आकार को धरकर चार-चार हजार ऐसे १६००० देव खीचते रहते है इसी प्रकार से ग्रहो के ८०००, नक्षत्रो के ४०००, ताराओं के २००० देव वाहन जाति के हैं।

गमन मे चन्द्रमा सबसे मंद, सूर्य शीघ्रगामी, इससे अधिक शीघ्रगामी ग्रह, ग्रहों से शीघ्रतर नक्षत्र, नक्षत्रो से भी शीघ्रतर गतिवाले तारा गण है।

शीत-उष्ण किरणें

पृथ्वी के परिणाम रूप चमकीली धातु से सूर्य का विमान बना हुआ है, जो कि अकृत्रिम है। इस बिम्ब मे स्थित पृथ्वीकायिक जीवो के आतप नाम कर्म का उदय होने से उसकी किरणें चमकती है सूर्य बिम्ब मे मूल मे उष्णता नही है। उसी प्रकार से चन्द्र तारे आदि के बिब मे रहने वाले पृथ्वी कायिक जीवो के उद्योत नाम कर्म का उदय है जिसके निमित्त से मूल मे तथा किरणो मे सर्वत्र शीतलता पाई जाती है। सभी तारा, नक्षत्र, ग्रहो के बिबो के पृथ्वीकायिक जीवो उद्योत नाम कर्म का उदय है।

सूर्य आदि के बिंब में स्थित जिनमन्दिर, प्रासाद आदि

सभी विमानो के ऊपर चारो तरफ तट वेदी उपवन खड है एवं मध्य में जिन भवन है। चारो तरफ देवो के प्रमुख प्रासाद हैं। राजागण के बाहर विविध प्रकार के उत्तम रत्नो से रचित परिवार देवो के भवन हैं।

देवों की आयु

चन्द्रमा की उत्कृष्ट आयु=१ पल्य १ लाख वर्ष।
सूर्य " "=१ " १ हजार वर्ष।
शुक्र " "=१ " १०० वर्ष।
बृहस्पति " "=१ " की।
बुध, मगल आदि "=½ पल्य की।
ताराओ की " "=¼ पल्य की।

ज्योतिष्क देवागंनाओ की आयु अपने-२ पति की आयु के अर्ध प्रमाण है।

१ चन्द्र का परिवार

इन ज्योतिषी देवों मे चन्द्रमा इन्द्र है तथा सूर्य प्रतीन्द्र है। अतः ए

चन्द्र के सूर्य प्रतीन्द्र, ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र ६६९७५ कोड़ाकोडी तारे हैं। ऐसे परिवार से सहित जंबूद्वीप में दो चन्द्र है। सूर्य और चन्द्र के ४-४ प्रमुख देविया हैं और प्रत्येक देवी के ४ आश्रित ४-४ हजार देविया हैं।

सूर्य का गमन क्षेत्र

सूर्य का गमन क्षेत्र पृथ्वी से ८०० योजन ऊपर जाकर है। १ लाख योजन व्यास वाले इस जवूद्वीप के भीतर १८० योजन एव लवण समुद्र मे ३३० ४८/६१ योजन, ऐसा ५१० ३८/६१ योजन प्रमाण गमन क्षेत्र है। इतने प्रमाण गमन क्षेत्र मे १८४ गलिया है। इन गलियो में दो-दो सूर्य क्रमशः एक-एक गली में संचार करते है दोनो सूर्य आपने-सामने रहते हुये १ दिन रात्रि में एक गली के भ्रमण को पूरा करते हैं।

इस ५१० ४८/६१ योजन प्रमाण गमन क्षेत्र में सूर्य बिंब की १-१ गली ४८/६१ योजन मात्र की है एवं एक गलीसे दूसरी गली का अन्तर २-२ योजनका है।

एक मुहूर्त और एक मिनट में सूर्य का गमन

जब सूर्य प्रथम गली मे रहता है, तब एक मुहूर्त में ५२५१ २९/६० यो० गमन करता है। एक गली से दूसरी में जाने से परिधि के बढ जाने से गमन क्षेत्र बढ जाता है। अतिम १८४ वी गली में एक मुहूर्त मे ५३०५ १५/६० यो. गमन करता है।

एक मिनट सूर्य की गति ४, ३७, ६, २३ [illegible] मील प्रमाण है।

दक्षिणायन-उत्तरायण

श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन जब सूर्य अभ्यंतर मार्ग में रहता है तब दक्षिणायन का प्रारभ है एव अतिम गली में पहुंच कर वापस आना प्रारंभ करने पर उत्तरायण होता है

चक्रवर्ती द्वारा सूर्य के जिनबिंब का दर्शन

जब सूर्य पहली गली में रहता है तब अयोध्या नगरी के भीतर अपने भवन पर स्थित चक्रवर्ती सूर्य विमान मे स्थित जिन बिंब का दर्शन

करते हैं। चक्रवर्ती की दृष्टि से सूर्य का अतर ४७२६३ $\frac{७}{२०}$ यो० अर्थात् १८९०५३४००० मील है। चक्रवर्ती के चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय इतना ही है।

चन्द्र की गलियां

सूर्य के समान यही ५१० $\frac{४८}{६१}$ योजन प्रमाण क्षेत्र ही चन्द्र का गमन क्षेत्र है। इस गमन क्षेत्र मे चद्र की १५ गलिया हैं। चद्र बिब प्रमाण $\frac{५६}{६१}$ योजन की एक-एक गली है एव ३५ $\frac{२१४}{४२७}$ योजन प्रमाण एक-एक गली का अन्तराल है। प्रतिदिन दो चन्द्रमा आमने-सामने रहते हुए ६२ $\frac{२३}{२२१}$ मुहूर्त काल में एक गली का भ्रमण पूरा करते हैं। चद्रमा १ मुहूर्त में ५०७३ = $\frac{७७४४}{१३७२५}$ योजन प्रमाण गमन करता है एव १ मिनट मे लगभग ४२२७९७ मील प्रमाण गमन करता है।

कृष्ण शुक्ल पक्ष

पहली से दूसरी गली मे प्रवेश करने पर चद्र मडल के १६ भागो में से १ भाग राहु के गमन विशेष से ढक जाता है ऐसे ही १५ दिन तक १-१ कला ढकते-ढकते अमावस्या के दिन एक ही कला रह जाती है। प्रतिपदा से राहु के गमन विशेष से १-१ कला खुलती चली जाती है। १६ कला के पूर्ण होने पर पूर्णिमा होती है।

लवण समुद्र में ज्योतिषदेव

लवण समुद्र मे ५१० $\frac{४८}{६१}$ यो० प्रमाण वाले दो गमन क्षेत्र हैं उन १-१ क्षेत्रो मे २-२ सूर्य, चद्र सचार किया करते हैं। एक-एक चद्र के परिवार में पूर्वोक्त प्रमाण ग्रह, नक्षत्र, तारे कहे गये हैं।

धातकी खंड आदि द्वीप समुद्रों में ज्योतिषीदेव

धात की खड मे १२ सूर्य १२ चद्र हैं। इनके ६ गमन क्षेत्र हैं जो कि ५१० $\frac{४८}{६१}$ यो० प्रमाण वाले ही हैं। कालोदधि में ४२ सूर्य ४२ चन्द्रमा

हैं। इनके लिये २१-गमन क्षेत्र है। पुष्करार्ध मे ७२ सूर्य ७२ चद्रमा है इनके लिये ३६ गमन क्षेत्र वहा है वे भी ५१० ४८/६१ यो० प्रमाण वाले है इन एक-एक गमन क्षेत्र मे २-२ सूर्य और दो-दो चद्र भ्रमण किया करते है सभी के परिवार देव पूर्वोक्त प्रमाण है।

ध्रुव ताराओं का प्रमाण

जवूद्वीप मे ३६, लवण समुद्र मे १३९, घातकी खड मे १०१० कालोदधि में ४११२०, पुष्करार्ध मे ५३२३०० ध्रुव तारे है।

ढाई द्वीप के आगे सूर्य, चंद्र आदि का वर्णन

ढाई द्वीप के आगे सभी ज्योतिष्क देव एव तारे स्थिर ही है। आगे के असख्यात द्वीप एव समुद्र पर्यंत दूने-दूने चद्रमा एव दूने-दूने सूर्य होते गये है। ढाई द्वीप के भीतर के ही सूर्य, चन्द्र आदि मेरु की प्रदक्षिणा के क्रम से भ्रमण किया करते है। इनके गमन से ही दिन, पक्ष आदि का काल विभाग होता है।

मानुषोत्तर पर्वत के बाहर आधा पुष्कर द्वीप आठ लाख योजन का है। इसमे १२६४ सूर्य और इतने ही चन्द्रमा है। मानुषोत्तर पर्वत से ५०००० यो० की दूरी पर प्रथम वलय है। इस वलय मे इधर के पुष्करार्ध द्वीप के ७२ से दूने ७२+७२=१४४ सूर्य एव १४४ चन्द्र हैं। इस प्रथम वलय से १००००० यो. जाकर दूसरा वलय है ऐसे १००००० यो० दूर से यहां ८ वलय है। प्रथम वलय मे १४४ थे दूसरे वलय मे ४ और बढ़ा दीजिये १४८ तीसरे में १५२ ऐसे प्रत्येक वलय में ४-४ बढ़ते गये है। आठो वलयो के कुल मिलकर १२६४ सूर्य हुये है।

आगे पुष्करवर समुद्र का व्यास ३२ लाख योजन है वहा ३२ वलय है। बाह्य पुष्कर द्वीप के १२६४ को दूना करने से २५२८ सूर्य हुये, प्रथम:

वलय मे ये २५२८ सूर्य और २५२८ चन्द्रमा है। दूसरे आदि वलयो में ४-४ बढते हैं।

३२ वलयो का जोड़ ८२८८० होता है।

आगे के द्वीप के प्रथम वलय मे इसे दूना ८२८८०×२ करने से= १६५७६० सूर्य हुये। सभी द्वीप समुद्रो मे प्रत्येक वलय का अंतर १००००० योजन का है समुद्र तट या वेदी तट से ५०००० योजन का है। द्वीप से समुद्र मे और समुद्र से द्वीप मे प्रारभ मे पूर्व के द्वीप या समुद्र के सूर्यों से सख्या दूनी हो जाती है आगे उसी द्वीप या समुद्र के प्रत्येक वलय मे ४-४ बढते जाते है।

सर्वत्र १ चन्द्र के १ सूर्य, ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारे परिवार देव हैं। अन्तिम स्वयभू रमण समुद्र मे सूर्यों का प्रमाण असं-ख्यात हो जाता है। इन सभी ज्योतिष्कवासी देवो के भवनो का १-१ जिन भवन है। ऐसे ज्योतिर्वासी गृह सबधी असख्यात जिन भवनो को हमारा नमस्कार होवे।

ज्योतिर्वासी देवों में उत्पत्ति एवं सम्यक्त्व के कारण

इन ज्योतिर्वासी देवो मे सम्यग्दृष्टी का जन्म नही होता है। जिन्होनें मिथ्यात्व सहित पुण्य का उपार्जन किया है। या पचाग्नि तप आदि काय क्लेश से मिथ्या तप किया है। इत्यादि कारणो मे वहा उत्पन्न होते है। इन देवो मे जाति स्मरण, धर्मश्रवण, जिन पचकल्याणक आदि जिन महिम दर्शन, देवैश्वर्य दर्शन आदि कारणो से सम्यक्त्व उत्पन्न हो सकता है। वहां के देव मिथ्यात्व सहित सक्लेश परिणामो से मरकर कदाचित एकेंद्रिय पृथ्वी, जल, वनस्पति पर्याय मे भी जन्म ले लेते है। वहा से सम्यक्त्व सहित मरकर कर्मभूमिज आर्य मनुष्य ही होते है।

ऊर्ध्व लोक

ऊर्ध्वलोक का वर्णन

मेरु की चूलिका के ऊत्तर कुरु क्षेत्रवर्ती मनुष्य के एक बालमात्र के के अन्तर से प्रथम स्वर्ग का प्रथम इन्द्रक स्थित है। अर्थात् मेरु की चूलिकी चूलिका के ऊपर से एक बाल के अन्तर से ऊर्ध्वलोक प्रारभ होता है। यह ऊर्ध्वलोक १ लाख इकसठ योजन ४२५ धनुष, एक बाल, कम सात राजु प्रमाण है। अर्थात् मध्यलोक १ लाख ४० योजन सुमेरु प्रमाण है और चूलिका से प्रथम स्वर्ग मे १ बाल का अन्तर है एव लोकशिखर के नीचे २१ योजन, ४२५ धनुष जाकर अन्तिम इद्रक है। अतः—

१०००००+४०+२१=१०००६१ यो० ४२५ ध. १ बाल, इतना प्रमाण सात राजु मे कम हो गया है। ऊर्ध्वलोक के २ भेद—कल्प, कल्पातीत। १६ स्वर्गो को कल्प कहते है।

मेरु की चूलिका से १½ राजु तक सोधर्म ईशान स्वर्ग है। ½ राजु मे ब्रह्म युगल, ½ राजु मे लातव, कापिष्ठ, ½ राजु मे शुक्र, महाशुक्र, ½ राजु में शतार सहस्रार, ½ राजु मे आनत प्राणत, ½ राजु मे आरण अच्युत, आगे १ राजु मे नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश ५ अनुत्तर विमान है। १½+१½+½+½+½+½+½+½+१=७ राजु हुये।

वैमानिक देव



कल्प के १२ भेद

सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत ये १६ स्वर्ग हैं। इनमें से मध्य के ८ स्वर्गों में से दो-दो स्वर्गों के एक-एक इन्द्र हैं। इसलिए बारह इन्द्र होते हैं। इन बारह इन्द्रों की अपेक्षा १२ कल्प होते हैं।

कल्पातीत देवों के भेद

अधस्तन, मध्यम और उपरिम ग्रैवेयक के ३-३ भेद होते हैं अतः ग्रैवेयक ९ हुये। इसके ऊपर नव अनुदिश और पांच अनुत्तर विमान हैं।

नव अनुदिश पांच अनुत्तर के नाम

अर्चि, अर्चिमालिनी, वैर, वैरोचन, सोम, सोमरूप, अंक, स्फटिक और आदित्य ये ९ अनुदिश हैं। इनमें से आदित्य विमान मध्य में है, अर्चि अर्चिमालिनी आदि ४ क्रम से पूर्वादिक चार दिशाओं में हैं एवं सोम आदि चार विमान विदिशा में हैं। दिशा के श्रेणीबद्ध, विदिशा के प्रकीर्णक कहलाते हैं।

विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि ये ५ अनुत्तर हैं। मध्य में सर्वार्थसिद्धि एवं चार दिशा में विजय आदि विमान श्रेणीबद्ध नाम से हैं।

बारह कल्पों की विमान संख्या

सौधर्म	के	३२०००००	लांतव, कापिष्ठ	के	५००००
ईशान	,,	२८०००००	शुक्र, महाशुक्र	,,	४००००
सानत्कुमार	,,	१२०००००	शतार, सहस्रार	,,	६०००
माहेन्द्र	,,	८०००००			
ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर	,,	४०००००	आनत, प्राणत आरण, अच्युत	,,	७००

कल्पातीतों के विमान		
३ अधनस्तन ग्रै० के		१११
३ मध्यम ग्रै०	,,	१०७
३ उपरिम ग्रै०	,,	९१
९ अनुदिश के		९
५ अनुत्तर के		५

३२०००००+२८०००००+१२०००००+८०००००+४०,०-०००+५००००+४००००+६०००+७००+१११+१०७+९१+९+५=८४९७०२३ विमान हुये।

इन्द्रक प्रस्तार

स्वर्गनाम	प्रस्तार संख्या	प्रस्तार के नाम
सौधर्म, ईशान	३१	ऋतु, विमल, चन्द्र, वल्गु, वीर, अरुण, नन्दन, नलिन, कचन, रोहित, चच, मरुत, ऋद्धीश, वैडूर्य, रुचक, रुचिर, अक, स्फटिक, तपनीय, मेघ, अभ्र, हारिद्र, पद्म, लोहित, वज्र, नंद्यावर्त, प्रभाकर, पृष्ठक, गज, मित्र और प्रभा।
सानत्कुमार युगल	७	अजन, वनमाल, नाग, गरूड़, लांगल, बलभद्र और चक्र।
ब्रह्म युगल	४	अरिष्ट देवसमिति, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर।
लांतव युगल	२	ब्रह्महृदय, लातवकल्प
महाशुक्र युगल	१	शुक्र (महाशुक्र)
सहस्रार ,,	१	शतार (सहस्रार)
आनत० दो युगल	६	आनत, प्राणत, पुष्पक, शातकर, आरण अच्युत।
अधनस्तन ग्रै० ३	३	सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध।
मध्य० ग्रै० ३	३	यशोधर, सुभद्र, सुविशाल।
उपरिम ग्रै० ३	३	सुमनस, सौमनस, प्रीतिकर।
अनुदिश ९	१	आदित्य
अनुत्तर ५	१	सर्वार्थसिद्धि।

३१+७+४+२+१+१+६+३+३+३+१+१=६३

इन्द्रक विमान है।

स्वर्गों के नाम	श्रेणीबद्ध	प्रकीर्णक
सौधर्म	४३७१	३१९५५९८
ईशान	१४५७	२७९८५४३
सानत्कुमार	५८८	११९९४०५
माहेन्द्र	१९६	७९९८०४
ब्रह्म युगल	३६०	३९९६३६
लांतव युगल	१५६	४९८४२
शुक्र युगल	७२	३९९२७
शतार युगल	६८	५९३१
आनतादि दो युगल	३२४	३७०
३ अधो ग्रैं०	१०८	०
३ मध्य ग्रैं०	७२	३२
३ उपरिम ग्रैं०	३६	५२
९ अनुदिश	४	४
५ अनुत्तर	४	०

सौधर्म स्वर्ग में इन्द्रक विमान ३१, श्रेणीबद्ध, ४३७१ प्रकीर्णक ३१-९५५९८ इन तीनों को जोड़ देने से पूर्वोक्त सौधर्म के ३२००००० विमान हो जाते हैं। अर्थात् ३१+४३७१+३१९५५९८=३२००००० हुए। ऐसे ही सर्वत्र इन्द्रक श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक की संख्या जोड़ देने से उन उन कल्प सम्बन्धी विमानों की संख्या हो जाती है।

इन्द्रक विमानों का विस्तार आदि

६१ इन्द्रक विमानों के ऋतु, विमल, चन्द्र, आदि उत्तम, उत्तम नाम

हैं अन्तिम ६१वें का नाम सर्वार्थसिद्धि है। पहला इन्द्रक ४५००००० योजन का है और अन्तिम इन्द्रक १००००० योजन का है दूसरे से लेकर ६०वें तक, मध्यम प्रमाण है अर्थात् प्रथम इन्द्रक ४५ लाख का है उसमें ७०९६७-३३/९ योजन को घटा दीजिए दूसरे इन्द्रक का प्रमाण ४४२९०३२५/३१ योजन आता है ऐसे ही ६०वे इन्द्रक तक ७०९६७३३/९ योजन प्रमाण को घटाते जाइये। अन्तिम इन्द्रक १००००० योजन का हो जायेगा।

ये सभी इन्द्रक एक के ऊपर एक होने से भवनो के खन के समान है। एक-एक इंद्रक का आपस मे अतराल असख्यात योजन प्रमाण है।

श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक कहाँ है ?

सब इद्रकों की चारो दिशाओ मे श्रेणीबद्ध और विदिशाओ मे प्रकीर्णक विमान हैं। ऋतु नामक प्रथम इन्द्रक विमान की चारो दिशाओं मे से प्रत्येक दिशा में ६२ श्रेणीवद्ध विमान है। इसके आगे आदित्य नामक ६०वे इद्रक पर्यंत शेष इन्द्रकों की प्रत्येक दिशा में एक-एक कम होते गये है। अन्तिम सर्वार्थसिद्धि इद्रक के चारो दिशाओ मे १-१ श्रेणीवद्ध विमान विजय आदि नाम के है।

प्रथम ऋतु इद्रक के चारो दिशाओं के ६२-६२ मिलकर ६२×४=२४८ विमान हुये। इस प्रकार आगे-आगे एक-एक इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीवद्ध विमानों में ४-४ घटते गये हैं। ऐसे ही पहले स्वर्ग के ३१ इन्द्रको की सख्या बना लीजिए।

विमानों का विस्तार आदि

सभी इन्द्रक और श्रेणीवद्ध विमान गोल है दिव्य रत्नो से निर्मित ध्वजा तोरणो से सुशोभित है। इनके अन्तराल मे विदिशाओ मे पुष्पों के सदृश रत्नमय उत्तम प्रकीर्णक विमान है। इद्रको का विस्तार कह दिया है।

सभी श्रेणीवद्ध विमान असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं और असख्यात योजन प्रमाण ही इनका तिरछा अन्तराल है। सब प्रकीर्णक विमानों का विस्तार सख्यात व असंख्यात योजन प्रमाण है और इतना ही उसमें अंतराल भी है। इन विमानो की मोटाई और वर्ण का प्रकरण आगे दिखाते हैं।

इन्द्रक श्रेणीवद्ध और प्रकीर्णक इन तीन प्रकारो के विमानों के उपरिम व तल भागों मे रमणीय एक एक तट वेदी है यह वेदी मार्ग, गोपुर द्वार, तोरणों से सुशोभित ध्वजा पताकाओं से अत्यन्त रमणीय है।

ग्यारह स्थान के विमानों की मोटाई वर्ण आदि

स्थान	मोटाई (यो०)	वर्ण
१. सौधर्म युगल	११२१	पांचो वर्ण वाले
२ सानत्कु० युगल	१०२२	कृष्ण रहित ४ वर्ण वाले
३. ब्रह्म युगल	९२३	कृ नी. रहित ३ वर्ण वाले
४. लांतव युगल	८२४	" " "
५ शुक्र युगल	७२५	कृ. नी. लाल. रहित २ वर्ण
६. शतार युगल	६२६	" " "
७. आनतादि दो युगल	५२७	श्वेतवर्ण मुक्ताफल, कुंदपुष्प सदृश
८. अधो ग्रै० ३	४२८	"
९. मध्य० ग्रै० ३	३२९	"
१०. उप० ग्रै० ३	२३०	"
११. अनुदिश, अनुत्तर	१३१	"

संख्यात असंख्यात योजन वाले विमानों की संख्या

प्रत्येक कल्पो में राशि के पाचवें भाग प्रमाण विमान सख्यात योजन वाले हैं और अपने अपने संख्यात योजन विस्तार वाले विमानो की राशि

से कम अपनी अपनी राशि प्रमाण असंख्यात योजन विस्तार वाले है। जैसे सौधर्म कल्प मे सख्यात योजन विस्तार वाले विमान ६४०००० है, एवं ईशान कल्प मे ५६०००० है। इत्यादि।

संख्यात-असंख्यात योजन के विमान

स्थान		सख्यात योजन वाले	असख्यात योजन वाले
सौधर्म मे		६४००००	२५६००००
ईशान	"	५६००००	२२४००००
सानत्०	"	२४००००	९६००००
माहेन्द्र	"	१६००००	६४००००
ब्रह्म युगल	"	८००००	३२००००
लांतव युगल	"	१००००	४००००
शुक्र युगल	"	८०००	३२०००
शतार युगल	"	१२००	४८००
आनतादि ४ स्वर्गों मे		१४०	५६०
अधस्तन ग्रैवेयक	"	३	१०८
मध्यम	"	१८	८९
उपरिम	"	१७	७४
अनुदिश ९	"	१	८
अनुत्तर ५	"	१	४

विमानों के आधार

सौधर्म ईशान के विमान घन स्वरूप जल के आधार पर है। सानत्कुमार माहेन्द्र के विमान पवन के ऊपर स्थिति है। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार इन चार युगलो के विमान जल व पवन इन दोनो के आधार है। आनत प्राणत से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यंत सभी विमान शुद्ध आकाश तल मे स्थित है।

देवों के भवन

इद्रक श्रेणीवद्ध और प्रकीर्णक विमानो के ऊपर समचतुष्कोण व लबे विविध प्रकार के प्रासाद स्थित है। ये सब प्रासाद सुवर्णमय, स्फटिक मणिमय, मरकत, माणिक्य, इन्द्रनील, मणियो से निर्मित, उत्तम तोरणो से सुन्दर द्वारो वाले, सात आठ नौ दश इत्यादि विचित्र भूमियो से भूषित, उत्तम रत्नो से विभूषित, अनेक यन्त्रो से रमणीय रत्न दीपक, कालागरु आदि धूपो के गन्ध से व्याप्त, आसनशाला, नाट्यशाला, क्रीडनशाला आदिकों से शोभायमान, सिहासन, गजासन, मकरासन, मयूरासन आदि से परिपूर्ण विचित्र मणिमय शय्याओ से कमनीय, नित्य, विमल स्वरूप वाले काति मान अनादि निधन है।

दक्षिण-उत्तर इन्द्र और उनके विमान

सौधर्मेंद्र, सानत्कुमारेंद्र, ब्रह्मेंद्र, महाशुकेन्द्र, आनतेंद्र आरणेद्र ये ६ दक्षिण दिशा सबन्धी इन्द्र दक्षिण इन्द्र है। ईशानेद्र, माहेद्र, लातवेंद्र शतारेंद्र, प्राणतेन्द्र और अच्युतेंद्र ये उत्तर दिशा सम्बन्धी इद्र उत्तर इंद्र हैं।

ऋतु आदि ३१ इद्रक एव उनमे पूर्व, पश्चिम और दक्षिण के श्रेणीबद्ध तथा नैऋत्य आग्नेय दिशा मे स्थिति प्रकीर्णक इन्द्रो का नाम सौधर्म कल्प है। इनका स्वामी सौधर्म इन्द्र है।

उपयुक्त ३१ इंद्रको की उत्तर दिशा मे स्थिति श्रेणीबद्ध और वायव्य, ईशान दिशा के प्रकीर्णक विमान ये ईशान कल्प है इनका स्वामी ईशान इन्द्र है।

सनत्कुमार युगल के ७ इन्द्रक, उनके पूर्व-पश्चिम-दक्षिण के श्रेणीबद्ध एव नैऋत्य, आग्नेय के प्रकीर्णक, विमान, इनका नाम सनत्कुमार कल्प हैं।

इन्ही की उत्तर दिशा मे स्थित श्रेणीबद्ध और वायव्य, ईशान के प्रकीर्णक ये माहेन्द्र कल्प मे हैं।

ब्रह्म युगल के चार इन्द्रक तथा इनकी चारो दिशाओ के श्रेणीवद्ध और विदिशाओ के प्रकीर्णक, इनका नाम ब्रह्म कल्प है।

लातव युगल के ब्रह्महृदय आदि दो इन्द्रक उनकी चारो दिशाओ में स्थित श्रेणीबद्ध, विदिशाओ के प्रकीर्णक, इनका नाम लांतव कल्प है।

महाशुक्र का एक इन्द्रक, दिशाओ के श्रेणीबद्ध, विदिशा के प्रकीर्णक इनका नाम महाशुक्र दो कल्प रूप है।

सहस्रार का एक इन्द्रक, दिशा विदिशा के श्रेणीवद्ध, प्रकीर्णक इनका नाम, सहस्रार कल्प है।

आनत आदि चार स्वर्गो मे आनत आदि ६ इन्द्रक, इनकी पूर्व पश्चिम दक्षिण दिशा के श्रेणीवद्ध, नैऋत्य, आग्नेय विदिशा के प्रकीर्णक इनका नाम आनत आरण दो कल्प है।

उक्त इन्द्रक की उत्तर दिशा के श्रेणीवद्ध, तथा वायव्य, ईशान दिशा के प्रकीर्णक इनका नाम प्राणत अच्युत कल्प है।

कल्पो की सीमाये अपने अपने अन्तिम इन्द्रको के ध्वज दण्ड तक है और कल्पातीतों का अन्त कुछ कम लोक के अन्त तक है।

स्वर्गों में देवेन्द्रों के चिन्ह

सौधर्म	स्वर्ग के इन्द्रो के मुकुट मे			चिन्ह—वराह
ईशान	"	"	"	" मृग
सानत्कुमार	"	"	"	" भैंस
माहेन्द्र	"	"	"	" मछली
ब्रह्म	"	"	"	" कछुआ
ब्रह्मोत्तर	"	"	"	" मेढ़क
लांतव	"	"	"	" घोड़ा
कापिष्ठ	"	"	"	" हाथी
शुक्र	"	"	"	" चन्द्र
महाशुक्र	"	"	"	" सर्प

शतार	,,	खड्ग
सहस्रार	,,	अज
आरण,प्राणत	,,	बैल
आरण अच्युत	,,	कल्पवृक्ष

ये इन्द्रो के चौदह चिन्ह होते है ।

सौधर्म इन्द्र का नगर

सौधर्म युगल के ३१ इन्द्रकों मे जो अन्तिम इन्द्रक है उसका नाम 'प्रभ' है। इस 'प्रभ' नामक इन्द्रक के दक्षिण श्रेणी मे स्थित जो अठारवां श्रेणीवद्ध विमान है उसमे सौधर्म इन्द्र रहता है। वहाँ पर ८४००० हजार योजन विस्तृत, सुवर्णमय प्राकार से वेष्टित सौधर्म इन्द्र का नगर है। प्राकार के अग्रभाग पर कही पर पंक्तिवद्ध ध्वजाये कही पर मयूराकार यन्त्रो से शोभा बढ रही है। यह प्राकार ५० योजन विस्तृत और ३०० योजन ऊंचा है, ५० योजन की ही इसकी नीव है। इसके पूर्व मे ४०० गोपुर द्वार १०० योजन विस्तृत, ४०० योजन ऊँचे है इनका मूल भाग वज्रमय, उपरिम भाग वैडूमर्यमणिमय व सर्व रत्नमय है। सौधर्म इन्द्र का 'स्तम्भ' प्रासाद, ६० यो० की नीव सहित १२० यो० विस्तृत, ६०० यो० ऊँचा है। इस प्रासाद के भीतर १६,०००० देवियो से सेवित सौधर्म इन्द्र निरतर सुख समुद्र मे मग्न रहता है। सौधर्म इन्द्र की शची को प्रमुख करके ८ अग्र-देविया है ये आठो ही १६-१६ हजार रूप बना सकती हैं। एव एक-एक देवी के १६-१६ हजार परिवार देविया हैं। और सौधर्म इन्द्र की वल्लभा देवियां ३२ हजार हैं [(१६०००×८)+३२०००=१६०००० देविया होती है अग्रमहिषी मे प्रमुख शची है और वल्लभा मे प्रमुख 'कनक श्री' है।

सौधर्म इन्द्र के अग्रदेवियो के आठ प्रासाद १,०० यो० विस्तृत, ५०० यो० ऊँचे, ५० यो० अवगाह से सहित है। सौधर्म इन्द्र की 'कनक श्री' नाम से प्रसिद्ध श्रेष्ठ वल्लभा देवी है। उसका मनोहर प्रासाद सौधर्म इन्द्र के प्रासाद की पूर्व दिशा मे है।

ईशान इन्द्र का नगर

अन्तिम 'प्रभ' इन्द्रक की उत्तर दिशा में जो अठारवा श्रेणीवद्ध विमान है उसमें 'ईशान इन्द्र' रहता है। उसका प्रसाद प्रमाण मे सौधर्म इन्द्र के समान है उसके नगर का विस्तार ८०००० योजन तथा वल्लभा का नाम 'हेममाला' है।

सानत्कुमार इन्द्र का नगर

सानत्कुमार युगल के ७ इन्द्रकों में अन्तिम का नाम चक्र है इस चक्र इन्द्रक के दक्षिण मे स्थित सोलहवें श्रेणीवद्ध विमान मे 'सनत्कुमार इन्द्र' रहता है। दक्षिण में असख्यात योजन जाकर उसका ७२००० यो० विस्तृत नगर है। इस नगर का प्राकार जड मे २५ यो० एव २५ यो० विस्तृत २५० यो० ऊंचा है। उसकी प्रत्येक दिशा में ३०० गोपुर द्वार है। उनका विस्तार ६० यो०, ऊँचाई ३०० यो० है। वहा इन्द्र का प्रासाद ५० यो० अवगाह से सहित, १०० विस्तृत, ५०० यो० ऊंचा है। इस इन्द्र की ७२००० देवियाँ है। उनमे आठ अग्रदेवियां है। वल्लभा देवी का नाम 'कनक प्रभा' है। देवियो के प्रासाद ६० यो० विस्तृत, ४५ यो० जड़ से सहित ४५० यो० ऊँचे है ये प्रासाद उस इन्द्र प्रासाद के चारो ओर हैं।

माहेन्द्र इन्द्र का नगर

चक्र इन्द्रक को उत्तर दिशा मे स्थित सोलहवे श्रेणोवद्ध विमान में माहेन्द्र इन्द्र का नगर है उसका विस्तार ७०००० योजन है। उसके आठ अग्रदेवियो में 'कनक मण्डिता' नाम की वल्लभा देवो है। उनके प्रासाद सनत्कुमार इन्द्र की देवियों के प्रासादों के समान है।

ब्रह्म ब्रह्मोत्तर इन्द्र के नगर

ब्रह्म युगल के ४ इंद्रक में अन्तिम इन्द्रक का नाम 'ब्रह्मोत्तर' है उस ब्रह्मोत्तर इन्द्रक के दक्षिण में चौदहवें श्रेणोवद्ध विमान मे 'ब्रह्मेन्द्र' का

नगर है। उसका विस्तार ६०००० यो० है। इसका प्राकार १२½ यो० विस्तृत, २०० यो० ऊंचा है। इस प्राकार को प्रत्येक दिशा में २०० गोपुर द्वार है, गोपुर द्वारों का विस्तार ८० यो०, ऊंचाई २०० यो० है। ब्रह्मेन्द्र का प्रासाद ६० यो० विस्तृत, ४५० यो० ऊँचा है। ब्रह्मेंद्र की आठ अग्र-देवियो के प्रासाद ८० यो० विस्तृत, ४०० यो० ऊँचे है। ३४००० देविया निरंतर उसके आश्रित रहती है। उसको वल्लभा का नाम 'नोला' है। इसका प्रासाद इन्द्र प्रासाद के पूर्व मे है।

ब्रह्मोत्तर इन्द्रक की उत्तर दिशा गत पक्ति के चौदहवें श्रेणोबद्ध विमान मे 'ब्रह्मोत्तर' इन्द्र रहता है उसकी वल्लभा देवी का नाम 'नीलोत्पला' है।

लांतव-कापिष्ठ इन्द्र के नगर

लातव युगल मे २ इद्रक हैं अतिम इद्रक लातव नामक है। इस लांतव इन्द्रक विमान से दक्षिण दिशा मे पक्ति के १२ वे श्रेणीबद्ध विमान में लातव इन्द्र का पुर है। उसका विस्तार ५०००० यो० है। उसका प्राकार ६¼ यो अवगाह एव ६¼ यो० विस्तार से सहित, १५० यो० ऊचा है। प्राकार की प्रत्येक दिशा में १६० गोपुरद्वार हैं। उनका विस्तार ७० यो, ऊंचाई १६० यो० मात्र है। इस पुर में ८० यो० विस्तृत, ४० यो० नीव से युक्त, ४०० यो० ऊचा दिव्य प्रासाद है। यहीं लातव इन्द्र रहता है। लातवेंद्र की देवियो के प्रासाद ७० यो. विस्तृत, ३५ यो. नीव से सहित, ३५० यो. ऊँचे है। १६५०० देवियों से वेष्टित उस इन्द्र के ८ अग्र देवियाँ है और 'पद्मा' नाम की वल्लभा देवी है।

लातव इन्द्रक की उत्तर दिशा मे स्थित बारहवें श्रेणोबद्ध विमान मे 'कापिष्ठ' इन्द्र रहता है जो कि लातव इन्द्र के समान है उसकी वल्लभा देवी 'पद्मोत्पला' नाम से प्रसिद्ध है।

शुक्र महाशुक्र इन्द्र के नगर

शुक्र युगल मे १ इन्द्रक है जिसका नाम शुक्र है उस शुक्र विमान के दक्षिण मे दसवें श्रेणीबद्ध विमान मे 'शुक्र इन्द्र' का उत्तम नगर है। जो ४०००० यो. विस्तृत है इसका प्राकार ४ यो. जड सहित, ४ यो विस्तृत १२० यो. ऊचा है, उसकी प्रत्येक दिशा मे १४० गोपुरद्वार हैं। उन गोपुरद्वारो का विस्तार ५० यो, ऊचाई ४० यो. है। उस नगर मे ३५ यो जड से सहित, ७० यो विस्तृत, ३५० यो. ऊंचा 'शुक्र इन्द्र' का का प्रासाद है 'वहा शुक्रेंद्र की देवियो के प्रासाद ३० यो जड़ वाले, ६० यो. विस्तृत ३०० यो ऊंचे है। शुक्रेंद्र की देविया ८२५० है उनमे आठ अग्र देविया है। और 'नन्दा' नाम की वल्लभा देवी है।

शुक्र इन्द्रक से उत्तर मे दसवें श्रेणीबद्ध मे 'महाशुक्र इन्द्र' रहता है। उसकी वल्लभा का नाम 'नन्दावती' है इसका परिवार और नगर शुक्रेंद्र के समान है।

शतार-सहस्रार इन्द्र के नगर

शतार युगल मे १ इन्द्रक शतार नाम का है। इस शतार इन्द्रक के दक्षिण मे आठवे श्रेणीबद्ध विमान मे ३०००० यो. विस्तृत 'शतार इन्द्र का पुर है। इस पुर को वेष्टित करके ३ यो. जड़ से सहित, ३ यो. विस्तृत १०० यो. ऊचा प्राकार है। उसकी प्रत्येक दिशा में १२० गोपुर द्वार हैं उन द्वारो का विस्तार ४० यो., ऊचाई १२० योजन है। शतार इन्द्र का प्रासाद ३० यो. जड वाला, ६० यो. विस्तृत, ३०० यो ऊचा है। शतार इन्द्र के ४१२५ देविया है उसकी वल्लभा देवी का नाम 'सुसीमा' है। उसकी देवियो के प्रासाद २५ यो. पृथ्वी मे प्रविष्ट, ५० यो. विस्तृत, २५० यो ऊंचे हैं।

शतार इन्द्रक की उत्तर दिशा मे स्थित आठवें श्रेणीबद्ध मे 'सहस्रार इन्द्र' रहता है। उसका वर्णन शतार इन्द्र के समान है उसके 'लक्ष्मणा' नाम की वल्लभा देवी है।

आरण-अच्युत इन्द्र नगर

आनत आदि चार स्वर्गो मे ६ इन्द्रक है उसमें अन्तिम इन्द्रक का नाम 'अच्युत' है उसकी दक्षिण श्रेणी मे स्थित छठे श्रेणीवद्ध विमान मे २०००० योजन विस्तृत 'आरण नगर है' है उसके प्राकार का अवगाह २½ यो० विस्तार ½ यो ऊंचाई ८० योजनहै। इसकी प्रत्येकदिशा मे १००-१००गोपुर द्वार हैं। सभी द्वार ३० यो० विस्तृत, १०० यो० ऊंचे है। उस नगर में जो आरण इन्द्र का प्रासाद है वह २५ यो० नीववाला, ५० यो० विस्तृत, २५० यो० ऊंचा है। उसकी देविया २०६३ है उनमे ८ अग्र दवियाँ और 'जिनदत्ता' नाम की वल्लभा देवी है। देवियो के भवन २० यो० जड़ वाले, ४० यो० विस्तृत, २०० यो० ऊँचे हैं। वल्लभा देवियो के प्रासाद प्रमाण मे देवियो के भवनो के समान हैं। ऊँचाई मे २२० योजन ऊँचे है।

अच्युत इन्द्रक के उत्तर मे स्थित छठे श्रेणीवद्ध मे अच्युतइन्द्र रहता है। जो आरण इन्द्र के समान है। उसकी 'जिनदासी' नाम की वल्लभा देवी है।

लोक विभाग मे सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लातव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आरण, अच्युत ये १४ इन्द्र के नगर माने जाते है। तिलोय पण्णत्ति मे सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लातव, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत ये १२ इन्द्रो के नगर बताये है। यथा—]

प्रथम स्वर्ग युगल के ३१ इन्द्रको मे से अन्तिम 'प्रभ' इन्द्रक की दक्षिण श्रेणी मे बत्तीस श्रेणीवद्ध विमानो मे से अठारवे मे सौधर्म इन्द्र हैं। इसी इन्द्रक की उत्तर दिशा के ३२ श्रेणीवद्ध मे से अठारवे मे ईशान इन्द्र है।

सनत्कुमार युगल के ७ इन्द्रक मे से अन्तिम 'चक्र' 'इन्द्रक' की दक्षिण पक्ति मे २५ श्रेणीवद्ध विमानो मे से सोलहवें मे सनत्कुमार इन्द्र है इसी इन्द्रक की उत्तर दिशा के २५ श्रेणीवद्धो मे से सोलहवे मे माहेन्द्र इन्द्र है।

ब्रह्म युगल के ब्रह्मोत्तर इन्द्रक की दक्षिण दिशा में २१ श्रेणीवद्धों में से चौदहवें श्रेणीवद्ध में 'ब्रह्मेन्द्र' रहता है।

लातव युगल के लातव इन्द्रक की दक्षिण दिशा २० श्रेणीवद्धो में से बारहवे श्रेणीवद्ध में 'लातवेंद्र' रहता है।

शुक्र युगल के महाशुक्र इन्द्रक की उत्तर दिशा मे अठारह श्रेणीवद्धो में से दसवे श्रेणीवद्ध मे 'महाशुक्र इन्द्र' रहता है ।

शतार युगल मे सहस्रार इन्द्रक की उत्तर दिशा में सत्रह श्रेणीवद्धों मे से आठवें श्रेणीवद्ध में 'सहस्रार इन्द्र' रहता है।

जिनेन्द्र भगवान से देखे गये नाम[1] वाले इन्द्रक को दक्षिण पंक्ति के श्रेणीवद्धो मे से छठे श्रेणीवद्ध में 'आनत इन्द्र' निवास करता है।

इस इन्द्रक की उत्तर दिशा में इतनी ही सख्या प्रमाण श्रेणीवद्धो में से छठे श्रेणीवद्ध में 'प्राणत इन्द्र' निवास करता है ।

आरण इन्द्रक की दक्षिण दिशा के ११ श्रेणीवद्धो मे से छठे श्रेणीवद्ध मे 'आरण इन्द्र' रहता है। उसी इन्द्रक की उत्तर दिशा के ग्यारह श्रेणीवद्धो मे से छठे श्रेणीवद्ध मे 'अच्युत इन्द्र' का आवास है।

लोक विभाग मे भी कल्प १२ ही माने है यथा—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लांतव, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत ।

त्रिलोक सार में भी सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र ये चार कल्प, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर इन दो कल्पो का मिलकर एक इन्द्र है, अत. एक कल्प, लांतव, कापिष्ठ इन दो में भी एक इन्द्र, शुक्र, महाशुक्र दो में भी एक इन्द्र और शतार सहस्रार इन दो के मिलकर एक इन्द्र ऐसे मध्य आठ स्वर्गों के चार इन्द्र की अपेक्षा चार कल्प आगे आनत, प्राणत, आरण, अच्युत ये चार कल्प ऐसे १२ कल्प होते हैं, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर युगल, लांतव, कापिष्ठ युगल, शुक्र

---

[1] इस इन्द्रक का नाम विदित न होने से ग्रन्थकार ने स्वय ही ऐसा लिखा है।

हाशुक्र युगल और शतार सहस्रार युगल इन चार युगलो में एक-एक इन्द्र यहाँ वसती की अपेक्षा दो-दो नाम हैं, इन्द्र की अपेक्षा से नही है। आगे ानत, आरण दक्षिण इन्द्र है और प्राणत अच्युत उत्तर इन्द्र है।

वारह प्रकार के कल्पों के १२ इन्द्र पूर्वोपार्जित पुण्य के परिपाक से उत्तम रूप के धारक और दस प्रकार के परिवार से युक्त होते है। प्रतीन्द्र, ामानिक, त्रायस्त्रिश, लोकपाल, तनुरक्ष, पारिषद, अनीक प्रकीर्णक, आभि-योग्य और किल्विषक ये उपर्युक्त दस प्रकार के परिवार देव हैं।

एक-एक इन्द्र के एक-एक प्रतीन्द्र होते है वे आज्ञा, ऐश्वर्य के सिवाय, वाकी के सभी वैभव मे इन्द्र के सदृश होते है।

सौधर्म इन्द्र का वैभव

सौधर्म इन्द्र के ८४००० सामानिक देव होते है। तेतीस त्रायस्त्रिश देव होते हैं। सोम, यम, वरुण और कुवेर नाम के ४ लोकपाल होते है। आत्मरक्षदेव ३३६००० है। सौधर्म इन्द्र के पारिषददेवो मे अभ्यन्तर पारिषददेव १२०००, मध्यम पारिषद, १४०००, वाह्य पारिषद १६००० हैं। इन तीनो परिषदो के नाम क्रम से शमित्, चन्द्रा और जतु है।

अनीक जाति के देवो मे सेनाओ के भेद से ७ भेद होते है। वृषभ, अश्व, रथ, गज, पदाति, गधर्व और नर्तक ये सात सेनायें है। इन सात सेनाओ मे से प्रत्येक सेना सात-सात कक्षाओ से युक्त होती है उनमें मे प्रथम सेना का प्रमाण अपने-अपने सामानिक देवो के वरावर है। इससे आगे सप्तम सेना पर्यंत उससे दूना-दूना है। सौधर्म इन्द्र के वैल के सेना की प्रथम कक्षा मे ८४००० वैल है इससे आगे सात कक्षाओ तक वृषभ सेना का प्रमाण १ करोड़ छह लाख अडसठ हजार है—१०६६८००० है। और अश्व, रथ आदि भी प्रत्येक इतने-इतने मात्र है। सौधर्म इन्द्र के समस्त अनीको की सख्या ७४६७६००० प्रमाण है। प्रथम कक्षा के वृषभ, अश्व आदि चन्द्र सदृश धवल है।

द्वितीय कक्षा में स्थित वृषभ, अश्व आदि सूर्यमंडल सदृश वर्ण वाले हैं।

तृतीय कक्षा के वृषभ आदि फूले हुए कुमुद जैसे वर्ण वाले है।

चतुर्थ कक्षा में स्थित वे वृषभादि मरकत मणिसदृश वर्ण वाले है। पंचम कक्षा में स्थित वे वृषभादि कापोत एव मयूर कठ सदृश है। छठी कक्षा के वृषभ आदि पद्मराग मणि जैसे वर्ण वाले है। सातवी कक्षा मे स्थित वृषभ, अश्वरथ आदि इन्द्रनील मणि सदृश वर्ण वाले हैं।

सातो अनीको की अपनी-अपनी कक्षाओ के अतराल में उत्तम पटह, शख, मर्दल, काहल आदि में से प्रत्येक होते है। बहुत प्रकार की विक्रिया करने वाले ये इन्द्रो के वृषभ, तुरग, रथादि, लटकती हुई रत्नमय क्षुद्र घटिकाओ, मणि, पुष्पो की मालाओ से रमणीय, ध्वजाओ से युक्त, चवर छत्र से कातिमान्, रत्नमय तथा सुखप्रद सज्जा से सयुक्त होते है।

जो असि, मूसल, तोमर, धनुष आदि विविध शस्त्रों को हाथ में धारण करने वाले है वे सात कक्षाओं मे दिव्य रूप के धारक पदाति होते हैं। गधर्व सेना के देव षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम धैवत, निषाद इन मधुरस्वरो को गाते है। ये गधर्व देव विविध लय से युक्त वीणा, वासुरी आदि वादित्र वजाते है।

प्रथम कक्षा के देव कदर्प, राजा, राजाधिराज और विद्याधरो का अभिनय करते हैं। द्वितीय कक्षा के देव अर्ध मडलीक, महामंडलीक आदि राजाओ के चारित्र का अभिनय करते है। तृतीय कक्षा के देव वलभद्र, नारायण, प्रतिनारायणो के चरित्र का अभिनय करते है। चतुर्थ कक्षा के देव चक्रवर्तियो के चरित्र का नाटक करते हैं। पंचम कक्षा के नर्तक देव लोकपाल और इन्द्रो के सुन्दर चरित्र का नाटक करते हैं। छठी कक्षा के देव ऋद्धि सम्पन्न गणधर देवादि मुनीन्द्रो के चरित्र का अभिनय करते है। सातवी कक्षा के नर्तक देव चौतीस अतिशय, मगलमय प्रतिहार्यों से युक्त जिननाथो के चरित्र का अभिनय करते हैं! ये सभी नर्तक देव विक्रिया

से सहित होकर नित्य ही अपने इन्द्रों के सामने नृत्य आदि किया करते हैं। ये सात सेनाये प्रत्येक देवेन्द्रों के होती हैं।

इन सातो अनीको के जो अधिपति देव हैं उनके नामो को बताते है। वृषभो में अधिपति दामयष्टि, अश्वो में हरिदाम, रथो में मातलि, गजों में ऐरावत, पदातियो मे वायु, गंधर्वों में अरिष्ट यशस्क, नर्तकों मे नोलाजना देवी इस प्रकार इन सात अनोको मे ये महत्तर देव विख्यात है।

इन्द्र के ऐरावत हाथी का वर्णन

सौधर्म इन्द्र के आभियोग्य देवो का अधिपति देव बालक' नामक देव है। यह वाहनदेव विक्रिया से एक लाख उत्सेध (लघु) योजन प्रमाण ऐरावत नामक हाथी को विक्रिया करता है। इस हाथी के दिव्य रत्न मालाओ से युक्त बत्तीस मुख होते है। जो घंटिकाओ से शब्दायमान होते हुये प्रत्येक पृथक्-पृथक् शब्द करते है। चद्र के समान उज्वल रूप वाले इस हाथी के एक एक मुख में रत्नो से खचित चार-चार दात होते है एक-एक दांत पर निर्मल जल से युक्त एक-एक सरोवर होता है। एक-एक सरोवर एक-एक उत्तम कमल वनखण्ड होता है। एक-एक कमलखण्ड में विकसित बत्तोस महाकमल होते हैं। एक-एक महाकमल एक-एक योजन प्रमाण होता है। देवो की विक्रिया से निर्मित वे उत्तम कमल सुवर्णमय शोभायमान होते हैं। एक-एक महापद्म पर एक-एक नाट्यशाला होती है, उस एक-एक नाट्यशाला मे बत्तीस-बत्तीस अप्सराये नृत्य करती हैं।

सौधर्म इन्द्र के अभियोग्य, प्रकोर्णक और किल्विषकदेवो का प्रमाण असख्यात है।

सभी इन्द्रो के प्रतीन्द्र सामानिक, और त्रायस्त्रिश देवो में से प्रत्येक के दस प्रकार के परिवार, अपने इन्द्र के समान होते है। एव लोकपाल आदि के परिवार देव कुछ कम-कम होते जाते हैं।

सौधर्मइन्द्र के लोकपालो में से प्रत्येक के विमानो की सख्या ६६६६६६

है। उन विमानो मे सोमादि लोकपालो के क्रम से स्वयप्रभ, अरिष्ट, जल-प्रभ और वल्गुप्रभ नामक प्रधान विमान हैं।

सौधर्मादि दक्षिण इन्द्रो के सोम और यम ये दोनो लोकपाल समान ऋद्धि वाले होते है। उनसे अधिक ऋद्धिवाला वरुण एव उससे अधिक ऋद्धिवाला कुवेर होता है।

इन्द्र और प्रतीन्द्रों की देवियों का वर्णन

सौधर्म इन्द्र की एक-एक ज्येष्ठ देवी के अनुपम लावण्यवाली सोलह हजार परिवार देविया होती है।

सौधर्म इन्द्र के ३२ हजार वल्लभा देविया है। ये ज्येष्ठ देविया और वल्लभा देविया प्रत्येक अपने समान सोलह हजार विक्रिया करने में समर्थ है। सौधर्म ईशान से आगे के इन्द्रो की ज्येष्ठ देविया इससे दूने-दूने प्रमाण विक्रिया करने मे समर्थ हैं।

एक एक दक्षिण इन्द्र क्रम से के विनयश्री, कनकमाला, पद्मा, नदा, सुसीमा और जिनदत्ता इस प्रकार एक-एक वल्लभा देवी होती हैं।

एक-एक उत्तर इन्द्र के क्रम से हेममाला, नीलोत्पला, विश्रुता, नदा, वैलक्षणा, और जिनदासी इस प्रकार एक एक वल्लभा होती हैं।

इन इन्द्रो की वल्लभाओ मे से प्रत्येक के कामा, कामिनिका, पंकजगधा, अलबूषा ये चार महत्तरी होती है।

प्रतीन्द्रादि तीन के देवियो, की विक्रिया, ऋद्धि अपनें-अपनें इन्द्रों के सदृश है।

प्रत्येक लोकपाल के ३५००००००० देविया होती है। इन्द्रों के तनुरक्षकदेवो की देविया प्रत्येक के ६०० होती हैं।

देवियों की उत्पत्ति के स्थान

सब देविया सौधर्म, ईशान कल्प मे ही उत्पन्न होती है आगे के कल्पों मे नही। दक्षिण इन्द्र सबधी देवियो के सौधर्म कल्प मे ६००००० विमान

हैं एव उत्तर इन्द्र सबधी देवियो के ईशान कल्प में ४००००० विमान है। इन कल्पो मे उत्पन्न हुई देवियों को अपने-अपने अवधिज्ञान से जानकर वे देव अपनी-अपनी देवियो को ले जाते है।

सौधर्म कल्प मे २६०००००विमान है। एव ईशान कल्प मे २४०-०००० हैं जिनमे देव और देवी दोनो ही उत्पन्न होते है।

सौधर्म इन्द्र का नगर

उस श्रेणी वद्ध विमान के वहुमध्य भाग मे सौधर्म नाम से प्रसिद्ध सौधर्मेन्द्र का नगर है जो समचतुष्कोण ८४००० योजन प्रमाण है। इसे 'राजागण' भी कहते हैं। इस राजागण भूमि के चारो ओर दिव्य सुवर्णमय तटवेदी है जिसे 'प्राकार' भी कहते है। यह प्राकार ३०० यो० ऊँचा, ५० यो० विस्तृत, ५० यो० नीव से सहित है।

नगर के बाहर का वर्णन

इन्द्र के नगर के बाहर पाच कोट—प्राकार माने गये है। उन्हे वेदी भी कहते है। इन पाच प्राकारो के बीच-बीच में चार अन्तराल हो जाते है अर्थात् प्रथम प्राकार और दूसरे प्राकार के मध्यम मे एक अन्तराल, दूसरे तीसरे के मध्य में दूसरा अन्तराल, तीसरे चौथे प्राकार के मध्य तीसरा अन्तराल, चौथे, पाचवे प्राकार के मध्य चौथा अन्तराल है। प्रथम अन्तराल १३००००० योजन का है, द्वितीय अन्तराल ६३००००० योजन है, तीसरा अन्तराल ६४००००० योजन एव पाचवा अन्तराल ८४००००० योजन वाला है।

प्रथम अतराल मे सौधर्म इन्द्र के आत्मरक्षक देव सपरिवार रहते है। दूसरे अन्तराल मे तीनो पारिषद जाति के देव सपरिवार अपने-अपने भवनो मे निवास करते है। तृतीय अन्तराल मे सभी सामानिक देव सपरिवार निवास करते है। चतुर्थ अन्तराल मे अपने-अपने आरोहक, अनीक आभियोग्य, किल्विषक, प्रकीर्णक तथा त्रायस्त्रिंश देव सपरिवार रहते है।

नन्दन वन का वर्णन

इस पांचवे परकोटे के आगे इन्द्रपुर की चारों ही दिशाओ मे दिव्य वन खण्ड हैं। इनको ही 'नन्दन वन' कहते है। पूर्वादिक दिशाओं में क्रम से अशोक, सप्तच्छद, चपक और आम्रवन है। ये वन खण्ड पद्मग्रह के समान अर्थात् हजार योजन लम्बे, पाच सौ योजन चौडे है। इन चारो दिशा सबधी वनो में प्रत्येक के मध्य में एक-एक 'चैत्य वृक्ष' है। ये जबू वृक्ष के समान प्रमाण वाले हैं अर्थात् १० योजन ऊँचे, मध्य में ६ यो० चौडे, ऊपर में ४ यो० चौडे, प्रमुख चार महाशाखा एव अनेको लघु शाखाओ के सहित है। इन एक एक चैत्यवृक्षो के चारो तरफ 'पल्यकासन' से जिनप्रतिमायें विराजमान हैं उनको नमस्कार हो। इस प्रकार से चैत्य वृक्षो से शोभित, पुष्पकरिणी, वापो, मणिमय देव भवनो से सयुक्त, फल, पुष्प, पत्र आदि से परिपूर्ण ये वनखड अपने 'नन्दन' नाम से सार्थक होकर सभी को आनन्द देने वाले है।

लोकपाल नगर का वर्णन

नन्दन वन से चारो ही दिशाओ मे सख्यात योजन आगे जाकर सौधर्म इन्द्र के लोकपालो के नगर है। वे प्रत्येक नगर १२००० योजन लबे, ५००० यो० विस्तृत, वेदी आदि से शोभायमान है।

गणिकाओं के नगर

विदिशाओं में गणिका महत्तरियो की समचतुष्कोण नगरिया है। प्रत्येक नगरियां १००००० योजन दीर्घ और इतनी ही विस्तृत, विविध रत्न-मय प्रासादों से युक्त हैं। इनके प्रासाद १०० यो० लम्बे, ५० यो० विस्तृत विचित्र मुखमण्डप आदि से सयुक्त है। इनमे से प्रधान चार महत्तारो के नाम—कामा, कामिनी, पद्मगधा, अलबूषा है।

यहाँ तक सौधर्म इन्द्र के नगर के बाहर का वर्णन हुआ अब सोधर्म इन्द्र के नगर के भीतर का वर्णन करते हैं।

सौधर्म नगर के अभ्यन्तर का वर्णन

सौधर्म नगर के मध्य भाग में सौधर्म इन्द्र का दिव्य प्रासाद है यह प्रासाद फहराती हुई ध्वजा पताकाओ से सहित सुवर्ण, मणिमालाओं से सुन्दर, रत्नमय मत्तवारण, रत्न दीपक, वज्रमय कपाटो से संयुक्त, शय्या, आसन आदि से परिपूर्ण, सात, आठ, नौ आदि तलो से सुशोभित, रत्नो से खचित दिव्य मनोहर है। इस प्रासाद की ऊँचाई ६०० योजन, विस्तार १२० योजन, एव भवन की नीव ६० योजन प्रमाण है।

प्रासाद के मध्य मे पादपीठ से सहित अकृत्रिम आकार वाला, विशाल और उत्तम रत्नमय 'सिहासन' स्थित है। इस सिहासन पर दिव्य, उत्तम षोडश आभरणो से युक्त, सौधर्म इन्द्र विराजमान होता है। पूर्वोपार्जित करोडो सुचरित्रो से प्राप्त हुई सौधर्म शक्र की अनुपम विभूति को कौन कह सकता है? उत्तम छत्र चवरो को धारण करने वाली देवियो से, प्रतीन्द्रों और सामानिक आदि देवो से जो नित्य ही सेवित है ऐसे सौधर्म इन्द्र के १६०००० देविया है एव आठअग्रमहिषी है। माया से रहित बहुत ही अनुराग से युक्त वे निपुण देवियां नित्य ही अपने इन्द्र की सेवा करती रहती हैं।

इन्द्र के आस्थान मे पीठ अनीक के अधिपतिदेव पादपीठ सहित बहुत से रत्नमय आसनो को देते हैं। जो आसन जिसके योग्य है ऐसे ऊंच, नीच निकट, दूरवर्ती को जानकर वैसा ही आसन देते है।

इन्द्र की सभा में उत्तम दंड रत्न को हाथ में लिये हुए द्वारपाल होते हैं, वे सेवको को प्रस्तुत अप्रस्तुत कार्य को घोषणा करते है। अनेक प्रकार के कार्यों को करने मे कुशल अनेको देवगण इन्द्र की आज्ञा को सिर से ग्रहण करते हैं।

प्रतीन्द्रादि देव बड़ो भक्ति से इन्द्र सभा में अभिमुख स्थित रहते हैं। इन्द्र के प्रधान भवन पूर्वादि चारो दिशाओ मे चार होते है।

दक्षिण इन्द्रो के प्रासादो के नाम वैडूर्य, रजत, अशोक और मृषत्क-

सार, एव उत्तर इन्द्रो के भवनो के नाम—रूचक, मदर, अशोक और सप्तच्छद है।

तीर्थंकरों के वस्त्रादि वाले दिव्य स्तम्भ

सौधर्म इन्द्र के गृहो के आगे ३६ यो० ऊँचे, १ यो० मोटाई से सहित वज्रमय १२ धाराओ वाले 'मानस्तम्भ' होते है, इनकी प्रत्येक धारा का विस्तार १-१ कोस प्रमाण है। अर्थात् ये मानस्तम्भ बारह कोण सयुक्त गोल होते हैं। एक योजन चौडे मानस्तम्भ की परिधि १२ कोस (३ यो०) प्रमाण हो गई है। इसलिए इसमे १२ धाराये १-१ कोस चौड़ी है। इन मानस्तम्भो मे उत्तम रत्नमय करडक—पिटारे है। प्रत्येक करंडक ५०० धनुष विस्तृत, एक कोस लम्बे है। मानस्तम्भ ३६ यो० ऊँचा है उसमे नीचे से ५$\frac{3}{4}$ योजन तक करडक नही है एव मध्य मे २४ यो० की ऊँचाई तक करंडक है। पुन ऊपर ६$\frac{1}{4}$ यो० तक करडक नही है अर्थात् ५$\frac{3}{4}$+२४+६$\frac{1}{4}$= ३६ यो० के ऊँचे मानस्तम्भ मे पहले पौने छह योजन तक करडक नही हैं आगे २४ योजन तक है। एव उसके ऊपर सवा छह योजन तक नही हैं। रत्नमय सीको के समूहो से लटकते हुए ये सब सख्यातो करडक शक्रादि से पूज्य, अनादिनिधन, महारमणीय है।

ऐसे ही मानस्तम्भो मे करडक ईशान सनत्कुमार और माहेन्द्र इन्द्रो के भवनो में भी है।

सौधर्म इन्द्र के मानस्तम्भो के पिटारो से भरत क्षेत्र के तीर्थंकर बालक के लिए दिव्य, आभरण, भूषण आदि आते है। ईशान इन्द्र के मानस्तम्भो के पिटारो से इन्द्र ऐरावतक्षेत्रवर्ती बालक तीर्थंकरो के लिए दिव्य वस्त्राभूपण आदि लाते है। सानत्कुमार के भवन गत मानस्तम्भो से पूर्व विदेहवर्ती तीर्थंकरो के वस्त्राभूषण आते है। एव माहेन्द्र इन्द्र के भवनो के मानस्तम्भो से पश्चिम विदेहज तीर्थंकरो के लिए वस्त्र अलकार आदि लाये जाते है।

न्यग्रोध वृक्ष

इन्द्र भवनो के आगे न्यग्रोध वृक्ष होते हैं ये एक-एक वृक्ष पृथ्वी-कायिक, और जंबूवृक्ष के सदृश हैं। उन वृक्षो के मूल में प्रत्येक दिशा में एक-एक जिन प्रतिमा विराजमान हैं। जिनके चरणो मे सतत शक्रादि नमस्कार करते हैं।

उपपाद गृह और जिनभवन

उस मानस्तम्भ के पास (ईशान दिशा मे) ८ यो० ऊँचा, लम्बा और इतना ही चौड़ा उपपाद गृह है, उस उपपाद गृह में दो रत्नमयी शय्या हैं। यहीं पर इन्द्र का जन्म स्थान है। उसी दिशा मे इस उपपाद गृह के पास बहुत से शिखरो से युक्त पाडुक वन के जिन भवन सदृश उत्तम 'जिनभवन' हैं।

सुधर्मा सभा का वर्णन

सौधर्म इन्द्र के भवन मे ईशान दिशा में ३०० कोस ऊँची, ४०० कोस लम्बी, २०० कोस विस्तृत 'सुधर्मा' नामक सभा है। वेदिका आदि से सुन्दर इस सभा गृह के द्वारो की ऊँचाई ६४ कोस एव विस्तार ३२ कोस है। इस रमणीय सुधर्मा सभा मे सौधर्म इन्द्र बहुत से परिवार से युक्त विविध सुखों का अनुभव करता है।

इन्द्र के सिंहासन के आगे ८ पट्टदेवियो के ८ आसन है। इन महा-देवियो के आसन के बाहर पूर्व आदि दिशाओ मे क्रम से सोम, यम, वरुण और कुवेर लोकपाल के ४ आसन हैं। इन्द्र के आसन से आग्नेय, दक्षिण और नैऋत्य दिशा मे अभ्यन्तर मध्यम और वाह्य पारिषद देवो के क्रम से १२०००, १४०००, १६००० आसन है। नैऋत्य दिशा मे ही त्रायस्त्रिंश देवो के ३३ आसन हैं। सेनानायको के ७ आसन पश्चिम दिशा मे है। इन्द्र के आसन के वायव्य और ईशान दिशा मे क्रम से ४२ हजार-४२ हजार आसन है। चारो ही दिशाओ मे अग रक्षक के भद्रासन है। सौधर्म के पूर्वादि

प्रत्येक दिशा में ८४००० आसन है। यहाँ सुधर्मा सभा मे इस प्रकार से आसनो की व्यवस्था है।

देवियों के भवन

इन्द्र प्रासाद के चारो ओर देवी और वल्लभाओ के अनेको उत्तम रत्नमय दिव्य भवन है। इन देवियो के भवनो की ऊंचाई ५०० योजन, चौड़ाई ५० योजन एव लम्बाई १०० योजन है। वल्लभाओ के भवनो की ऊँचाई ५२० यो०, चौडाई ५२ यो० लम्बाई १०४ यो० प्रमाण है।

इन सभी भवनो मे षट् ऋतुओ के योग्य फल, पुष्पादि से व्याप्त उपवनखड, स्वच्छ जल भरी वापियाँ, आदि वस्तुये शोभायमान है। नित्य ही अनेक प्रकार के गीत, वाद्यो से वहाँ का मनोरम स्थान शब्दायमान रहता है। ये सब भवन उत्तम-उत्तम कर्केतन, मरकत, प्रवाल, पुखराज आदि रत्नो से निर्मित हैं।

इन्द्रों के यान विमान

सौधर्म इन्द्र का 'वालुक' नामक यान विमान होता है। ऐसे ईशान आदि इन्द्रो के यान विमान पुष्पक, सौमनस, श्रीवृक्ष, सर्वतोभद्र आदि सुन्दर नाम वाले है। इनमें से प्रत्येक 'यानविमान' १ लाख योजन लम्बे और चौड़े है। ये विमान दो प्रकार के है—

१—विक्रिया से उत्पन्न, २—स्वभाव से उत्पन्न।

विक्रिया से उत्पन्न हुए यान विमान विनश्वर एवं स्वभाव से उत्पन्न हुए यान विमान, नित्य अनिश्वर है। ये यानविमान फहराती हुई ध्वजाओ से रमणीय, आसन शय्या आदि से परिपूर्ण धूपघट, घटा, चामर आदि से शोभित, वन्दनमाला, सुवर्ण, मुक्ता मालाओ से सहित, सुन्दर द्वार, वज्रमय कपाटो से अलकृत शोभायमान होते है।

यान विमान मे स्वच्छ भाजन, वस्त्र, आभरण आदि वस्तुये

विक्रिया जन्य और स्वाभाविक के भेद से दो प्रकार की होती है। विक्रिया से उत्पन्न वस्त्रादि विनश्वर एव स्वभाव से उत्पन्न हुए पृथ्वीकायिक—अविनश्वर होते हैं।

यहाँ सौधर्म इन्द्र के परिवार, वैभव आदि का वर्णन किया है। ऐसे ही ईशान इन्द्र से लेकर अच्युत इन्द्र पर्यंत व्यवस्था है। बस ! परिवार देव, देवियो की सख्या मे न्यूनता एव भवन आदि के प्रमाण में न्यूनता आती गई है।

कल्पातीतों का वर्णन

नवग्रैवेयक से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यंत देव 'अहमिंद्र' होते है अतः इनके प्रतीन्द्र आदि परिवार देव नही होते है और न देविया ही होती है। इन कल्पातीतों मे उपपादसभाये, जिनभवन, दिव्यरत्नमय प्रासाद, अभिषेक सभा, सगीत शाला आदि होते है एव चैत्यवृक्ष भी होते है।

अधस्तन, मध्यम और उपरिम ग्रैवेयकों के इन्द्र भवनो की ऊँचाई क्रम से २००, १५० और १०० योजन है एव लबाई क्रम से ४०, ३०, २० योजन तथा चौडाई २०, १५, १० योजन प्रमाण है।

भवनो का प्रमाण

	ऊचाई	लबाई	चौडाई
अध० ग्रै०	२००	४०	२०
मध्य० ग्रै०	१५०	३०	१५
उप० ग्रै०	१००	२०	१०

नवअनुदिश मे भवनों की ऊचाई ५० योजन, लबाई १० यो० एव चौड़ाई ५ योजन मात्र है ऐसे ही अनुत्तरो मे भवनो की ऊचाई २५ योजन, लबाई ५ यो० और चौडाई २½ योजन मात्र है।

जिनलिगधारी मुनिगण ही सोलहवे स्वर्ग के ऊपर नव ग्रैवेयक मे जाते हैं। यहाँ ग्रैवेयको मे द्रव्यलिगी मुनि अभव्य-मुनि भी जा सकते है। किन्तु नव अनुदिश और पाच अनुत्तरो मे सम्यग्दृष्टि महामुनि ही जाते है, मिथ्यादृष्टि नही जाते हैं। विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित

इन चारो में जन्म लेने वाले जीव अधिक से अधिक दो भव मे नियम से मोक्ष जाते है। और सर्वार्थसिद्धि के देव नियम से एक भवावतारी ही होते है।

कल्पवासी देव तीर्थंकरो के कल्याणक महोत्सव में आते है किन्तु आगे के अहमिंद्र देव वही स्थित रहकर भक्ति से मस्तक को झुकाकर प्रणाम करते हैं। कल्पवासी देवो की अपेक्षा इन अहमिंद्रों को अनंत गुणा सुख अधिक है।

लौकान्तिक देवों का वर्णन

पाचवे ब्रह्म स्वर्ग के अंत में लौकातिक देव रहते है। ईशान आदि आठ दिशाओ मे गोलाकार प्रकीर्णक विमानो मे ये यथाक्रम से रहते है। लौकातिक देवो के ८ भेद होते है—सारस्वत, आदित्य, वन्हि, अरुण, गर्दतोय, तुपित, अव्यावाध, और अरिष्ट।

ईशान दिशा मे सारस्वत, पूर्व दिशा में आदित्य, आग्नेय दिशा मे वन्हि देव, दक्षिण दिशा मे वरुण, नैऋत्य भाग मे गर्दतोय, पश्चिम दिशा मे तुषित, वायव्य मे अव्यावाध और उत्तर दिशा में अरिष्ट ये आठ देव निवास करते है। इनके अतराल मे दो दो अन्य देव है उनके नाम—सारस्वत-आदित्य के अतराल मे नियम से अनलाभ और सूर्याभ देव, आदित्य—वन्हि के अंतराल मे चद्राभ सत्याभ। वन्हि-अरुण के मध्य मे श्रेयस्कर, क्षेमकर, अरुण-गर्दतोय के अन्तराल में वृषभेष्ट, कामधर, गर्दतोय-तुषित के अतराल में निर्माणरज दिगतरक्षित। तुषित और अव्यावाध के मध्य मे आत्मरक्ष सर्वरक्ष। अव्यावाध और अरिष्ट के मध्य में मरुतदेव, वसुदेव। अरिष्ट और सारस्वत के अतराल मे अश्व और विश्व नामक देव रहते है। इनकी सख्या—

देवो के नाम	सख्या	अतराल के देव	सख्या	अन्त देव	सख्या
सारस्वत	७००	अनलाभ	७००७	निर्माणरज	२३०२३
आदित्य	७००	सूर्याभ	९००९	दिगतरक्ष	२५०२५

वन्हि देव	७००७	चंद्राभ	११०११	आत्मरक्ष	२७०२७
अरुण	७००७	सत्याभ	१३०११	सर्वरक्ष	२६०२६
गर्दतोय	६००६	श्रेयस्कर	१५०१५	मरुदेव	३१०३१
तुषित	६००६	क्षेमंकर	१७०१७	वसुदेव	३३०३३
अव्यावाध	११०११	वृषभेष्ट	१६०१६	अश्व देव	३५०३५
अरिष्ट	११०११	कामधर	२१०२१	विश्वदेव	३७०३७

इन सभी लौकांतिक देवों का प्रमाण—४०७८०६ है।

लौकांतिक देवों की ऊंचाई आयु आदि

लौकांतिक देवो में प्रत्येक के शरीर की ऊंचाई ५ हाथ प्रमाण है। ये लौकांतिकदेव, देवी आदि परिवार से रहित परस्पर में हीनाधिकता से रहित, विषयों से विरक्त, देवों में ऋषि के समान होने से देवर्षि कहलाते हैं। अनित्य आदि बारह भावनाओं के चिंतवन में तल्लीन, सभी इन्द्रों, देवो से पूज्य हैं। चौदह पूर्व रूप श्रुत ज्ञान के धारी हैं। तीर्थंकरो के निष्क्रमण कल्याणक में संबोधन रूप नियोग को पूरा करने के लिए और भक्ति भाव स्तुति करने के लिए आते हैं, अन्य कल्याणको मे नही आते है। ये नियम से एकभव मनुष्य का लेकर मोक्ष चले जाते है।

इन देवों की आयु आठ सागर प्रमाण है। इनमे से अरिष्ट नामक लौकांतिक देवों की आयु नव सागर प्रमाण है। इन सभी देवो मे अरिष्ट देव श्रेणी बद्ध विमानो मे रहते है एवं अवशेष सभी देव प्रकीर्णक विमानों मे रहते हैं।

मुक्तिगामी जीवों का वर्णन

सौधर्म इन्द्र तथा इन्द्र की शचीदेवी, सौधर्म इन्द्र के सोम, यम, वरुण, कुबेर, लोकपाल, सनत्कुमार आदि दक्षिण इन्द्र, सभी लौकांतिक देव और सर्वार्थ सिद्धि के देव नियम से एक भवावतारी होते है।

स्वर्ग में जन्म का सुख

देव पूर्वोपार्जित पुण्य से देवगति नाम कर्म के उदय से जीव सुर-लोक के भीतर उपपाद गृह मे महार्घ शय्या पर उत्पन्न होते है और एक मुहूर्त मे ही छहो पर्याप्तियो को प्राप्त करके नव यौवन सपन्न शरीर वाले हो जाते है। देवो के शरीर मे नख, केश, रोम, चर्म, मास, हड्डी, चर्बी, रुधिर, नसे, मल, मूत्रादि मल नही होते है, प्रत्युत दिव्य वैक्रियक शरीर होता है।

देव विमान मे उत्पन्न होने पर पूर्व मे बिना खोले किवाड़ युगल खुल जाते है। और उसी समय आनन्द भेरी का शब्द फैलता है। भेरी शब्द को सुनकर परिवार के देव देविया 'जय जय नन्द' ऐसे विविध शब्दो को बोलते हुये आते है। किल्विष देव जय घन्टा, पटह आदि बजाते है, गधर्व देव नृत्य करते है। इन सब देव देवियो को देखकर वह देव कौतुक करता है और उसे तत्क्षण विभगज्ञान या अवधिज्ञान प्रकट हो जाता है। कितने ही मिथ्यादृष्टि देव इस वैभव को पुण्य का फल समझ कर सम्यक्त्व को ग्रहण कर लेते है।

कोई देव महा विभूति के साथ स्वय ही जिन पूजा का उद्योग करते है एव कितने देव अन्य देवो के उपदेशवश जिन पूजा करते है। द्रह मे स्नान कर दिव्य अभिषेक मडप मे प्रविष्ट हुये सिहासन पर आरुढ इस नव जात देव का अन्य देव गण अभिषेक करते है। भूषण शाला मे प्रवेश कर रत्न भूषणो से वेषभूषा करते है। पुनः व्यवसायपुर मे प्रवेश कर दिव्य चन्दन अक्षत आदि द्रव्यो को लेकर परिवार से संयुक्त हो जिनेन्द्रभवन मे जाते है। वहा प्रदक्षिणा करके 'जय जय' कार करते हुये जिन दर्शन करके क्षीर समुद्र के जल से भरे १००८ कलशो से जिन प्रतिमा का अभिषेक करते है। पुनः विधिवत् पूजा अर्चन आदि करके भृगार चवर आदि उपकरणो से पूजा करके नाटक आदि अभिनय करते है।

सम्यग्दृष्टी देव कर्म क्षय के निमित्त अतिशय भक्ति सहित जिन पूजा करते है एवं मिथ्यादृष्टी देव अन्य देवो के सबोधन से 'ये कुल देवता हैं' ऐसा मानकर जिन पूजा करते हैं। पूजा करके आकर वे देवेन्द्र अपने भवनो मे आकर सिंहासन पर विराजते है।

देवों का गमन मूल शरीर से नही है

गर्भ जन्म आदि कल्याणको मे या क्रीडा आदि के लिये यत्र तत्र जाने मे देवो के उत्तर शरीर—विक्रिया से निर्मित शरीर जाते हैं उनके मूल शरीर सुखपूर्वक जन्मस्थानो मे स्थित रहते है। विक्रिया के शरीर की स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र है। ये देव अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त मे शरीर की नई-नई विक्रिया करते रहते हैं। इन्हे इसमे कष्ट का अनुभव नही होता है प्रत्युत आनन्द आता है। इस विषय मे विशेषता इतनी है कि सौधर्म-ईशान कल्प में उत्पन्न हुई देवियो के मूल शरीर अपने-अपने स्वर्ग देवो के पास में जाते है अर्थात् आगे के स्वर्गो की सभी देवियां सौधर्म ईशान कल्प में ही जन्म लेती है पुनः इनके देव आकर इन देवियो को अपने-अपने स्वर्गों मे ले जाते है तब ये देविया मूल शरीर से ही जाती है।

देवों की आयु

सौधर्म-ईशान मे उत्कृष्ट आयु २ सागर, सानत्कुमार-माहेन्द्र मे ७, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर मे १०, लातव-कापिष्ठ मे १४, शुक्र-महाशुक्र मे १६, शतार-सहस्रार में १८, आनत-प्राणत में २०, आरण-अच्युत मे २२, नव ग्रैवेयक मे क्रम से प्रथम ग्रै० मे २३, द्वितीय मे २४, तृतीय मे २५, चतुर्थ मे २६, पचम मे २७, छठें मे २८, सातवें मे २९, आठवें ३०, नवमे मे ३१ सागर की है। नव अनुदिश मे बत्तीस एव पच अनुत्तरो मे उत्कृष्ट आयु ३३ सागर प्रमाण है।

पूर्व-पूर्व के देवो की उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक होकर आगे-आगे के

उत्कृष्ट विरह काल ४ मास का है। अनीक आदि देवो का उत्कृष्ट विरह काल—सौधर्म में ६ मुहूर्त, ईशान मे ४ मुहूर्त, सान० में ९$\frac{1}{3}$ दिन, मा० में त्रिभाग सहित १२ दिन, ब्रह्म कल्प में ४० दिन, महाशुक्र मे ८० दिन, सहस्रार में १०० दिन, आनतादि चार स्वर्गों मे सख्यात १०० वर्ष प्रमाण है।

कल्पातीत मे नवग्रैवेयको मे से प्रत्येक मे उकृष्ट अन्तर सख्यात हजार वर्ष है। नव अनुदिश और अनुत्तरो में पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण अन्तर है। जन्म-मरण का जघन्य अन्तर सब जगह एक समय मात्र है।

त्रिलोक सार मे उत्कृष्ट अन्तर की मान्यता मे अन्तर है।

सौधर्म ईशान में उत्कृष्ट अन्तर ७ दिन, सानत्कुमार युगल मे १५ दिन, ब्रह्मादि चार स्वर्गो मे १ मास, शुक्रादि चार स्वर्गो मे २ मास, आनतादि चार स्वर्गो मे ४ मास, ग्रैवेयक आदि में ६ मास प्रमाण है। सभी इन्द्र, इन्द्रो की महादेविया, लोकपाल इनका अन्तर काल ६ महीना है एव त्रायस्त्रिंश, अंगरक्षक, सामानिक, पारिषद देवो का अन्तर काल ४ महीना प्रमाण है।

काय प्रवीचर का वर्णन

सौधर्म-ईशान स्वर्गो के देव, देवांगनाओं के साथ शरीर से काम सेवन करते है। सानत्कुमार युगल के देव, देवियो के स्पर्श से, ब्रह्म आदि चार स्वर्गो के देव देवियो के रूपावलोकन से, शुक्र आदि चार स्वर्गों के देव देवांगनाओ के गीतादि सुनकर, आनत आदि चार स्वर्गो के देव, अपनी-अपनी देवांगनाओ के मन मे स्मरण मात्र से तृप्त हो जाते हैं। इन देव देवियो का पारस्परिक दांपत्य प्रेम इसी प्रकार होता है। आगे ग्रैवेयक आदि में देवियां ही नही है अतः वहा स्त्रीजन्य सुखो की बात ही नही है। वे अहमिन्द्र इन देवो की अपेक्षा अनन्त गुणा अधिक सुखी है।

देवों में लेश्यायें

सौधर्म ईशान स्वर्ग के देवो मे मध्यम पीत लेश्या, सानत्कुमार युगल मे उत्कृष्ट पीत लेश्या और जघन्य पद्म लेश्या, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लातव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र मे देवो के मध्यम पद्मलेश्या है। शतार युगल मे उत्कृष्ट पद्म एव जघन्य शुक्ल लेश्या, आनतादि चार स्वर्गो में, नव ग्रैवेयको मे देवो के मध्यम शुक्ल लेश्या होती है, तथा नव अनुदिश और पाच अनुत्तर मे विमानो के देवो में उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या होती है।

देवों में अवधि ज्ञान और विक्रिया शक्ति का प्रमाण

प्रथम दो स्वर्गों के देव घर्मा नामक पहली पृथ्वी तक विक्रिया करते हैं। सानत्कुमार युगल के देव दूसरी पृथ्वी तक, ब्रह्मादि चार स्वर्ग के देव तीसरे पृथ्वी तक, शुक्र आदि चार स्वर्गों के देव चार पृथ्वी तक, आनतादि चार स्वर्गों के देव पाचवी पृथ्वी तक, ग्रैवेयकवासी छठी पृथ्वी तक एवं अनुदिश अनुत्तर मे रहने वाले देव सातवी पृथ्वी तक विक्रिया करते है। ये सोलह स्वर्ग तक देव ही विक्रिया से गमनागमन करते है अन्य अह-मिन्द्र आदि अपने-अपने ग्रैवेयक आदि मे ही रहते है। विक्रिया से अधिक से अधिक तीसरी पृथ्वी तक जाकर सत्रावन कर सकते है। उससे नीचे नही जाते हैं।

इन देवो के अवधिदर्शन-अवधिज्ञान के विषय का भी यही प्रमाण है अर्थात् सोधर्म युगल के देव पहली पृथ्वी तक देखते जानते हैं इत्यादि। अनुत्तर विमान वासी देव मूर्तिक कर्मों के अनन्तवें भाग को कर्म सहित जीवो को तथा समस्त लोक नाली को भी देखते है। यह अधोदिशा मे अवधिज्ञान का विषय हुआ है। अब ऊर्ध्व दिशा में अवधि को बताते हैं सौधर्म आदि देव अपने-अपने स्वर्ग के विमानों के ध्वज दण्ड पर्यन्त अवधि ज्ञान से देखते हैं उसके ऊपर नही देख सकते। काल की अपेक्षा सौधर्म

युगल मे देवो का अवधि ज्ञान असख्यात करोड वर्ष तक जानता है आगे-आगे अधिक होता जाता है ।

महादेवियों की विक्रिया

सभी इन्द्रो के महादेवी आठ-आठ है । इनमें से सौधर्म ईशान की ये प्रत्येक महादेविया सोलह-सोलह हजार रूप बना सकती हैं ।

सानत्कुमार युगल मे प्रत्येक महादेवी ३२ हजार रूपो की विक्रिया कर लेती है । ब्रह्म युगल मे प्रत्येक महादेवी ६४ हजार रूप बना लेती है ।

लातव युगल मे प्रत्येक महादेवी १२८००० रूप बना लेती है ।

शुक्र युगल मे प्रत्येक „ २५६००० रूपो की विक्रिया करती है ।
शतार युगल मे प्रत्येक „ ५१२०००, „ „
अनातादि चार मे प्रत्येक महादेवी १०२४००० विक्रिया कर लेती है ।

महादेवियों की परिवार देवियां

सौधर्मद्विक मे एक-एक महादेवी की परिवार देवियाँ सोलह-सोलह हजार है । सानत्कुमार माहेन्द्र मे प्रत्येक महादेवी के ८-८ हजार परिवार देविया है । ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर मे प्रत्येक महादेवी के ४००० परिवार देवी है ।
लातव कापिष्ठ मे प्रत्येक महादेवी के २००० परिवार देविया है ।
शुक्र युगल मे „ „ १००० „ „
शतार युगल मे „ „ ५०० „ „
आनत आदि चार स्वर्ग मे „ „ २५० „ „

दक्षिण इन्द्रों की महादेवियों के नाम

शची, पद्मा, शिवा, श्यामा, कालिन्दी, सुलसा अञ्जुका, और भानु ये दक्षिण इन्द्रो की पट्टदेवियो के नाम है ।

उत्तर इन्द्रो की महादेवियों के नाम

श्रीमती, रामा, सुसीमा, प्रभावती, जयसेना, सुषेणा, वसुमित्रा और वसुंधरा ये उत्तर इन्द्रो की महादेविया है।

इन्द्रों की वल्लभिका देविया

सौधर्मद्विक मे वल्लभा	देविया	३२००० है।
सानत्कुमारद्विक मे	,, ,,	८००० है।
ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर मे	,, ,,	२००० है।
लातव कापिष्ठ मे	,, ,,	५०० है।
शुक्र महाशुक्र मे	,, ,,	२५० है।
सतार सहस्रार मे	,, ,,	१२५ है।
आनत आदि चार मे	,, ,,	६३ है।

सौधर्म ईशान इन्द्र की परिवार देविया, वल्लभा देविया और महादेविया, इनमें से प्रत्येक देवी १६००० विक्रिया करने मे समर्थ है। इससे आगे आनत आदि तक दूने-दूने प्रमाण विक्रिया कर सकती है।

देवों में सम्यक्त्व के कारण

इन देवो में से कोई देव जातिस्मरण से, कोई उपदेश श्रवण से, कोई जिनमहिम दर्शन से, कोई देवर्द्धि दर्शन से सम्यक्त्वरत्न को प्राप्त कर लेते हैं। सोलह स्वर्ग तक ये चार कारण हैं। आगे नौ ग्रैवेयको मे देवर्द्धि-दर्शन निमित्त नहीं है क्योकि वहाँ के सभी देव अहमिन्द्र-समान ऋद्धि वाले हैं। नव अनुदिश, पचअनुत्तर मे सम्यग्दृष्टि ही उत्पन्न होते हैं।

देवगति में गमन के कारण

असयत, देश सयत मनुष्य और तिर्यंच उत्कृष्टपने से अच्युत स्वर्ग पर्यंत जाते हैं। तिलोयपण्णत्ति मे तिर्यंचो का गमन उत्कृष्ट से बारहवें स्वर्ग तक ही माना है।

द्रव्य से निर्ग्रन्थ मुनि और भाव से असयत, देश सयत या मिथ्यादृष्टि ऐसे साधु- उपरिम ग्रैवेयक तक जाते हैं। एव भाव से सम्यग्दृष्टि महामुनि

सर्वार्थसिद्धि पर्यंत जाते है ।

भोग भूमिया सम्यग्दृष्टि मरकर सौधर्म ईशान स्वर्ग तक जाते है । भोगभूमिया मिथ्यादृष्टि भवनत्रिक मे जन्म लेते है । पंचाग्नि आदि तपने वाले कुतापसी अधिक से अधिक भवनत्रिक तक जाते हैं । चरक, एकदंडी, त्रिदण्डी, परिव्राजक, सन्यासी आदि अधिक रूप से ब्रह्म स्वर्ग तक जाते है । काजिका-हारभोजी, आजीवक आदि अच्युत स्वर्ग पर्यंत जाते है ।

देवों के आने के स्थान

ईशान कल्प तक के देवो का जन्म एकेंद्रिय जीवो तक मे हो सकता है । सहस्रार कल्प तक के देवो का मरकर मध्य लोक मे जन्म सज्ञी तिर्यंच,या मनुष्यो मे होता है । आनत आदि से ऊपर के देव कर्म भूमि मनुष्यो मे ही उत्पन्न होते है अन्यत्र नही । ये देव असैनी, अपर्याप्त, सम्मूर्च्छन, भोगभूमिज नही होते है प्रत्युत सैनी पर्याप्त, गर्भज, कर्म भूमिज ही होते है ।

अनुदिश अनुत्तर विमानो से च्युत होकर वलभद्र, नारायण, प्रति-नारायण पद को प्राप्त नही कर सकते है ।

मनुष्यगति, तिर्यंच गति या भवनत्रिक से आये हुये जोव त्रेसठ शलाका पुरुषो के पंद को प्राप्त नही कर सकते है । २४ तीर्थकर, १२ चक्रवर्ती, नव बलदेव, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण ये ६३ महापुरुष शलाकापुरुष कहलाते है ।

देवों की शक्ति का कथन

एक पल्य आयु वाला देव छह खंड पृथ्वी को उखाडने के लिए और उनमे स्थित मनुष्य, तिर्यंचो को मारने अथवा पोषने के लिये समर्थ है । सागरोपम आयु वाला देव जबूद्वीप को भी पलटने के लिये उनमें स्थित मनुष्य तिर्यंचो को मारने व पोषने के लिये समर्थ है । इस प्रकार से देवो की शक्ति का वर्णन किया है । ये देव कभी ऐसा कार्य करतेनही है ।

देवों में किनकी अधिकता और किनकी न्यूनता है ?

तत्त्वार्थ सूत्र महाशास्त्र के अनुसार—"स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्या-

विशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिका. ॥२०॥ गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥२१॥" अर्थात् आगे-आगे के स्वर्गों मे आयु प्रभाव, सुख, काति लेश्याओ की विशुद्धि, इन्द्रियो का विषय और अवधिज्ञान का विषय अधिक अधिक होता है। तथा यत्र तत्र गमन, शरीर को ऊचाई, परिग्रह और अभिमान आगे-आगे घटता जाता है।

कंदर्प किल्विषक आभियोग्य देवों की उत्पत्ति

जो यहाँ कदर्प-काम, राग आदि परिणामो से सहित पुण्य सचय करते हैं वे मनुष्य ईशान स्वर्ग पर्यंत कदर्प जाति के देवो मे ही उत्पन्न होते हैं, आगे नही। जो यहा गीत, गान आदि को आजोविका-नृत्य आदि कार्य करते है वे किल्विप परिणाम से सहित जोव, शुभ कर्म सचय के साथ लातव कल्प तक किल्विपक जाति के देवो मे ही पैदा होते है आगे नही होते। जो यहाँ पाप क्रिया-पूज्यो के अपमान आदि में प्रवृत्ति होते है वे आभि-योग्य भावना से सहित जोव अच्युत कल्पपर्यंत आभियोग्य जाति के देवो मे ही जन्म लेते है अन्यत्र नही। अपने अपने स्वर्ग मे जो जघन्य आयु होती है कदर्प किल्विषक और आभियोग्य देव उस जघन्य आयु से सहित होते है।

घातायुष्क देवों की आयु

तत्त्वार्थ सूत्र मे "सोधर्मशानयो सागरोपमे अधिके" ॥२९॥ सूत्र में सौधर्म, ईशान स्वर्ग मे दो सागर से कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु बताई गई है एव 'अधिक' शब्द का सबध बारहवे स्वर्ग तक करना चाहिये ऐसा कहा है। यह 'अधिक' का कथन 'घातायुष्क' को अपेक्षा मे है। घात के दो भेद है—अपवर्तन घात, कदलीघात।

वध्यमान आयु का घटना 'अपवर्तन' है और उदोयमान—(भुज्य-मान)आयु का घटाना 'कदलोघात' है। देवो मे कदलोघात सभव ही नही है अत वध्यमान आयु के घटाने से 'घातायुष्क' जीव होते है। किसी जोव ने मनुष्य में देवायु का बध कर लिया है यदि वह मिथ्यादृष्टि हो गया है तो आयु को घटाकर भवनत्रिक मे चला जायेगा और यदि सम्यग्दृष्टि

है तो किसी निमित्त से परिणामो की विशुद्धि घट जाने से वह आयु को घटाकर भी नीचे के स्वर्गो मे जन्म लेता है और वहा की उत्कृष्ट स्थिति में कुछ स्थिति बढाकर जन्म लेता है। जैसे ऊपर के स्वर्ग की सात सागर की आयु बाधी थी तो वह सम्यग्दृष्टि, घातायुष्क होता हुआ पहले दूसरे स्वर्ग मे कुछ अधिक २ सागर की आयु को प्राप्त कर लेगा। यहा कुछ अधिक से अर्ध सागर ग्रहण करना चाहिए।

सौधर्म युगल मे घातायुष्क की उत्कृष्ट आयु			$२\frac{१}{२}$ सागर
सानत्कुमार माहेन्द्र मे	"	"	$७\frac{१}{२}$ सागर
ब्रह्म ब्रह्मोत्तर मे	"	"	$१०\frac{१}{२}$ सागर
लातव कापिष्ठ मे	"	"	$१४\frac{१}{२}$ सागर
शुक्र महाशुक्र मे	"	"	$१६\frac{१}{२}$ सागर
शतार सहस्रार मे	"	"	$१८\frac{१}{२}$ सागर प्रमाण है।

इससे आगे घातायुष्क जीव उत्पन्न नही होते है। सर्वार्थसिद्धि पर्यंत सभी देवगण सागरोपम आयु तक अपरिमित सुखो को भोगते है।

ऊर्ध्व लोक के चैत्यालय

इस ऊर्ध्व लोक मे जितने वैमानिक देवो के विमान है। उनमे एक-एक मन्दिर होने से उतने ही जिन मन्दिर है। यथा—

सौधर्म	स्वर्ग के	३२०००००	आनत, प्राणत, स्वर्ग के]		
ईशान	"	२८०००००	आरण, अच्युत	"	७००
सानत्कुमार	"	१२०००००	अधस्तन तीन ग्रै	"	१११
माहेन्द्र	"	८०००००	मध्यम तीन ग्रै	"	१०७
ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर	"	४०००००	उपरिम तीन ग्रै.	"	९१
लातव कापिष्ठ	"	५००००	नव अनुदिश	"	९
शुक्र महाशुक्र	"	४००००	पच अनुत्तर	"	५
सतार, सहस्रार	"	६०००			

३२०००००+२८०००००+१२०००००+८०००००+४००००० + ५००००+४००००+६०००+७००+१११+१०७+९७+९+५=

८४९७०२३ होते है।

इन चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस जिन चैत्यालयोको मेरा मन वचन काय पूर्वक बारम्बार नमस्कार होवे।

सिद्ध लोक और सिद्ध शिला

सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक के ध्वज दण्ड से १२ योजन मात्र ऊपर जाकर 'ईषत्प्राग्भार' नाम की आठवी पृथ्वी स्थित है। तीन भुवन के मस्तक पर स्थित इस पृथ्वी की पूर्व-पश्चिम चौडाई १ राजु है, उत्तर-दक्षिण लम्बाई ७ राजु है एव मोटाई आठ योजन मात्र है। अत यह पृथ्वी लोक के अन्त तक आठ योजन मोटी है। इस पृथ्वी के ऊपर तीन वात वलय है जो कुछ कम एक योजन मात्र है। घनोदधि वात वलय २ कोस घनवात वलय १ कोस, तनु वात वलय ४२५ धनुप कम १ कोस है।

इस आठवी पृथ्वी के मध्य मे रजतमयी, श्वेत छत्र के आकार वाला मनुष्य क्षेत्र समान, गोल, पैंतालीस लाख योजन विस्तृत 'सिद्ध क्षेत्र' है। तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ मे इस क्षेत्र को 'उत्तान धवल छत्र' सदृश कहा है। इस क्षेत्र के मध्य की मोटाई आठ योजन है एव क्रम से घटते-घटते अन्त मे १ अगुल मात्र है। अर्थात् यह सिद्ध शिला उपरिम भाग मे तो समान रूप है और नीचे हानि वृद्धि रूप है। त्रिलोकसार मे इस सिद्ध शिला को औधे रखे हुए कटोरे के सदृश कहा है। यह शिला ४५०००००० योजन विस्तृत है और इसकी परिधि १४२३०२४९ योजन प्रमाण है।

सभी सिद्ध भगवान सिद्ध क्षेत्र के उपरिम भाग-तनु वात के चतुर्थ भाग मे विराजमान है, अन्तिम शरीर के प्रमाण से किंचित् न्यून आत्म-प्रदेश वाले है।

आठवी पृथ्वी के ऊपर सात हजार पचास धनुष जाकर सिद्धो का आवास है। अर्थात् सर्वार्थसिद्धि से १२ योजन ऊपर की आठवी पृथ्वी है यह एक राजु चौडी ७ राजु लम्बी है किंतु मोटी ८ योजन मात्र ही है इस पृथ्वी के मध्य मे सिद्ध शिला है वह भी मोटी ८ योजन मात्र ही है मध्य मे गोलाकार है, जो कि ४५०००००० योजन प्रमाण है। इसके ऊपर

४२५ धनुष कम १ योजन मे तीन वातवलय है सिद्ध परमेष्ठी मे अतिम तनुकाल वलय मे स्थित है। एक योजन मे ८००० धनुप होते है उसमें से ७०५० धनुष ऊपर जाकर सिद्धो का आवास है जो कि १०५०५९२६०१-९५३$\frac{1}{3}$ योजन प्रमाण है।

तनुवात वलय १ कोस का है एक कोस मे २००० धनुष होते है इसमे ४२५ धनुप घटाइये तब पद्रह सौ पचहत्तर धनुष होता है। २०००—४२५ =१५७५ धनुप। तनुवातवलय के कोस प्रमाणागुल की अपेक्षा से है और सिद्धो की अवगाहना व्यवहारागुल की अपेक्षा से है। इसलिये १५७५ को ५०० से गुणा करके व्यवहार धनुष बना लीजिये १५७५×५००=७८७-५०० तनुवात की मोटाई को पाच सौसे गुणा करके १५०० का भाग देने पर सिद्धो की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण होता है एव ९००००० का भाग देने पर जघन्य अवगाहना होती है जैसे—१५७५×५००÷१५०० =५२५ धनुष। १५७५×५००—९००००० =$\frac{7}{8}$ धनुष,=३$\frac{1}{2}$ हाथ। इसमे सिद्धो की जघन्य अवगाहना सात धनुष के आठवे भाग है। धनुष के ४ हाथ होते हैं अत ७×४=२८; २८—८=३$\frac{1}{2}$। सिद्धो की जघन्य अवगाहना ३$\frac{1}{2}$ हाथ है एव उत्कृष्ट अवगाहना ५२५ धनुष है।

वे सिद्ध जीव जहा तक धर्मास्तिकाय है वही तक जाकर स्थित हो गये है आगे नही जाते है। एक जीव से अवगाहित क्षेत्र के भीतर जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना से सहित अनत सिद्ध होते हैं। मनुष्य लोक प्रमाण स्थित तनुवात के उपरिम भाग मे सब सिद्धो के मस्तक सदृश होते है अधस्तन भाग मे कोई विसदृश होते है। जितना मार्ग मध्यलोक मे ऊपर जाने योग्य है उतना जाकर लोक शिखर पर सब सिद्ध पृथक् पृथक मोम से रहित मूषक के अभ्यतर आकाश के सदृश,हो जाते है। ये सिद्ध भगवान आठ कर्मो से छूटकर सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान आदि अनतगुणो के सागर स्वरूप, अरूपी, अशरीरी, नित्य, निरजन, कृतकृत्य, होकर एक ही समय मे युगपत् तीनलोक, तीनकालवर्ती समस्त पदार्थो को जान लेते है और अनत सुख सागर मे सदा के लिये निमग्न हो जाते है असख्यों कल्प कालो के बीत जाने पर भी वे वापस ससार में नही आते है। ससार के सपूर्ण दु.खो से

छूटकर आत्मीक अनत शिव सौख्य का अनुभव करते है।

लोक मे एक शास्त्र या संपूर्ण शास्त्र को अच्छी तरह से जान लेने पर मनुष्य को वहुत ही सतोष सुख-आनद उत्पन्न होता है पुनः सपूर्ण लोकालोक को जानने वालों को कितना सुख होगा इसका अनुमान करना भी अशक्य है। जिन्हे वह ज्ञान और सुख प्राप्त हुआ है वे ही उस आनंद का अनुभव कर सकते हैं। अन्य जन नही कर सकते। त्रिलोकसार मे कहा है कि—

> चक्किकुरुफणिसुरिंदे सहमिदे ज सुह तिकालभव।
> तत्तो अणंतगुणिदं सिद्धाणं खणसुह होदि ॥५६०॥

अर्थ—चक्रवर्ती के सुख से भोग भूमियो का सुख अनतगुणा है भोग भूमियो से धरणेन्द्र का सुख अनतगुणा है, उससे देवेन्द्र का सुख अनतगुणा है, उससे अहमिद्रो का सुख अनतगुणा है। इन सभी के अनतानत गुणित अतीत अनागत और वर्तमान काल सवधो सम्पूर्ण सुखो को एकत्रित करिये उसकी अपेक्षा भी अनत गुणा अधिक सुख सिद्धो को एक क्षण मात्र मे उत्पन्न होता है यह तो केवल उदाहरण मात्र है ससारी सभी जीवो का सुख आकुलता सहित है और सिद्धो का सुख निराकुल है। इसलिय सिद्धो का सुख वचन के अगोचर है।

ससार मे कोई-कोई भव्य जीव सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक-चारित्र रूप रत्नत्रय के वल से कर्मो का नाश करके स्वय ही अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेते है उसी का नाम सिद्धावस्था हे "सिद्धि स्वात्मोपलब्धि." के अनुसार अपने आत्मा के स्वरूप को प्राप्त कर लेना ही सिद्धि है ऐसे सिद्ध परमेष्ठी अनतानत प्रमाण है। वर्तमान में भी विदेह आदि से कितने ही भव्य जो रत्नत्रय रूप पुरुषार्थ के बल से अपने अनत गुणो को और शाश्वत सौख्य, पूर्ण ज्ञान को प्रकट करेंगे। उन अतीताना गत वर्तमान कालीन सम्पूर्ण सिद्धो को सिद्ध भक्तिपूर्वक मेरा मन बचन काय से बारम्बार नमस्कार होवे।

> सिद्धांस्त्रैलोक्यमूर्धस्था-नकृतानि कृतानि च।
> जिनचैत्यानि लोकेऽस्मिन् वंदे सर्वाणि सिद्धये ॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रंथ ॥



जंबूद्वीप के पर्वत और क्षेत्र

चार्ट (क)

पर्वत और क्षेत्रो के नाम	विस्तार (दक्षिणउत्तर)	(जघन्य) लम्बाई पूर्व पश्चिम	लम्बाई (उत्कृष्ट)	ऊंचाई
क्षेत्र—भरत क्षेत्र	५२६ ६/१९	×	१४४७१ ५/१९	
पर्वत—हिमवान्	१०५२ १२/१९	१४४७१ ५/१९	२४९३१ १५/१९	१००
क्षेत्र—हेमवत	२१०५ ५/१९	२४९३१ १५/१९	३७६७४ १६/१९	
पर्वत—महाहिमवान्	४२१० १०/१९	३७६७४ १६/१९	५३९३१ ६/१९	२००
क्षेत्र—हरि	८४२१ १/१९	५३९३१ ६/१९	७३९०१ १७/१९	
पर्वत—निषध	१६८४२ २/१९	७३९०१ १७/१९	९४१५६ २/१९	४००
क्षेत्र—विदेह	३३६८४ ४/१९	९४१५६ २/१९	मध्य मे उत्कृष्ट-१००००० यो	
पर्वत—नील	१६८४२ २/१९	७३९०१ १७/१९	९४१५६ २/१९	४००
क्षेत्र—रम्यक	८४२१ १/१९	५३९३१ ६/१९	७३९०१ १७/१९	
पर्वत—रुक्मि	४२१० १०/१९	३७६७४ १६/१९	५३९३१ ६/१९	२००
क्षेत्र—हैरण्यवत	२१०५ ५/१९	२४९३१ १५/१९	३७६७४ १६/१९	
पर्वत—शिखरी	१०५२ १२/१९	१४४७१ ५/१०	२४९३१ १५/१९	१००
क्षेत्र—ऐरावत	५२६ ६/१९		१४४७१ ५/१३	

(क)

वर्ण	पर्वत की नीव	कूट	ऊंचाई	चौड़ाई
सुवर्णमय	२५यो.	११	२५ यो	मूल में २५, मध्य मे १८ ३/४ अन्त मे १२ १/२
रजतमय	५०	८	५० यो.	मू. मे ५०, मध्य ३७ १/२ अत २५
तप्तसुवर्ण	१००	९	१०० यो.	मू १००, मध्य ७५, अन्त ५०
वैडूर्य मणि	१००	९	१००	मू १००, मध्य ७५, अन्त ५०
रजत	५०	८	५०	मू ५०, मध्य ३७ १/२ अन्त ५२
हेममय	२५	११	२५	मू २५ मध्य १८ ३/४ अन्त १२ १/२

जंबूद्वीप के पर्वत और क्षेत्र — चार्ट (ख)

पर्वत और क्षेत्र	विस्तार (दक्षिण उत्तर)	(जघन्य) लम्वाई पूर्व पश्चिम	लम्वाई (उत्कृष्ट)	ऊंचाई
पर्वत—विजयार्ध	५०	९७४८$\frac{१२}{१९}$	१०७२०$\frac{११}{१९}$	२५
क्षेत्र—दक्षिण भारत	२३८$\frac{३}{१९}$	×	९७४८$\frac{१२}{१९}$	
क्षेत्र—उत्तर भरत	२३८$\frac{३}{१९}$	१०७२०$\frac{११}{१९}$	१४४७१$\frac{६}{१९}$	

ऐसे ही ऐरावत का विजयार्ध और दक्षिण उत्तर ऐरावत का प्रमाण है।

पर्वत और क्षेत्र	विस्तार (दक्षिण उत्तर)	(जघन्य) लम्वाई पूर्व पश्चिम	लम्वाई (उत्कृष्ट)	ऊंचाई
पर्वत—विजयार्ध	५०	९७४८$\frac{१३}{१९}$	१०७२०$\frac{११}{१९}$	२५
क्षेत्र—दक्षिण ऐरावत	२३८$\frac{३}{१९}$	१०७२०$\frac{११}{१९}$	१४४७१$\frac{५}{१९}$	
क्षेत्र—उत्तर ऐरावत	२३८$\frac{३}{१९}$	×	९७४८$\frac{१२}{१९}$	

संख्या	नाम	विस्तार		लम्बाई	ऊंचाई
१६	वक्षार पर्वत	५००	×	१६५९२$\frac{२}{१९}$	निष नी के पास ४०० नदी के पास ५००
३२	विदेह क्षेत्र	२२१२$\frac{७}{१९}$	×	१६५९२$\frac{२}{१९}$	×
४	गजदन्त	५००	×	३०२०९$\frac{६}{१९}$	निष नी के पास ४०० सुमेरु, के पास ५००
३२	विदेह के विजयार्ध	५०	×	२२१२$\frac{२}{१९}$	२५
४	यमकगिरि	मूल मे १००० मध्य मे ७५० अन्त मे ५०० यो गोल हैं।	ये पर्वत गोल हैं।		२०००यो
८	दिग्गज पर्वत	ये पर्वत गोल हैं।	मू मे १००, म में ७५ अत मे ५० यो		१००यो
२००	काचन गिरि	काचन पर्वत गोल हैं।	मू मे विस्तार १०० म मे ७५ अ मे ५०		१००यो
४	नाभि गिरि	मू १००० यो. म ७५० अत मे ५०० गोल हैं।			१०००यो
३४	वृषभ गिरि	मू १००० यो मध्य ७५ अ मे ५० गोल हैं।			१००यो

(ख)

वर्ण	पर्वत की नीव	कूट	ऊचाई	चौडाई
चादी का	६$\frac{1}{4}$	९	६$\frac{1}{4}$	मू. ६$\frac{1}{4}$ मध्य मे ४ यो. १$\frac{1}{2}$ कोस, अन्त में ३ यो. $\frac{1}{2}$ कोस।
चादी	६$\frac{1}{4}$	९	६$\frac{1}{4}$	मू. मे ६$\frac{1}{4}$, मध्य ४ यो, १$\frac{1}{2}$ कोस, अन्त मे ३ यो. $\frac{1}{2}$ कोस

बण	नीव	कूट	ऊचाई	चौडाई
सुवणमय	१०० सर्वत्र १२५ चतुर्थभाग	सभी पर ४-४	नि. नी. के पास १०० यो. सी सो. के १२५ यो.	
सी. रजत, विद्यु. स्व. गंध स्व, माल्य वंडूर्य,	१०० सर्वत्र १२५ चतुर्थभाग,	गध मो. ७ वि मा ९	सु. के पास १२५ यो. निष. नी. के पास १०० यो म. मे यथायोग्य	मू. मे ६$\frac{1}{4}$ मध्य ४ यो. १$\frac{1}{2}$ कोस, अन्त मे ३ यो. $\frac{1}{2}$ कोस।
चादी के	६$\frac{1}{4}$ योजन	सभी पर ९-९	६$\frac{1}{4}$	

स्वर्णमय — २५ योजन

श्वेत — २५ योजन

विचित्र रत्नमय

नदियो के नाम	उद्गम स्थान,	उद्गम का प्रमाण	प्रवेश	गहराई उद्गम मे	गहराई प्रवेश मे	उद्गमतोरण
गगा सिंधु	पद्म सरोवर से	६ १/४	६२ १/२	१/२ कोस	५ को	९ ३/८
रोहित रोहितास्या	म्हापद्म से रोहित पद्म से रोहि.	१२ १/२	१२५	१ कोस	१० को	१८ ६/८
हरित् हरिकाता	तिगिंछ से हरित् महापद्म से हरिकाता	२५	२५०	२ कोस	२० को	३७ ४/८
सीता सीतोदा	केसरी से सीता तिगिंछ से सीतोदा	५०	५००	४ कोस	४० को.	७६यो.
नारी नरकाता	पुडरीक से-नारी केसरी से नरकाता	२५	२५०	२ ,,	२० को	३७ ४/८
सुवर्ण. रूप्यकूला	महापुडरीक मे सुवर्ण पुडरीक से रूप्यकूला	१२ १/२	१२५	१ ,,	१० को.	१८ ६/८
रक्ता रक्तोदा	महापुडरीक से रक्ता रक्तोदा	६ १/४	६२ १/२	१/२ ,,	५ को.	९ ३/८
विभगा नदी १२ है	नील, निषध की तलहटी के कुण्ड	१२ १/२	१२५	१ कोस	१० को	१८ ६/८
गगा सिंधु १६ विदेह की	नील की तलहटी के कुण्ड से	६ १/४	६२ १/२	१/२	५ ,,	९ ३/८
रक्ता रक्तोदा १६ विदेह की	निषध की तलहटी के कुण्ड से	६ १/४	६२ १/२	१/२	५ ,,	९ १/८

इन सभी नदियो के दोनो तरफ वेदी और १/२ योजन के उपवन खड हैं। जिनमे देवप्रसाद, वापिक जल यत्र, आदि विद्यमान हैं।

नदियां चार्ट (क)

प्रवेशतोरण्य	परिवार नदिया	निकलते [illegible]	विजयार्ध गुफा मे प्रवेश के समय	किस क्षेत्र मे हैं	जलधारा की मोटाई
९३¾	१४०००×२=२८०००	६०यो	८ योजन	भरत	२५यो॰
१८७½	२८०००×२=५६०००	१२०	नाभिगिरि को ½ यो छोडकर मुड जाती	हैमवत	५०
३७५	५६०००×२=११२०००	२४०	नाभिगिरि को ½ यो छोडकर	हरि	१००
७५०	८४०००×२=१६८०००	४८०	सुमेरु को अर्ध यो. छोडकर सीतोदा विद्युत्प्रभ की गुफा मे सीता माल्यवान की	विदेह	२००
३७५	५६०००×२=११२०००	२४०	नाभि. को ½ यो॰ छोडकर	रम्यक	१००
१८७½	२८०००×२=५६०००	१२०	नाभिगिरि को ½ योजन छोडकर	हैरण्यवत	५०
९३¾	१४०००×२=२८०००	६०	विजयार्ध की गुफा से ८ योजन	ऐरावत	२५
१८७½	२८०००×१२=३३६००	+	विदेह मे	पूर्व-पश्चिम विदेह मे	
९३¾	१४०००×२=२८००० प्रत्येक की २८०००×१६ =४४८०००	+	विदेह मे विजयार्ध की गुफा से ८ यो॰	कच्छा आदि १६ देशो मे	
९३¾	१४०००×२=२८००० सभी की २८०००×१६ =४४८०००	+	विदेह मे विजयार्ध की गुफा से ८ यो॰	मगलाव आ. १६ देशों मे	

ये वेदिकायें अनेक तोरण द्वार जिन प्रतिमाओ से सुशोभित हैं ।

छब्बीस

चार्ट

नाम	कहा है?	लंबाई	चौडाई	गहराई	मुख्य कमल	जल से ऊंचाई
पद्म	हिमवान पर	१०००	५००	१०	१ यो.	½यो.
महापद्म	महाहिमवान	२०००	१०००	२०	२ यो.	१यो.
तिगिंच्छ	निषध पर	४०००	२०००	४०	४	२यो.
केसरी	नील ,,	४०००	२०००	४०	४	२यो.
पुण्डरीक	रुक्मि ,,	२०००	१०००	२०	२	१यो.
महापुण्डरीक	शिखरी ,,	१०००	५००	१०	१	½यो.

	नदी के मध्य	लंबाई	चौडाई	गहराई	मुख्य कमल	जल से ऊंचा
सीता के सरोवर	१०	१०००	५०० या नदी की चौ. प्रमाण	१०	१ को.	½
सीतोदा के सरोवर	१०	१०००	,,	१०	१ को.	½
सीता के मध्य	१०	१०००		१०	१ यो.	½
सीतोदा के मध्य	१०	१०००	५०० या नदी की चौ प्रमाण	१०	१ यो	½

इन सब सरोवरो के चारो तरफ वेदिका है और ½ योजन चौडे वन खंड है।

सरोवर

(ख)

मुख्य पद्म निवास	परिवार कमल	परिवार देवादि	मुख्य देवी का भवन	परिवार कमलों का विस्तारादि
श्री देवी	१४०११५+१ मुख्य कमल	श्री देवी के उतने ही	१ को. लंबा, ¾ को. ऊंचा ½ को. चौड़ा	मुख्य कमल से अर्ध है
ह्रीदेवी	२८०२३०+१	ह्री ,,	२ को. लंबा १½ को. ऊंचा १ को. चौड़ा	,,
धृति	५६०४६०+१	धृति ,,	४ को. लंबा ३ को. ऊंचा २ को. चौड़ा	,,
कीर्ति	५६०४६०+१	कीर्ति ,,	४ को. लंबा ३ को. ऊंचा २ को. चौड़ा	,,
बुद्धि	२८०२३०+१	बुद्धि ,,	२ को. लंबा १½ को. ऊंचा १ को. चौड़ा	,,
लक्ष्मी	१४०११५+१	लक्ष्मी ,,	१ को. लंबा ¾ को. ऊंचा ½ को. चौड़ा	,,

मुख्य पद्म निवास	परिवार कमल	परिवार देवादि
नाग कुमार देव या नागकुमारी	१४०११५	नाग कु. के उतने ही
,,	,,	,,
,,	,,	,,
,,	१४०११५	,,

इन सभी कमलों में जिन भवन हैं। ये सब कमल पृथ्वी कायिक हैं।

स्वर्गों का विशेष विवरण

१	२	३	४	५	६	७
नाम	नगर वि चौ. यो	प्राकार ऊँचाई	नीव	चौड़ाई	प्र. दिशा के गो. द्वारों की सं०	ऊचाई गो. यो.
सौधर्म इन्द्र	८४०००	३००	५०	५०	४००	४००यो.
ईशान	८०००	३००	५०	५०	४००	४००यो.
सानत्कुमार	७२०००	२५०	२५	२५	३००	३००
माहेन्द्र	७००००	२५०	२५	२५	३००	३००
ब्रह्म	६००००	२००	१२½	१२½	२००	२००
लातव	५००००	१५०	६¼	६¼	१६०	१६०
महाशुक्र	४००००	१२०	४	४	१४०	१४०
सहस्रार	३००००	१००	३	३	१२०	१२०
आनतादि ४	२००००	८०	२½	२½	१००	१००

(१) मे इन्द्रो के नाम हैं।

(२) मे उनके नगरो का लंबा चौड़ा विस्तार है।

(३) में उस इन्द्र नगर के परकोटे की ऊँचाई है।

(४) मे परकोटे की नीव है।

(५) मे परकोटे की चौड़ाई है।

(६) मे परकोटे के एक-एक दिशा के गोपुरो की सख्या है।

(७) मे गोपुरो की ऊचाई योजन प्रमाण से है।

स्वर्गो का विशेष विवरण

	८	९	१०	११	१२	१३
नाम	विस्तार गो यो.	इद्र भवन	ऊचाई	विस्तार	नीव	देविया
सौधर्म इन्द्र	१००यो.	१	६०० यो.	१५०	७५	१६००००
ईशान	१००यो	१	६००	१५०	७५	१६००००
सानत्कुमार	९०	१	५००	१००	५०	७२०००
माहेन्द्र	९०	१	५००	१००	५०	७२०००
ब्रह्म	८०	१	४५०	९०	४५	३४०००
लातव	७०	१	४००	८०	४०	१६०००
महाशुक्र	५०	१	३५०	७०	३५	८२५०
सहस्रार	४०	१	३००	६०	३०	४१२५
आनतादि ४	३०	१	२५०	५०	२५	प्रत्येक के २०६३

(८) मे गोपुरो का विस्तार योजन से बताया है।

(९) मे इन नगरो के मध्य मे इन्द्रो के भवन हैं।

(१०) मे इन्द्र भवनो की ऊँचाई योजन से हैं।

(११) मे इन्द्र महल का विस्तार है।

(१२) मे भवन की नींव का प्रमाण है।

(१३) मे इन्द्रो के देवियो की सख्या है।

स्वर्गो का विशेष विवरण

	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
नाम	महादेवी	सभा	ऊंचाई	लंबाई	चौड़ाई	समाद्वार	ऊंचाई	चौडाई
सौधर्म इन्द्र	८	सुधर्मा	३००० कोस	४०० कोस	२०० कोस	सभा के तीन है	६४ कोस	३२ कोस
ईशान	८					,,		
सानत्कुमार	८					,,		
माहेन्द्र	८					,		
ब्रह्म	८					,,		
लांतव	८					,,		
महाशुक्र	८					,,		
सहस्रार	८					,,		
आनतादि	प्रत्येक ८					,,		

(१४) मे महादेवियो की सख्या है ।

(१५) मे सुधर्म इन्द्र की सुधर्मा सभा है ऐसे ही सभी इन्द्रो के सभा गृह हैं। उनका प्रमाण मालूम नही हैं ।

(१६) मे सभाभवन को ऊँचाई कोसो से है ।

(१७) में सभा की लवाई है ।

(१८) मे सभा भवन की चौड़ाई है ।

(१९) मे सभाभवन के पूर्व, उत्तर, दक्षिण, तीन द्वार हैं ।

(२०) मे सभाभवन के द्वारो की ऊँचाई कोसो से है ।

(२१) मे सभा भवन की चौडाई कोसो से है ।

विशेष—इन इन्द्र नगर, इन्द्रभवन, प्राकार, सभा, देवी भवन, वनखंड, लोकपाल नगर, भवन, गणिका नगर, भवन, मान स्तंभ, चैत्यवृक्ष, आदि सब मे जिन भवन व जिन प्रतिमाएँ हैं उनको मेरा नमस्कार हो ।

स्वर्गों का विशेष विवरण

	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८
नाम	देवी भवन की ऊचाई	चौडे	लंबे	वनखड	लबे	चौडे	लोकपाल के नगर
सौधर्म इन्द्र	५००यो	५०	१००	चार दिशा सबधी ४	१०० यो	५००	दिशा सबधी ४
ईशान	५०० यो.	५०	१००	"	"	"	४
सानत्कुमार	४५०	४५	९०	"	"	"	+
माहेन्द्र	४५०	४५	९०	"	"	"	
ब्रह्म	४००	४०	८०	"	"	"	
लांतव	३५०	३५	७०	"	"	"	
महाशुक्र	३००	३०	६०	"	"	"	
सहस्रार	२५०	२५	५०	"	"	"	
आनतादि	२००	२०	४०	"	"	"	

(२२) मे इन्द्र भवन के चारो तरफ देवियो के भवन हैं उनकी ऊंचाई योजन से है।

(२३) मे देवी भवनो की चौडाई योजन से हैं।

(२४) मे देवी भवनो की लवाई योजन से है।

(२५) मे इन्द्र नगर के बाहर ५ परकोटे हैं उनसे दूर चारो दिशाओ मे ४ वन खण्ड हैं।

(२६) मे वनखण्डो की लम्बाई योजन से है।

(२७) मे वनखण्डो की चौडाई योजन से है।

(२८) इन्द्रनगर के चारो दिशाओ मे लोकपालो के नगर हैं।

स्वर्गों का विशेष विवरण

	२९	३०	३१	३२	३३	३४
नाम	लबे लोकपाल के नगर	चौडे	विदिशा मे गणिका के नगर	लम्बे प्रासाद	चौडे प्रासाद	यान वि० नाम
सौधर्म इन्द्र	१२००० यो०	५००० यो०	समचतुष्क १०००००	१०० यो०	५० यो०	वालुक
ईशान	"	"	१०००००			पुष्पक
सानत्कुमार	"	"	"			सौमनस
माहेन्द्र	"	"	"			श्रीवृक्ष
ब्रह्म	"	"	"			सर्वतोभद्र
लातव	"	"	"			प्रीतिकर
महाशुक्र	"	"	"			रम्यक
सहस्रार	"	"	"			मनोहर अर्चिमाली
आनतादि	"	"	"			विमल

(२९) लोकपाल के नगरो की लबाई योजन से है।

(३०) लोकपाल के नगरो की चौडाई योजन से हैं।

(३१) इन्द्रनगर की विदिशा में गणिका महत्तरियो के नगर हैं वे चौकोन हैं।

(३२) गणिका के भवन की लबाई योजन से है।

(३३) गणिका के महल की चौडाई योजन से हैं।

(३४) प्रत्येक इन्द्रो के यान-विमान के नाम हैं।

स्वर्गो का विशेष विवरण

	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१
नाम	लवे यान विमान	चौडे	मानस्तभ ऊचे	चौडे मोटे	करडक विस्तार	लबे	न्यग्रोध, वृक्ष
सौधर्म इन्द्र	१०००००	१०००००	३६	१	५०० ध	१ कोस	१
ईशान	×		३६	१	५०० ध.	१ ,,	१
सानत्कुमार			३६	१	५००	१ ,,	१
माहेन्द्र			३६	१	५००	१ ,,	१
ब्रह्म			×	×			१
लातव			×	×			१
महाशुक्र			×	×			१
सहस्रार			×	×			१
आनतादि			×	×			१

(३५) मे यान-विमानो की लम्बाई है।

(३६) मे यान-विमानो की चौडाई है।

(३७) इन्द्र के भवन के आगे तीर्थंकरो के आभरण वाले मानस्तभ हैं उनकी ऊँचाई है।

(३८) मे मानस्तम्भो की चौडाई सब योजनो से है।

(३९) उसमे लटकने वाले पिटारो का विस्तार धनुष प्रमाण से है।

(४०) पिटारो की लम्बाई कोस से है। इसमे तीर्थंकरो के योग्य वस्त्रादि हैं।

(४१) मे इन्द्र भवनो के आगे १-१ न्यग्रोध वृक्ष-चैत्यवृक्ष हैं, जबू वृक्ष के समान हैं।

सोलह स्वर्गों का विशेष विवरण

	नाम	इन्द्रक	श्रेणीबद्ध	प्रकीर्णक	विमान तल वाहल्य	विमानवर्ण	विमानाधार	प्रवीचार	उत्कृष्ट आयु बद्धायुष्क	उत्कृष्ट आयु घातायुष्क	उत्कृष्ट विरहकाल	अवधि क्षेत्र
१	सौधर्म	३१	४३७१	३१९५५९८	११२१यो.	पाचोवर्ण	घन उदक	काय प्रवी	२ सा.	२$\frac{1}{2}$सा.	७ दिन	प्र पृथिवी
२	ईशान	×	१४५७	२७९८५४३	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
३	सनत्कुमार	७	५८८	११९९४०५	१०२२यो	कृ.से र. ४	वात	स्पर्श प्रवी	७ सा.	७$\frac{1}{2}$सा.	१ पक्ष	द्वि पृथिवी
४	माहेन्द्र	×	१९६	७९९८०४	,,	,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
५	ब्रह्म	४	३६०	३९९६३६	९२३यो	कृ नी र. ३	जल-वात	रूप प्रवी	१० सा.	१०$\frac{1}{2}$सा.	१ मास	तृ पृथिवी
६	लान्तव	२	१५६	४९८४२	८२४ ,,	,,	,,	,,	१४ सा	१४$\frac{1}{2}$सा	१ ,,	,,
७	महाशुक्र	१	७२	३९९२७	७२५ ,,	पीत शुक्ल	,,	शब्द प्रवी	१६ सा.	१६$\frac{1}{2}$,,	२ ,,	,,
८	सहस्रार	१	६८	५९३१	६२६ ,,	,,	,,	,,	१८ सा.	१८$\frac{1}{2}$,,	२ ,,	च. पृथिवी
९	आनत						शुद्ध आ०	मन. प्रवी.	२० सा.	×	४ ,,	प० ,,
१०	प्राणत	६	३२४	३७०	५२७ ,,	शुक्ल	,,	,,	,,	×	,,	,,
११	आरण						,,	,,	२२ सा.	×	,,	,,
१२	अच्युत						,,	,,	,,	×	,,	,,

बारहें इन्द्र

इन्द्र नाम	प्रतीन्द्र	सामानिक	त्रायस्त्रिंश	लोकपाल	तनुरक्ष	अभ्यन्तर पारिषद	मध्यम पारिषद	बाह्य परिषद	सप्तानीक	प्रकीर्णक	आभियोग्य	किल्विषक	देविया	मुकुट चिह्न
१ सौधर्म	१	८४ ह	३३	४	३३६०००	१२०००	१४ ह	१६ ह	७४६७६०००	अस	अस०	अस०	१६०००८	शूकर
२ ईशान	१	८० ,,	,,	,,	३२००००	१००००	१२ ,,	१४ ,,	७११२००००	,,	,,	,,	,,	हरिण
३ सनत्कुमार	१	७२ ,,	,,	,,	२८८०००	८०००	१० ,,	१२ ,,	६४००८०००	,,	,,	,,	७२००८	महिष
४ माहेन्द्र	१	७० ,,	,,	,,	२८००००	६०००	८ ,,	१० ,,	६२२३००००	,,	,,	,,	,,	मत्स्य
५ ब्रह्म	१	६० ,,	,,	,,	२४००००	४०००	६ ,,	८ ,,	५३३४००००	,,	,,	,,	,,	मेढक
६ लातव	१	५० ,,	,,	,,	२०००००	२०००	४ ,,	६ ,,	४४४५००००	,,	,,	,,	,,	सर्प
७ महा शुक्र	१	४० ,,	,,	,,	१६००००	१०००	२ ,,	४ ,,	३५५६००००	,,	,,	,,	,,	छगल
८ सहस्रार	१	३० ,,	,,	,,	१२००००	५००	१ ,,	२ ,,	२६६७००००	,,	,,	,,	,,	वृषभ
९ आनत	१	२० ,,	,,	,,	८००००	२५०	५००	१ ,,	१७७८००००	,,	,,	,,	,,	कल्पतरु
१० प्राणत	१	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
११ आरण	१	,,	,,	,,	,,	,,	१२५	,,	,,	१७७८००००	,,	,,	,,	,,	,,
१२ अच्युत	१	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,

ग्यारह कल्पातीत

	नाम		इन्द्रक	श्रेणीबद्ध	प्रकीर्णक	विमानतल वाहल्य	उत्कृष्टआयु	उत्कृष्ट विरहकाल	* अवधि क्षेत्र
१	अ अ	ग्रैवेयक	१	४०	..	४२८ यो.	२३ सा	सख्यात हजार वर्ष	छठी पृथिवी
२	अ. म.	,,	१	३६	...	,,	२४ ,,	,,	,,
३	अ. उ.	,,	१	३२		,,	२५ ,,	,,	,,
४	म. अ	,,	१	२८		३२९ यो.	२६ ,,	,,	,,
५	म म.	,,	१	४	३२	,,	२७ ,,	,,	,,
६	म. उ	,,	१	२०		,,	२८ ,,	,,	,,
७	उ. अ	,,	१	१६		२३० यो	२९ ,,	,,	,,
८	उ. म.	,,	१	१२	५२	,,	३० ,,	,,	,,
९	उ. उ.	,,	१	८		,,	३१ ,,	,,	,,
१०	अनुदिश		१	४	४	१३१ यो.	३२ ,,	पल्य का असख्यातवा भाग	लोक नाली
११	सर्वार्थ सिद्धि		१	...	...	,,	३३ ,,	,,	,,